क्रिसन-रुकमणी-री वेलि

राठौड़ पृथ्वीराज-री कही

राजस्थानी (डिंगल) भाषा का सुप्रसिद्ध काव्य

प्रस्तावना, शब्दार्थ, हिन्दी-भाषान्तर, व्रजभाषा पद्यानुवाद, अलंकार-निर्देश, पाठान्तर तथा विविध टिप्पणियों के साथ संपादित

संपादक
नरोत्तमदास स्वामी
अेम. अे., विद्यारत्न, विद्यामहोदधि

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

प्रथम संस्करण १९५३
द्वितीय संस्करण १९६५

मूल्य : सात रुपये पचास पैसे

आगरा यूनीवर्सिटी प्रेस, आगरा

भूमिका

'वेलि' का यह द्वितीय और पूर्णतया संशोधित संस्करण है। इस संस्करण में नवीन खोजों का समावेश करके उसे अदयतम और शुद्धतम वनाने का प्रयास किया गया है। सदा की भाँति इस वार भी श्री अगरचंद नाहटा से पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है। इसी बीच मे श्री नरेन्द्रकुमार भाणावत ने मेरे निर्देशन में 'वेलि-साहित्य' पर विस्तृत शोध-निवंध प्रस्तुत किया है। उससे भी लाभ उठाया गया है।

नरोत्तमदास स्वामी

सूचनिका

प्रस्तावना

खंड १ : प्रास्ताविक

(१) राजस्थानी भाषा

राजस्थानी भारत-यूरोपीय भापा-परिवार की भापा है। वह राजस्थान और मालवा की मातृभापा है। विस्तार मे यह प्रदेश हिन्दी को छोडकर भारत की अन्य सभी भापाओ के क्षेत्र से वड़ा है। राजस्थानी वोलने वालो की सख्या डेढ करोड के ऊपर है। इस दृष्टि से उसका स्थान भारतीय भाषाओ मे हिन्दी, बँगला, तेलुगू, तमिळ और मराठी के वाद छठा होता है।

राजस्थानी के पूर्वोत्तर में हिन्दी की वांगड़ू वोली, उत्तर में पंजावी, पश्चिमोत्तर मे मुलतानी (लहँदा), पश्चिम मे सिधी, दक्षिण-पश्चिम मे गुजराती, दक्षिण में मराठी और पूर्व मे हिन्दी की बुदेली तथा व्रजभाषा नाम की वोलिया वोली जाती हैं।

राजस्थानी की मुख्य चार शाखाएं है—

(१) **पश्चिमी राजस्थानी या मारवाड़ी**—जिसका क्षेत्र उदयपुर, जोधपुर, जेसलमेर, वीकानेर और शेखावाटी का प्रदेश है।

(२) **पूर्वी राजस्थानी या ढूंढाड़ी**—जिसका क्षेत्र जयपुर और हाडौती का प्रदेश है।

(३) **उत्तरी राजस्थानी**—जिसमे अलवर प्रदेश की मेवाती और अहीरी वोलियां आती है।

(४) **दक्षिणी राजस्थानी या मालवी**—जिसमे मालवा और उसके दक्षिणी प्रदेश नेमाड़ आदि की वोलिया सम्मिलित है।[१]

राजस्थानी भाषा का प्राचीन नाम मरु-भाषा था। राजस्थान के प्राचीन

[१] इनके अतिरिक्त भारत के विभिन्न स्थानों मे वोली जाने वाली बंजारी और गूजरी भाषाओ से भी राजस्थानी का गहरा सबंध है। वंजारे और गूजर मूलत: राजस्थान के निवासी थे। नेपाली आदि पहाड़ी भाषाए भी राजस्थानी से सबद्ध है। आडावळा पहाड़ के भीलों की वोली भीली राजस्थानी का ही रूपान्तर है।

साहित्यकार, चाहे वे राजस्थान के किसी प्रदेश के वासी हो, अपनी भाषा का इसी नाम से उल्लेख करते थे। आठवी शताब्दी के 'कुवलयमाला' नामक ग्रन्थ मे भारत की १८ देशभाषाओ मे मरुदेश की भाषा का भी उल्लेख किया गया है। अबुलफजल ने आईने-अकबरी ग्रन्थ मे भारत की प्रमुख भाषाओ मे मारवाडी को भी गिनाया है। चारणो द्वारा प्रयुक्त राजस्थानी का साहित्यिक रूप डिंगल नाम से प्रसिद्ध रहा है।

राजस्थान की बोलियो मे विस्तार और साहित्य दोनो की दृष्टि से मारवाडी विशेष महत्त्वपूर्ण है। जिस प्रकार आजकल हिन्दी की अनेक उपभाषाओ मे से खड़ीबोली साहित्य की भाषा है उसी प्रकार मारवाड़ी सदा से राजस्थान की साहित्यिक भाषा रही है। राजस्थान के सभी भागो के लेखको ने साहित्य-रचना के लिए मारवाड़ी को ही ग्रहण किया। **डिंगल का मूलाधार भी मारवाड़ी ही है।**

भारतीय भाषाओ मे गुजराती का राजस्थानी के साथ सबसे निकट का संबंध है। सोलहवी शताब्दी तक गुजराती और राजस्थानी एक ही भाषा थी। गुजरात और राजस्थान का परस्पर गहरा सास्कृतिक सबध भी रहा है।

राजस्थानी का आरंभ और विकास

भारतीय आर्य-भाषा के सबसे प्राचीन रूप को वैदिक सस्कृत कहा जाता है। वह वेदो की भाषा है। वेदो के सब भाग एक ही काल मे नही रचे गये। उनके विविध भागो मे भाषा-सबधी अन्तर दिखायी पड़ता है। वैदिक से संस्कृत का विकास हुआ। पाणिनि ने उसका व्याकरण लिखकर उसे अमर कर दिया। सस्कृत से प्राकृत विकसित हुई। बुद्ध और महावीर के समय तक सस्कृत और प्राकृत मे पर्याप्त अन्तर हो गया था। प्राकृत के अनेक रूपो मे पाली और अर्धमागधी, जिनमे बौद्धो और जैनो के धर्मग्रथ लिखे गये, अधिक प्राचीन है। शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी, पैशाची आदि उसके अन्यान्य रूप हैं। पाली को साधारणतया प्राकृत नाम से अभिहित नही किया जाता। प्राकृत से अपभ्रंश का विकास हुआ। प्राकृत की भाति अपभ्रंश मे भी साधारण प्रान्तीय भेद रहे होगे पर उनमे इतना अतर न था कि एक प्रान्त के लोग दूसरे प्रान्त की भाषा को न समझ सके। साहित्य मे पश्चिमी अपभ्रंश की प्रधानता रही।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का काल सं. १२०० वि. के लगभग आरभ होता है। उनको अपभ्रंश से भिन्न करने वाली विशेषताएं इस समय तक उनमें भली प्रकार विकसित हो चुकी थी।

आधुनिक भाषाओ को अपभ्रंश से अलग करने वाली कुछ प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार है---

(१) प्राकृत और अपभ्रंश के तद्भव शब्दो के स्थान पर संस्कृत के तत्सम शब्दो के प्रयोग की प्रवृत्ति।

(२) सस्कृत के तत्सम शब्दो से सीधे नवीन तद्भव शब्दों का निर्माण। जैसे—प्राचीन तद्भव कज्ज-काज के साथ-साथ नवीन तद्भव कारज।

(३) अपभ्रंश के द्वित्त व्यजन का सरलीकरण और पूर्व स्वर का, वह ह्रस्व हो तो, दीर्घीकरण (दुहरा व्यंजन इकहरा हो जाता है और पूर्व स्वर को, मात्रा पूरी करने के लिए, दीर्घ कर दिया जाता है)। जैसे—अपभ्रंश कम्म का राजस्थानी, हिंदी आदि मे काम।

(४) अपभ्रंश के अनुस्वार के स्थान पर अनुनासिक का प्रयोग और पूर्व स्वर का, मात्रा पूरी करने के लिए, दीर्घीकरण। जैसे—अपभ्रंश पच का पाँच।

(५) विभक्ति-प्रत्ययो का घिस जाना और उनके स्थान पर दोनों वचनो मे समान रहने वाले परसर्गों (नउ, रउ, सउं, मइं आदि) का प्रयोग।

(६) सयुक्त क्रियाओ और संयुक्त-कालों का विकास।

(७) वर्तमान-काल मे सहायक क्रिया का प्रयोग जैसे---अपभ्रंश जाइ-जावइ के स्थान पर राजस्थानी मे **जावै है**, गुजराती मे **जाय छे**, हिन्दी मे **जाता है**, बँगला मे **जाइते छे**।

(८) प्रवर्धमान (वढ़ती हुई) विश्लेषणात्मक analytic प्रवृत्ति।

ये विशेषताएं सं. १२०० के आसपास स्पष्ट हो जाती है अत. तभी से आधुनिक भाषाओं का आरभ-काल मानना उचित होगा।

राजस्थानी भाषा के विकास को दो कालों मे वाँटा जा सकता है—

(१) प्राचीन राजस्थानी काल--संवत १६०० के पूर्व।

(२) नवीन राजस्थानी काल—संवत १६०० के पश्चात्।

प्राचीन राजस्थानी काल में गुजराती और राजस्थानी एक ही भाषा थी। दोनो का स्वतन्त्र विकास इस काल के अन्त मे, सोलहवी शताब्दी, मे हुआ। नवीन राजस्थानी को प्राचीन राजस्थानी से विभिन्न करने वाली कुछ विशेषताएं इस प्रकार है—

(१) ऐ और औ इन दो नवीन स्वरों का विकास, ये संस्कृत के सधिस्वर ऐ (अइ), औ (अउ) से भिन्न है।

(२) वर्तनी या हिज्जे में अइ-अउ के स्थान पर ऐ और औ का प्रयोग।

(३) नान्यतर-जाति (नपुसक-लिग) का उठ जाना। नान्यतर-जाति के कुछ रूप वने रहे, पर उनमे और नर-जाति के रूपों मे व्यवहारतः कोई अन्तर नही रहा।

(४) शब्दो के अन्त में इ, उ और अ के उच्चारण का लोप (यद्यपि लिखने मे इनके स्थान पर अ लिखा जाता है), जैसे—करि का कर् (कर), गति का गत् (गत), फल का फल् (फल)।

डिंगल

डिंगल से अभिप्राय—राजस्थानी साहित्य तीन शैलियो मे लिखा गया है—

(१) जैन शैली, (२) चारणी शैली और (३) लौकिक शैली। जैन शैली के लेखक जैन साधु और यति, अथवा उनसे सम्बन्ध रखने वाले लोग, है। इस शैली मे प्राचीनता की झलक मिलती है। अनेक प्राचीन शब्द और मुहावरे इसमे आगे तक चले आये। जैनो का सम्बन्ध गुजरात के साथ विशेष रहा, अत. जैन शैली मे गुजराती का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। चारणी शैली के लेखक प्रधानतया चारण, और गौण-रूप मे अन्यान्य लोग, है (जैनो, ब्राह्मणो, राजपूतो, भाटो आदि ने भी इस शैली मे रचना की है)। इसमे भी प्राचीनता की पुट मिलती है पर वह प्राचीनता जैन शैली से भिन्न प्रकार की है (जैनो की अपभ्रंश-रचनाओ मे भी, विशेषकर युद्ध-वर्णन मे, उसका मूल देखा जा सकता है)। डिगल वस्तुत अपभ्रश शैली का ही विकसित रूप है। लौकिक शैली ने सदा अपने समय की भाषा का उपयोग किया। ब्राह्मणो, व्यापारियो तथा साधारण जनता का साहित्य इस शैली मे लिखा गया।

डिंगल शब्द का प्रयोग कभी तो राजस्थानी की चारणी शैली के लिए किया जाता है और कभी समस्त राजस्थानी के लिए।

डिंगल शब्द का इतिहास—डिंगल शब्द विशेष प्राचीन नही जान पड़ता। इसका सर्वप्रथम प्रयोग राजस्थान के प्रसिद्ध कवि आसिया वाकीदास की रचना मे मिला है। स १८७१ मे लिखित उनकी कुकवि-बत्तीसी नामक रचना मे यह दोहा आया है—[1]

> **डिंगलियां** मिलिया करै पिंगल तणो प्रकास।
> ससक्रती ह्वै कपट सज पिंगल पढिया पास॥

सवत् १८६३ मे सेवग **मछाराम ने** डिंगल गीतो का विवेचन करने वाला रघुनाथरूपक नामक ग्रथ डिगल मे लिखा पर डिंगल शब्द का प्रयोग उनने नही किया। अपनी भाषा को उनने **मरुभाषा या मरु-भूमि-भाषा** कहा।

वांकीदास के पश्चात डिंगल शब्द का प्रयोग करने वाले लेखको मे महत्त्व-पूर्ण नाम **मिस्रण सूर्यमल्ल** का है। अपने वशभास्कर नामक महाग्रंथ मे प्रयुक्त भाषाओ का उल्लेख करते हुए उनने लिखा है—

> डिंगल उपनामक कहुँक मरु-वानी हु विधेय। [2]

[1] सोलहवी शताब्दी के अन्त मे लिखे हुए कुशललाभ के पिंगलशिरोमणि नामक छद-ग्रथ मे उडिंगल शब्द आया है। उसका भाव स्पष्ट नही है। बहुत सभव है यह उडिंगल ही डिंगल शब्द का मूल हो।

[2] कही-कही डिगल उपनाम वाली मरुभाषा का भी प्रयोग किया जायगा।
(वशभास्कर का अधिकाश भाग पिंगल या ब्रजभाषा की रचना है जिसे कवि ने ब्रजदेशीया प्राकृत-मिश्रिता भाषा कहा है, डिंगल को उसने मरुदेशीया प्राकृत-मिश्रिता भाषा कहा है)।

अपने पिता का परिचय देते हुए उन्होने कहा है—

पिंगल-डिगल-पटु भये धुरंधर चंडीदान ।

आगे एक स्थान पर वे लिखते है—

मरु-भाषा डिंगल-भाषा इत्येके ।[1]

डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति—डिगल शब्द की व्युत्पत्ति विद्वानो ने तरह-तरह से की है । ये सभी व्युत्पत्तियाँ अनुमानाश्रित है । जानकारी के लिए उनका उल्लेख संक्षेप में किया जाता है—

(१) महामहोपाध्याय **मुरारिदान** के आधार पर **श्री हरप्रसाद शास्त्री** का कथन है कि डिगल का मूल शब्द डगर या डगळ है । डगळ पहले जंगल या मरुदेश की भाषा का नाम था । पिंगल के साम्य पर उसका डिगल हो गया । इसके समर्थन मे उन्होने एक दूहा उद्‌धृत किया है जिसे वे ईसा की १४वी शताब्दी का बताते है—

दीसे जंगळ डगळ जेथ जळ बगळ चाटे ।
अनहुता गळ दिये गळा हुंता गळ काटे ।

वस्तुतः इस पद्य में जगल देश की भाषा का वर्णन है ही नही, इसमे तो जंगल देश और उसके लोगो का (?) वर्णन है । प्रथम पंक्ति का अर्थ है—जंगल में डगळ अर्थात् मिट्टी के बडे-बडे ढोके दिखायी पडते है, वहाँ लोग पानी के बागळ (पानी रखने का चमड़े का पात्र) को चाटते है—पानी समाप्त होने पर गीले पात्र को ही पानी के लिए चाटते है ।

(२) श्री गजराज ओझा के अनुसार डिंगल मे ड वर्ण का अधिक प्रयोग होता है, उसकी इस विशेपता को ध्यान में रखकर ही पिगल के वजन पर उसका नाम डिंगल रखा गया । जिस प्रकार विहारी ल-कार-प्रधान भाषा है उसी प्रकार डिंगल ड-वर्ण-प्रधान ।

वास्तव मे डिगल की ऐसी कोई विशेपता नही । कुछेक पद्यो मे ही डकार की अधिकता होने से समस्त डिंगल को ड-वर्ण-प्रधान भाषा नहीं कहा जा सकता ।

(३) महाराज प्रतापनारायणसिंह और पुरुषोत्तमदास स्वामी के मतानुसार डिंगल शब्द डिम और गळ शब्दों के मेल से बना है । डिम का अर्थ है डमरू की ध्वनि तथा गळ से गले का तात्पर्य है । डमरू की ध्वनि रण-चण्डी का आह्वान करती है तथा वह वीरो को उत्साहित करने वाली है । गले से जो कविता निकल कर डिम-डिम ध्वनि की तरह वीरों के हृदयो को उत्साह से भर दे उसे और उसकी भाषा को **डिमगल** कहा गया । यही शब्द पीछे डिंगल वन गया ।

१ मरुभाषा जिसे कई लोग डिंगल भापा कहते है ।

(४) श्री जगदीशसिंह गहलोत ने एक मत का उल्लेख किया है जिसके अनुसार डिगल का मूल डिभ-गळ शब्द है जिसका अर्थ वाल-भाषा है। जैसे प्राकृत वाल-भाषा कहलाती थी वैसे ही राजस्थानी की लोकभाषा डिभगळ कहलायी। यही शब्द आगे चलकर डिगल हो गया।

(५) श्री मोतीलाल मेनारिया ने एक और मत का उल्लेख किया है जिसके अनुसार डिगल शब्द डिग्गीगळ शब्द से वना है।

(६) श्री मोतीलाल मेनारिया का अनुमान है कि डिंगल का सम्वन्ध डीग से है, डिंगल का अर्थ है डीग वाली भाषा—वह भाषा जिसके ग्रंथों मे डींगें मारी गयी हों, चारण लोग आश्रयदाता की प्रशंसा में अतिशयोक्ति-पूर्ण रचनाएँ करते थे। वे कहते है कि वृद्ध चारण आज भी डिंगल न कहकर डींगल कहते है।

डिगल की ही नही, पिगल की कविता भी खूब अतिशयोक्ति-पूर्ण होती थी। भाट या ब्रह्मभट्ट भी, जिनकी भाषा पिंगल थी, चारणों से कम अतिशयोक्ति नहीं करते थे। वृद्ध लोग डिंगल को ही डीगल नही कहते किन्तु पिंगल को भी पीगल कहते है परन्तु मूल शब्द डिंगल और पिंगल ही है।

(७) श्री किशोरसिंह वार्हस्पत्य के अनुसार डिंगल शब्द 'डीङ् विहायसा गतौ' अर्थात् उडना अर्थवाली डी धातु से वना है और इसका अर्थ है उडने वाली।

(८) श्री वदरीदान कविया और सत्यदेव आढा वार्हस्पत्यजी का समर्थन करते है और कहते है कि डिंगल कविता ऊँचे स्वर से पढ़ी जाती है अतः उसे उडने वाली कहा गया है।

(९) श्री उदयराज ऊजळ भी वार्हस्पत्यजी का समर्थन करते है। उनके अनुसार व्रजभाषा साहित्य के नियमो से वद्ध भाषा है अतः उसे पांगली या पगु कहा गया; उसके विपरीत डिंगल संस्कृत और पिंगल के रीति तथा छंदशास्त्र के नियमो से स्वतन्त्र या मुक्त है अतः उसे उड़ने वाली नाम दिया गया। डिंगल शब्द का अर्थ उड़ने वाली है।

(१०) तैसीतोरी का कथन है—The term Dingala is a mere adjective meaning probably irregular *i. e.* not in accordance with the standard poetry, or possibly vulgar, and was applied to it when the use of the Vraja Bhasha (Pingala) as a polite language of the poets was in general vogue.

(११) श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी लिखते है—मेरे मत में डिंगल केवल अनुकरण शब्द है। काफिया न मिलेगा तो वोझों तो मरेगा—की कहावत के अनुसार पिंगल से भेद दिखाने के लिए वना लिया गया है।........निश्चित अर्थ के वाचक किसी शब्द से, उससे भेद दिखाने के लिए उसी की छाया पर, दूसरा अनर्थक

शब्द बनने, और उस दूसरे अर्थ के वाचक हो जाने, के कई उदाहरण मिलते है।[1]

(१२) प्रस्तुत लेखक का मत

(१) संस्कृत-प्राकृत की कविता पिंगल-रचित छंदशास्त्र मे बताये छंदों मे लिखी गयी। अपभ्रंश ने लोक-साहित्य से अनेक नये छंद बनाये जिनका समावेश प्राकृत-पिंगल, स्वयभू-छंद आदि नवीन छंद-ग्रंथों में किया गया। देश-भाषाओ के विकास के समय लोक-साहित्य के आधार पर और नये प्रकार के छंद बनाये गये। पूर्वी कवियो ने, जिनमे भाट (ब्रह्मभट्ट) प्रधान थे, पदों का आविष्कार किया और पश्चिम के चारण कवियों ने (चारणी) गीतों का। ब्रह्मभट्ट लोग पिंगलानुमोदित छंदों मे भी रचना करते रहे, उनकी रचनाओं में पदों की अपेक्षा पिंगलानुमोदित छदों की ही प्रधानता रही। पर चारणों ने इन छंदों की अपेक्षा गीतो को प्रधानता दी। पिंगलानुमोदित छंदो मे लिखी गयी कविता की भाषा (व्रजभाषा) पिंगल नाम से प्रसिद्ध हुई। उसी के वजन पर पिंगल के छंदों से भिन्न गीतो मे लिखी गयी कविता की भाषा का डिंगल नाम पड़ा। इस प्रकार डिंगल शब्द, जैसा कि गुलेरीजी कहते है, निरर्थक है और पिंगल के वजन पर गढ़ा गया है।

(२) एक संभावना और भी है। कुशललाभ-रचित पिंगलशिरोमणि ग्रंथ मे उडिंगल नागराज का एक छंदशास्त्रकार के रूप में उल्लेख हुआ है। छंदों का सर्वप्रथम विवेचन करने वाला पिंगल नाग हुआ। जब अपभ्रंश-काल में नवीन मात्रिक छंदो का प्रयोग होने लगा तो उनका आविष्कारक भी पिंगल ही माना गया और उसी के नाम पर प्राकृत-पिंगल ग्रंथ बना। इस प्रकार पिंगल कविता मे प्रयुक्त छंदो का आविष्कारक पिंगल नागराज प्रसिद्ध हुआ। जब डिंगल गीतों का आविष्कार हुआ तो उनका सम्बन्ध भी किसी प्राचीन महापुरुष से जोड़ना आवश्यक जान पड़ा और पिंगल नागराज के समान उडिंगल नागराज की कल्पना की गयी। संभवत. यह उडिंगल शब्द ही डिंगल का मूल है।

डिंगल और पिंगल—पश्चिमी राजस्थान, सौराष्ट्र, कच्छ आदि के पश्चिमी प्रदेश में चारणों का जोर रहा और पूर्वी राजस्थान, व्रजमंडल आदि के पूर्वी प्रदेश मे ब्रह्मभट्टों का (जिन्हें भाट भी कहा जाता है पर जो वंशावली आदि रखने वाले भाटों से भिन्न है)। चारणों ने गीत-शैली लेकर इस प्रदेश की भाषा राजस्थानी मे काव्य-रचना की और ब्रह्मभट्टो ने पिंगल के छंदों तथा पदो को लेकर व्रजभाषा मे रचना की। दोनो की रचनाएं वीर-रस-प्रधान थीं

[1] उदाहरण के लिए कर्म (प्रधान कर्म Direct Object) से कल्म (गौण कर्म Indirect Object), और कंवर (जिसका पिता जीवित हो) से भंवर (जिसका दादा जीवित हो)।

फलत साधारण वोलचाल की भाषा की अपेक्षा इन रचनाओं की भाषा में कुछ अन्तर था। ब्रह्मभट्टो की व्रजभाषा पिंगल नाम से प्रसिद्ध हुई और चारणो की राजस्थानी डिंगल नाम से।[१]

चारणो और भाटो मे बहुत दिनो तक प्रतिद्वंद्विता रही। अभी भी वह विलकुल लुप्त नही हुई है। आगे चलकर चारणो ने भी पिंगल को अपनाया और सूर्यमल्ल, स्वरूपदास, गणेशपुरी जैसे प्रमुख चारण कवियों ने पिंगल में रचना की। सूर्यमल्ल के वशभास्कर का तीन-चौथाई से भी अधिक भाग पिंगल में है; उसमे डिंगल का प्रयोग वहुत ही थोडा, नाम मात्र के लिए ही, हुआ है।

उत्तर-काल मे पिंगल की कृत्रिमता धीरे-धीरे वढती गयी। अनुस्वार का प्रयोग पृथ्वीराज-रासो (जो पिंगल की एक प्राचीन रचना है, और जिसकी रचना अकवर के शासनकाल मे हुई होगी) मे भी देखा जाता है। पीछे की रचनाओ मे यह और भी अधिक पाया जाता है। शव्दो की तोड-मरोड भी मनमानी की जाने लगी और प्रचुर मात्रा में की जाने लगी।

क्या डिंगल कृत्रिम भाषा है?--डिंगल को कभी-कभी चारणों द्वारा गढी हुई कृत्रिम भाषा वतलाया जाता है पर यह कथन ठीक नही। डिंगल मूलतः वोलचाल की राजस्थानी से भिन्न नही थी। आरम्भ मे वीर-रसात्मक कविता मे वीररसोपयोगी द्वित्त और सयुक्त वर्णो तथा समासयुक्त शव्दावली, का प्रयोग विशेष होता था। अपभ्रश के कज्ज, कम्म आदि शव्द वोलचाल की भाषा मे काज, काम आदि वन गये पर वीर-रस की कविता में वैसे ही चलते रहे। वोलचाल की भाषा का विकास होता गया पर इस काव्य-भाषा ने प्राचीनता को इतनी जल्दी छोडना नही चाहा। उसमें अनेक प्राचीन शव्दो और रूपो का प्रयोग होता रहा यद्यपि वे वोलचाल की भाषा से उठ चुके थे। फलतः दोनों में कुछ अन्तर पड गया। यह अन्तर व्याकरण का नही किन्तु शव्दावली और शव्दो की वर्तनी का था। साधारण वोलचाल की भाषा से डिंगल कवियो ने सम्वन्ध-विच्छेद कभी नही किया। उसको वे वरावर अपनाते रहे पर प्राचीन शव्दो और वर्तनी को वे सर्वथा कभी नही छोड पाये। सुप्रसिद्ध चारण कवि आढा ओपा की कविता की भाषा वोलचाल की भाषा से भिन्न नही; रूढिवद्ध डिंगल से अपरिचित राजस्थानी को उसे समझने में कोई ऐसी कठिनता नही होती। उत्तरकाल मे जव डिंगल के कवियो ने पिंगल को अपनाया तो उसकी कृत्रिम शैली का प्रभाव डिंगल पर भी पड़े विना नही रहा। अतः डिंगल की

[१] साधारण राजस्थानी और डिंगल मे लगभग वैसा ही अंतर है जैसा साधारण व्रजभाषा और पिंगल मे है। पिंगल की सवसे महत्त्वपूर्ण रचना पृथ्वीराजरासो है जिसका प्राचीन अंश अकवर के समय से पूर्व का नही।

भी दो शैलिया हो गयी—(१) जो वोलचाल की भापा से मिलकर उनके निकट आ गयी और (२) जो पिंगल से प्रभावित होकर अधिक कृत्रिम वन गयी।

साधारण राजस्थानी और डिंगल का अन्तर—डिगल राजस्थानी से भिन्न कोई भाषा नही, वह राजस्थानी की ही एक काव्य-गत शैली-विशेष है। साधारण राजस्थानी और डिंगल मे मुख्य अन्तर, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, या तो शव्दावली का है या शव्दों की वर्तनी का, व्याकरण का अन्तर सर्वथा नगण्य है।

(क) शव्द-कोष—राजस्थानी के सामान्य शव्दों के अतिरिक्त डिंगल में अनेक ऐसे शव्दो का प्रयोग पाया जाता है जो या तो वोलचाल से उठ चुके है या कभी वोलचाल मे थे ही नही, कोपो मे ही पाये जाते है। डिंगल-शव्दकोषों मे वीर-रस के वर्णन से संवद्ध पदार्थो के लिए अनेक नाम मिलते है, एक-एक शव्द के दर्जनो पर्याय पाये जाते है। घोडे के ७०, हाथी के ५५ और तलवार के ५० पर्याय शव्द मुरारिदान के डिंगल-कोप में दिये गये है।

(ख) वर्तनी या ध्वनि-सम्वन्धी विशेषताएं—वर्तनी-सम्वन्धी ये परिवर्तन छन्द के अनुरोध से ही किये जाते है अन्यथा शव्द अपने तद्भव (या कभी-कभी तत्सम) रूपों में ही प्रयुक्त होते हैं—

(१) अपनिहिति—शव्द के मध्य मे इ, य या व् का आगम। जैसे—वइन्नर (वन्नर, वानर), राइठौड-रायठौड़ (राठौड़), हइत्थळ—हईथळ-हयत्थळ (हत्थळ), रयत्थ (रत्थ), रयक्खण (रक्खण), तियग्ग (तेग), चदेउरी-चदेवरी (चंदेरी=चंद्रगिरि)।

(२) स्वरभक्ति—संयुक्त व्यंजनो के मध्य मे स्वर का आगम। जैसे—धरम (धर्म), तियाग (त्याग), परव (पर्व), सरप (सर्प)।

(३) मध्य में अ, ह, र या र् का आगम। जैसे—दुअट्ठ (दुट्ठ-दुष्ट), अवहर (अवर), जवुअहदीप (जवुअदीप—जंवूदीप), सरजल (सजल), भ्रख (भख)।

(४) ह्रस्व को दीर्घ करने के लिए अनुस्वार का आगम। जैसे—गजंसाह (गजसाह), कनक (कनक—कनक्क)।

(५) ह्रस्व को दीर्घ करने के लिए वर्ण को द्वित्त करना। जैसे—कटक्क (कटक), अम्मर (अमर), अरज्जण (अरजण—अर्जुन), सपत्त, सापत्त (सपत—सप्त), ध्रम्म (ध्रम—धर्म), निरम्मल-निरम्मल्ल म्रिम्मल (निरमल—निर्मल), म्रिग्ग-मिरिग्ग (म्रिग—मृग)।

(६) विपर्यय—र का स्थान-विपर्यय—अगले वर्ण पर स्थित र को पूर्व वर्ण के साथ सयुक्त करना। जैसे—ध्रम (धर्म), क्रम (कर्म), प्रव (पर्व), स्रव (सर्व), ग्रव (गर्व), न्रिमल (निर्मल), क्रीति (कीर्ति)।

(ग) उच्चारण-सम्बन्धी—

(१) किसी वर्ण के साथ य का सयोग होने पर, व्रजभाषा की भाँति, उच्चारण मे पूर्व स्वर पर जोर नही पडता और वह, यदि ह्रस्व हो तो, इस संयोग के कारण दीर्घ नही होता। जैसे—**कर्‍यो, उब्यो, चल्यो में** क, उ और च एकमात्रिक है। संस्कृत के तत्सम शब्दों पर यह नियम लागू नही होता। जैसे—**सत्य में स** की दो मात्राए है (सत्य का उच्चारण वस्तुतः सत्त्य जैसा होता है)।

(२) किसी वर्ण के साथ र् का संयोग होने पर उच्चारण मे पूर्व स्वर पर प्रायः जोर नही पडता और वह, यदि ह्रस्व हो तो, इस सयोग के होने पर भी ह्रस्व ही माना जाता है, दीर्घ नही (पर छंद के लिए आवश्यक हो तो दीर्घ भी माना जा सकता है)। जैसे—

१. पग-वंदण करि देइ **पत्र**। (**प** की एक मात्रा)

२ कोइ कोमळ **वसत्रे** कोड कंवळि। (स की एक मात्रा)

(२) राजस्थानी साहित्य

राजस्थानी साहित्य जीवन का साहित्य है। वह जीवन से अलग पागलो का प्रलाप नही किन्तु जीवन के साथ घनिष्ठ संबध रखने वाला है। वह जीवन को प्रेरणा देने वाला और उसमे नयी चेतना फूकनेवाला है। राजस्थान का कवि केवल कवि ही नही होता था, वह कलम के साथ-साथ तलवार का भी धनी होता था। उसकी सप्राण कलम का चमत्कार ससार अनेक बार देख चुका है। महाराणा प्रताप और पृथ्वीराज के पत्र की घटना सु-प्रसिद्ध है।

राजस्थानी साहित्य जनता का साहित्य है। जनता के जीवन के नाना-रगी चित्र उसमे प्रचुर मात्रा मे मिलेगे। जनता के सुख-दुख, आशा-निराशा, उमग-आघात, हास्य-रुदन सभी का उसमे मार्मिक अकन हुआ है। कुछ महानुभावो ने उसे एक वर्ग का, सामन्ती, भटैती-भरा और प्रतिगामी साहित्य बताने का साहस किया है। राजाओ और सामन्तो की भटैती उसमे नही है यह हम नही कहते, पर वही तो सपूर्ण राजस्थानी साहित्य नही है। वह तो उसका एक अंश मात्र है। और फिर ऐसी भटैती किस भाषा के साहित्य मे नही है? कौन-सी भाषा उससे अछूती है? रवीन्द्रनाथ और मदनमोहन मालवीय जैसे महापुरुषो की सम्मतियाँ नीचे दी जाती है जिनसे राजस्थानी साहित्य का महत्त्व भली भाति हृदयंगम हो सकेगा।[1]

१. राजस्थानी वीरो की भाषा है। राजस्थानी का साहित्य वीर-साहित्य है।

राजस्थानी साहित्य बहुत विशाल और विस्तृत है। जीवन के सभी अंगो का चित्रण उसमें मिलेगा। साहित्य के नाना प्रकारों का वह सुन्दर प्रतिनिधित्व करता है। विषय-विविधता की उसमे कमी नही। वीर रस का अटूट भडार तो वह है ही, अन्यान्य रसो की भी उसमे कमी नही। ऐसा सुन्दर शृगार मिलेगा कि पाठक मुग्ध हो जायगा, नीति के ऐसे-ऐसे रत्न मिलेगे कि वह फड़क जायगा, भक्ति और शान्त रस की वह पवित्र धारा मिलेगी कि उसमे स्नान कर उसका हृदय पवित्र हो जायगा। राजस्थानी का भक्ति-साहित्य वीर-साहित्य से कही बडा है और ऐसे भक्तो और सन्तो की वाणी का प्रसाद है जिनने जनता के साथ जनता का जीवन बिताते हुए जीवन के तत्त्वो का अनुभव किया था।

राजस्थानी का चारणी वीर-गीतों का और दूहो का साहित्य गुण और परिमाण दोनो दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है। सैकडो दूहे लोगों की जिह्वा पर और हजारो ग्रथभडारों की पोथियों में मिलेगे। दूहा उत्तर-अपभ्रश-काल से ही राजस्थान का बहुत लोकप्रिय छद रहा है। चारणी गीतों की संख्या भी हजारों है। राजस्थान मे शायद ही कोई ऐसा वीर या जूझार हुआ हो जिसकी स्मृति

संसार के साहित्यो मे उसका निराला स्थान है। वर्तमान काल में भारतीय नवयुवकों के लिए तो उसका अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए।

(मदनमोहन मालवीय)

कुछ समय पहले कलकत्ते मे मेरे कुछ राजस्थानी मित्रो ने रण-सम्बन्धी कुछ राजस्थानी गीत सुनाये। मै तो उनको सुनकर मुग्ध हो गया। उन गीतो में कितनी सरसता, सहृदयता और भावुकता है! वे लोगों के स्वाभाविक उद्‌गार है। मै तो उनको संत-साहित्य से भी उत्कृष्ट समझता हूँ······वे गीत संसार के किसी भी साहित्य और भाषा का गौरव बढ़ा सकते है।

(रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

भक्ति-रस का काव्य तो भारतवर्ष के प्रत्येक साहित्य मे किसी-न-किसी कोटि का पाया जाता है······परन्तु राजस्थान ने अपने रक्त से जो साहित्य निर्माण किया है उसकी जोड़ का साहित्य और कही नही पाया जाता। और उसका कारण है। राजस्थानी कवियो ने कठिन सत्य के बीच में रहकर युद्ध के नगारो के बीच अपनी कविताए बनायी थी। प्रकृति का ताडव-रूप उनके सामने था। क्या आज कोई कवि केवल अपनी भावुकता के बल पर फिर उस काव्य का निर्माण कर सकता है?···राजस्थानी भापा के साहित्य मे जो एक भाव है, जो एक उद्वेग है, वह केवल राजस्थान के लिए ही नहीं, सारे भारतवर्प के लिए गौरव की वस्तु है।···मुझे क्षितिमोहन सेन महाशय से हिन्दी काव्य का आभास मिला था पर आज जो मैने पाया है वह बिलकुल, नवीन वस्तु है।··आज मुझे साहित्य का एक मार्ग मिला है।

(रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

मे एकाध गीत न वना हो। हजारो वीरो की स्मृति को इन गीतों ने सुरक्षित रखा है। इतिहास के लिए यह एक अनमोल सपदा है।

राजस्थानी का लोक-साहित्य भी वैसा ही महत्त्वपूर्ण है। यथार्थवादी होते हुए भी उसकी तह मे जीवन के मनोरम आदर्शो की अन्तर्धारा प्रवहमान मिलेगी।

राजस्थानी साहित्य की विशेष रूप से उल्लेखनीय विशेपता उसका प्रचुर गद्य-साहित्य है। भारत की अन्यान्य भाषाए इस विषय मे इतनी सौभाग्य-शालिनी नही। राजस्थानी मे गद्य-रचना चौदहवी शताव्दी से अव तक वरावर होती रही है। बीसवी शताव्दी मे हिन्दी के आगमन के कारण गद्य-लेखन-परम्परा की गति मद अवश्य पड गयी पर वद कभी नही हुई। इस साहित्य मे ऐतिहासिक कृतियाँ भी है और कथात्मक कृतियाँ भी।

प्राचीन राजस्थानी साहित्य का संक्षिप्त परिचय

राजस्थानी साहित्य के विकास को तीन कालो मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) प्राचीन काल —स० ११५० से १५५०
(२) मध्य-काल —स० १५५० से १८७५
(३) अर्वाचीन काल—स० १८७५ के पश्चात्

प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य का ही सक्षिप्त परिचय नीचे दिया जायगा। यह साहित्य तीन विभिन्न शैलियो मे लिखा हुआ है—

(१) जैन शैली, (२) चारणी शैली, (३) लौकिक शैली।

जैनो के प्राकृत और अपभ्रश साहित्य की परपरा राजस्थानी मे भी चालू रही। जैनो का यह साहित्य विस्तार मे वहुत वडा है। चारणी साहित्य से यह विस्तार मे ही नही किन्तु विषय-विविधता की दृष्टि से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह अधिकाश धार्मिक है। कथा-साहित्य की प्रचुरता इसकी एक वड़ी भारी विशेषता है। यह वहुत विशाल है। गद्य और पद्य दोनो मे वह प्रभूत परिमाण मे लिखा गया। तत्कालीन सामाजिक और सास्कृतिक इतिहास पर उससे महत्त्वपूर्ण प्रकाश पडता है। गद्य-साहित्य की प्रचुरता उसकी दूसरी वड़ी विशेषता है। हिन्दी आदि भाषाओ मे प्राचीन गद्य का अभाव-सा है पर राजस्थानी मे चौहदवी शताब्दी से गद्य-साहित्य वरावर मिलता है और प्रभूत परिमाण मे मिलता है।

जैन साहित्य अनेक रूपो मे लिखा गया। जैसे—(क) प्रवंध, कथा, रास, रासो, भास, चौपई, (ख) फाग, वारहमासा, चौमासा, (ग) दूहा, गीत, धवल, गजल, (घ) सवाद, मातृका (वावनी, ककहरा), स्तवन, सज्भाय (स्वाध्याय); (ड) पट्टावली, गुर्वावली, वही, दफ्तर, पत्र, (च) वालाववोध, टव्वा आदि-आदि।

(क) समुदाय प्रबंध और कथा काव्यो का है। रास मूल रूप में वह काव्य था जो रास नृत्य के साथ गाया जाता था। वह राग-रागिनियों मे या अपभ्रंश के छंदों मे लिखा जाता था। आगे चलकर नृत्य से उसका संबध छूट गया और उसने लबे कथा-काव्य का रूप धारण कर लिया। युद्ध-वर्णनात्मक काव्य साधारणतया रासो (रासक) कहलाया।

(ख) समुदाय ऋतु-काव्यो का है। फाग मे वसन्त के सौन्दर्य का और प्रेमियो के वासंतिक नृत्यादि का वर्णन होता था। (ग) समुदाय-दूहा उत्तरकालीन अपभ्रंश और राजस्थानी का प्रमुख छद है। राजस्थानी का दूहा-साहित्य बहुत विशाल है। गजल मे किसी नगर या स्थान का वर्णन होता था।

(ङ) समुदाय ऐतिहासिक रचनाओं का है और (च) समुदाय टीकाओ का। बालावबोध टीकाओं मे मूल के अर्थ की व्याख्या के साथ-साथ विषय को स्पष्ट करने के लिए प्रसंगोपात्त कथाओं को भी प्रायः ग्रथित किया जाता था। बालावबोधो में संगृहीत कथाओ के ये सग्रह राजस्थानी गद्य-साहित्य के महत्त्व-पूर्ण अग है। जैन साहित्य की भाषा मे प्राचीनता का पुट पाया जाता है और कही-कही गुजराती का प्रभाव भी देखने में आता है।

चारणी शैली का साहित्य वीर-रसात्मक और ऐतिहासिक है। इसकी भाषा डिंगल कहलाती है। इस शैली का प्राचीन रूप अपभ्रंश के पुष्पदत-कृत महा-पुराण तथा मुनि कनकामर कृत करकंडु-चरिउ मे देखा जाता है। चारणी साहित्य वीरो के स्वातंत्र्य-संग्राम का साहित्य है। यह प्रधानतया चारणो की रचना है जो तलवार चलाने मे भी वैसे ही कुशल थे जैसे कलम चलाने मे—जो युद्ध-भूमि मे दूसरो को प्रोत्साहित ही नही करते थे किन्तु तलवार लेकर जूझ भी जाते थे।

लौकिक साहित्य साधारण जनता का साहित्य है।

जैन साहित्य—वज्रसेन सूरि का **भरतेश्वर-बाहुबलि-घोर** राजस्थानी की प्राचीनतम रचना है। वह ४६ पद्यो का एक छोटा-सा वीर और शान्त रसो का काव्य है। इसका लेखक नागपुरीय तपागच्छ के देवसूरि का शिष्य **वज्रसेन सूरि** था। **शालिभद्र सूरि** राजस्थानी का सबसे प्रथम महत्त्वपूर्ण कवि है। सं. १२४१ में उसने भरत-बाहुबलि-रास नामक खंडकाव्य देशी छदो और राग-रागिनियो मे लिखा। इस प्रकार के रास और दूसरे कथात्मक काव्य मध्यकाल के अन्त तक बराबर लिखे जाते रहे।

स. १३२५ के आसपास विनयचद्र ने नेमिनाथ-चउपई की रचना की जो विरह-प्रधान बारहमासा-काव्य है। जिनपद्म का स्थूलिभद्र-फाग (स १३९०) मनोहर ऋतु-काव्य है। इस शैली की अन्यान्य सुन्दर रचनाओ में सोमसुन्दर का नेमिनाथ-नवरस-फाग (१४८५) और एक अज्ञात कवि द्वारा रचित वसंत-

विलास (१५वी-१६वी शताब्दी) उल्लेखनीय है। सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ मे जेसलमेर के जैन कवि कुशललाभ ने ढोला-मारू-री चउपई और माधवानल-कामकदला चउपई नामक दो सुन्दर प्रेम-काव्य लिखे। पिगलशिरोमणि नामक एक रीति-ग्रथ भी उसने लिखा। समयसुन्दर (१६३७–१६९९) ने लगभग २० वड़े काव्य और अनेक छोटे काव्य तथा पद आदि लिखे। सीताराम-चौपई उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। १८ वी शताब्दी मे जिनसमुद्र सूरि और जिनहर्ष उपनाम 'जसराज' ने विशाल परिमाण में रचना करके राजस्थानी साहित्य के भडार को भरा। जसराज के प्रेम और शृगार संबंधी दूहे वहुत प्रसिद्ध हुए। उदयराज एक और दूहा-लेखक हुआ जिसके दूहो ने खूब लोकप्रियता प्राप्त की।

जैनो के श्वेताम्बर तेरापथी सम्प्रदाय ने राजस्थानी की महत्त्वपूर्ण सेवाए की। आज भी, जब दूसरे जैन सम्प्रदायो ने हिन्दी को अपना लिया है, तेरापथी सम्प्रदाय राजस्थानी भापा को प्रधानता देता है। तेरापथी साहित्यकारो मे सबसे महत्त्वपूर्ण नाम सम्प्रदाय के चतुर्थ आचार्य जीतमलजी (जयभिक्षु) का है जिनका देशी राग-रागिनियो मे किया हुआ भगवती-सूत्र का अनुवाद राजस्थानी का सबसे बडा ग्रथ है। इस ग्रंथ की श्लोक-सख्या ८० हजार के लगभग है।

जैन विद्वानो ने साहित्य की रचना ही नही की किन्तु साहित्य की रक्षा करने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी किया। जैन और जैनेतर सभी प्रकार के साहित्य को उनने सगृहीत किया और उसे लुप्त होने से बचाया। सैकड़ो जैनेतर ग्रथ, जो अन्यत्र अलम्य है, जैन-भडारो मे देखे जा सकते है। राजस्थान के मौखिक साहित्य का सग्रह करके उसे भी उनने सुरक्षित रखा।

लौकिक साहित्य—स. १२७२ मे नरपति नाल्ह ने (जो एक ब्राह्मण था) वीसळदे-रास की रचना की। यह जनता की भापा मे लिखित एक छोटा-सा प्रेम-काव्य है। लौकिक साहित्य की सब से उल्लेखनीय रचना 'ढोला-मारू-रा दूहा' है। यह एक वहुत प्रसिद्ध प्रेम-काव्य है। इसके दूहे जनता मे वहुत प्रचलित हुए। सदयवत्स और सावलिंगा की प्रेमकथा भी वहुत लोकप्रिय हुई। अनेक लेखको ने उस पर कलम चलायी। ऐसी ही एक और प्रेमकथा माधवानल-कामकदला की है। वह भी अनेक लेखको द्वारा लिखी गयी। सब से प्राचीन कृति गणपति कायस्थ का माधवानल-कामकदला-दोग्धक-प्रवन्ध है जिसकी रचना स. १५८३ मे हुई। सम्राट् विक्रमादित्य ने लोक-कल्पनाको वहुत प्रभावित किया। उसके सम्वन्ध मे अनेक लोक-कथाए वनी और जनता मे प्रचलित हुई। इन कथाओ को लेकर अनेक कृतियाँ लिखी गयी जिनमे उसके अदम्य साहस, वीरता, उदारता और महानता का चित्रण हुआ। सिंहासन-वत्तीसी, पचदड-प्रवन्ध, विक्रम-चरित, वेतालपचीसी आदि के नाना रूपान्तर राजस्थानी मे उपलब्ध होते है। पचतत्र की कथाओ के भी कई रूपान्तर तय्यार हुए।

हरजी-रो व्यावलो (या रुकमणी-मगल) और नरसीजो-रो माहेरो—ये दो कृतियाँ राजस्थानी जनता में वहुत लोकप्रिय हुई। प्रथम का लेखक पदमा तेली और दूसरी का रतना खाती था। व्यावले मे कृष्ण द्वारा रुक्मिणी के हरण की कथा है। माहेरे मे कृष्ण के नरसी मेहता की पुत्री नान्हीवाई का माहेरा (भात) भरने का वर्णन है। यह एक छोटा-सा खड-काव्य है जिसमे करुण और हास्य का वड़ा हृदयग्राही मेल हुआ है।

लौकिक साहित्य का एक प्रमुख प्रकार 'ख्याल' है जो आगे जाकर विकृत हो गया। सैकडों ख्याल वने और जनता में उनका प्रचार भी हुआ। इनमे हेड़ाऊ-मेरी का ख्याल वहुत प्रसिद्ध है जिसका होली के अवसर पर अभिनय भी किया जाता है। ख्याल अधिकाश मे गायक-मंडलियो द्वारा गाये और अभिनय किये जाते थे।

लौकिक साहित्य का एक और रूप सलोका-साहित्य है।

लोक-गीतों मे दो का उल्लेख अत्यन्त आवश्यक है। 'जीण-माता' का गीत करुण-रस की एक उत्कृष्ट रचना है जिसे किसी भी भाषा के श्रेष्ठ गीतो के मुकावले मे रखा जा सकता है। दूसरा 'डूगजी-जवारजी' का गीत है जो वीर-रस का फड़कता हुआ उदाहरण है और वहुत लोकप्रिय है।

सन्त-साहित्य को भी हम लौकिक साहित्य के अन्तर्गत ही परिगणित करेंगे। राजस्थान में समय-समय पर अनेक सम्प्रदायों की स्थापना हुई जिनने अनेक संत-कवियो को जन्म दिया। कवीर, सूर आदि के अनेक पद राजस्थानी रूप धारण करके राजस्थानी साहित्य के अग वन गये। इन कवियो मे सवसे अधिक प्रसिद्ध मीरावाई है जो भारत की सर्वश्रेष्ठ नारी-कवि मानी जाती है। उनके पदों को अभूतपूर्व लोकप्रियता प्राप्त हुई। राजस्थान और गुजरात मे ही नही, अपितु वंगाल और मद्रास जैसे सुदूर-स्थित प्रदेशों मे उनके पदो की प्रसिद्धि हुई। मद्रास मे तो मीरादासी संप्रदाय तक स्थापित हुआ। मीरा के पद प्रधानतया राजस्थानी-मिश्रित व्रज-भाषा,मे है। गुजराती का मिश्रण भी कई पदों में मिलता है। श्री मुन्शी के शब्दों मे 'her poetic skill possesses the supreme art of being artless.' चन्द्रसखी के भजन मीरां के भजनो की भाति ही प्रचलित है। वखतावर के पद भी वैसे ही हृदयस्पर्शी हुए है।

राजस्थान की देहाती और निम्न स्तर की जनता पर 'सिद्धो' का काफी प्रभाव रहा है जिनमे पावूजी, रामदेवजी, हड़वूजी, गोगोजी, जाभोजी, तेजोजी आदि उल्लेखनीय है। इनके संवंध का साहित्य भी वड़ा भावपूर्ण है। पावूजी के 'पवाड़े' लोक-काव्य की अत्यन्त उत्कृष्ट रचना है।

चारणी साहित्य—चारणी शैली की प्रारम्भिक रचनाओ मे श्रीधर कृत रणमल्ल-छन्द, ढाढी वहादर कृत वीरमायण और चारण शिवदास कृत अचळदास

खीची-री वचनिका है। रणमल्ल-छद मे ईडर के राजा रणमल और गुजरात के वादशाह के युद्ध का, और वीरमायण मे राव वीरम (जोधपुर के संस्थापक राव जोधा का परदादा) के पराक्रमों का वर्णन है। वचनिका तुकान्त गद्य वाली रचना को कहते है जिसमे पद्य-भाग भी होता है। स. १५९३ मे वीठू सूजा नगराजोत ने 'राउ जइतसी-रउ छंद' की रचना की जो 'राजस्थानी-साहित्य के मुकुट का एक अत्यन्त उज्ज्वल रत्न' है। इसमे वीकानेर के राजा जैतसी के हाथो हुमायू के भाई कामरा की पराजय का वर्णन है। इसकी भापा मे एक तूफानी प्रवाह पाया जाता है। शैली सादगीपूर्ण होती हुई भी अत्यन्त ओजस्विनी और हृदयग्राहिणी है। राजस्थानी के सर्वश्रेष्ठ वीर-काव्यो मे इसका महत्त्वपूर्ण-स्थान है। चारण कवियो मे वारठ ईसरदास शिरोमणि माने गये है। उनकी सर्वश्रेष्ठ रचनाए हरिरस, देवियाण और हाला-झाला-रा कुडळिया है। प्रथम दोनो भक्ति-सबधी रचनाए है जो स्तोत्रो का पद प्राप्त कर चुकी है। 'कुडळिया' का वीर-रस की सर्वश्रेष्ठ रचनाओ मे स्थान है। इनके अतिरिक्त उनने अनेक गीतो और प्रकीर्णक पद्यों की रचना भी की।

चारणी शैली के कवियो मे सबसे अधिक प्रसिद्ध राठोड पृथ्वीराज (१६०६–१६५७) हुआ। वह एक महान् वीर, महान् भक्त और महान् कवि था और अपने जीवन-काल मे ही इन रूपो मे प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। महाराणा प्रताप और पृथ्वीराज के पत्र की घटना सुप्रसिद्ध है। 'क्रिसन-रुकमणी-री वेलि' उसकी प्रमुख रचना है। इसमे राजस्थानी भाषा पर कवि का अद्भुत अधिकार देखने को मिलता है। राजस्थानी भापा मे ऐसी कलापूर्ण कृति सभवत. दूसरी नही। इस पर अनेक टीकाए लिखी गयी जिनमे दो सस्कृत मे है। पृथ्वीराज ने वेलि के अतिरिक्त प्रकीर्णक कविता (गीत, दूहे आदि) भी वहुत लिखी।

दधवाडिया चारण माधोदास ने राम-रासो मे रामायण की कथा कही। झूला साया ने रुकमणी-हरण और नाग-दमण की रचना की (रुकमणी-हरण का लेखक झूला कूभा भी वताया जाता है)। आढा दुरसा चारण कवियो मे वहुत प्रसिद्ध हुआ। उसने महाराणा प्रताप की प्रशसा मे विड़द-छिहत्तरी लिखी। आढा (?) किसना ने हर-पार्वती-री वेलि की रचना कर पृथ्वीराज की क्रिसन-रुकमिणी-री वेलि की स्पर्धा की। खिडिया जगा की रतन महेसदासौत-री वचनिका वचनिका-शैली की सर्वोत्कृष्ट रचना है। जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के लिए करणीदान ने सूरजप्रकाश और वीरभाण ने राजरूपक नामक दो लबे वीर-काव्य रचे। सॉदू खेतसी ने भापा भारथ नाम से महाभारत का सफल रूपान्तर प्रस्तुत किया। कृपादान ने अपने चाकर राजिया को सबोधन करके दूहे लिखे जो 'राजिया-रा दूहा' नाम से बहुत लोकप्रिय हुए। गाडण गोपीनाथ ने वीकानेर के महाराजा गजसिह के लिए गज-रूपक लिखा।

सेवग मनसाराम ने रघुनाथ-रूपक की रचना की जिसमें डिंगल के गीतो, छन्दों और अलंकारो के विवेचन के साथ राम की कथा कही गयी है। कविया रामनाथ की द्रोपदी-करुणा-बत्तीसी करुण-रस की वड़ी ही ललित लघु-रचना है। विश्व के उपालभ-काव्यो मे उसका सम्मान्य स्थान है। आढा ओपा ने भक्ति और वैराग्य के गीत लिखे जो बड़े ही भावपूर्ण है। उत्तर-काल मे जोधपुर का आसिया वाकीदास और बूदी का मीसण सूर्यमल्ल दो वहुत बड़े लेखक हुए। वाकीदास अपने समय का वहुत बड़ा विद्वान् और इतिहासकार था। उसकी सबसे महत्त्वपूर्ण रचना 'ख्यात' है जो गद्य मे है। अनेक छोटे-मोटे काव्य और प्रकीर्णक गीत भी उसने लिखे। इस समय अग्रेज अपना विस्तार राजस्थान मे कर रहे थे। राजस्थान के राजाओं को विना युद्ध के आत्म-समर्पण करते देख स्वातन्त्र्य-प्रेमी चारण-कवियो को बड़ी खीझ हुई और उनने राजाओ को फटकारते हुए वहुत-सी प्रकीर्णक रचनाएं लिखी। अग्रेजो से लड़ने के कारण मराठो की उन्होने प्रशसा भी की।

मीसण सूर्यमल्ल को चारण लोग सबसे बड़ा चारण-कवि मानते है और उसमे कविता की इतिश्री समझते है। उसकी विद्वत्ता और वहुज्ञता अद्वितीय थी जिसका प्रदर्शन उसके महाकाव्य वंश-भास्कर मे खूब हुआ है। वंश भास्कर लगभग दो हजार पृष्ठो का वृहद् काव्य है जिसमे बूदी के राजाओ का इतिहास है। ग्रंथ यह राजस्थानी का नही किन्तु पिंगल (व्रजभाषा) का है पर वीच-बीच मे राजस्थानी और संस्कृत का भी प्रयोग हुआ है। शौरसेनी, महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी तथा अपभ्रंश को भी स्थान मिला है। वीरसतसई उसकी दूसरी रचना है जो राजस्थानी मे है। यह ग्रंथ अधूरा है। इस समय ३०० से अधिक दूहे नही मिलते। यह वड़ी ही ओजस्विनी कृति है।

इनके अतिरिक्त हजारो दोहे और गीत भी लिखे गये जो विभिन्न भडारो की पोथियों मे बिखरे पड़े है। गीत अधिकांश मे युद्धो मे जूझने वाले वीरो की स्मृति मे लिखे गये। हजारो वीरों की स्मृति को इन गीतो ने सुरक्षित रखा है जब कि समय और जनता दोनो ही उनको भूल चुके है। राजिया के अतिरिक्त किसनिया, भैंरिया, जेठवा, नागजी आदि को संबोधन करके लिखे हुए दोहे अव भी जनता के हृदयों में घर किये हुए है। इनमे काव्य की दृष्टि से जेठवा के दूहे विशेष महत्त्वपूर्ण है। उनके पीछे एक वड़ी करुण प्रेम-कथा है। उनकी रचना ऊजळी नामक चारणी ने जेठवा को संबोधन करते हुए की थी।

गद्य-साहित्य—राजस्थानी का प्राचीन गद्य जैन लेखको का लिखा हुआ है। अव तक के प्राप्त उदाहरणों मे सवसे प्राचीन उदाहरण सं. १३३० का है। सग्राम-सिह की बाल-शिक्षा (१३३६) संस्कृत का एक वालोपयोगी व्याकरण है जिसमे उदाहरण, तथा शब्दो और प्रयोगों के अर्थ, राजस्थानी मे दिये हुए हैं। इस

प्रकार की रचनाएं आगे चलकर औक्तिक कहलायी। ऐसी अनेक रचनाए उपलब्ध हुई है जिनमे सवसे महत्त्वपूर्ण कुलमंडन का मुग्धाववोध-औक्तिक (१४५०) है। इनसे उस समय की वोलचाल की भापा पर अच्छा प्रकाश पडता है।

इस काल मे जैन साधुओ ने जैन धर्म के उपदेशो को लोकप्रिय वनाने के लिए धर्मकथाए लिखी। गद्य के विकास मे इन धर्मकथाओ का वड़ा हाथ रहा है। ये कथाएं अधिकाश मे जैन धर्म के प्रमुख धार्मिक ग्रथो की व्याख्याओ के साथ, मूल पद्यो मे कथित सिद्धान्तो के उदाहरण-रूप मे, लिखी गयी। ऐसी कहानियो वाली व्याख्याएं वालाववोध नाम से प्रसिद्ध हुई। सवसे प्राचीन वालाववोध खरतरगच्छीय तरुणप्रभ सूरि का षडावश्यक-वालाववोध है जिसकी रचना स. १४१२ मे हुई। इस प्रकार तरुणप्रभ राजस्थानी के सर्वप्रथम प्रौढ़ गद्यकार है। अन्य वालाववोधकारो मे सोमसुन्दर सूरि (१४३०-१४९९), मेरुसुन्दर और पार्श्वचन्द्र के नाम उल्लेखनीय है। सोमसुन्दर सूरि तपागच्छ के आचार्य थे, मेरुसुन्दर-खरतर गच्छ के और पार्श्वचन्द्र पार्श्वचंद्र-गच्छ के।

धर्मकथाओ मे सवसे महत्त्वपूर्ण माणिक्यचन्द्र सूरि का पृथ्वीचन्द्र-चरित्र (१४७०) है जिसका दूसरा नाम वाग्विलास है। यह एक प्रौढ़ कलात्मक कृति है। भापा संगीतमयी है और वाक्य अन्त्यानुप्रास-पूर्ण (सतुकान्त) है। चारणी साहित्य में ऐसी अन्त्यानुप्रास-युक्त वाक्यो वाली रचना को वचनिका और दवावैत कहा गया है। वचनिका की भाषा राजस्थानी तथा दवावैत की भापा राजस्थानी-मिश्रित खडीवोली (उर्दू) होती थी। दवावैतो में पद्य भाग कम मिलता है। वचनिकाओ मे उसकी प्रचुरता मिलती है। वचनिकाओ मे दो वहुत प्रसिद्ध है। एक शिवदास कृत अचळदास खीची-री वचनिका, जिसमे गागरोनगढ़ के खीची (चौहान)-वशीय राजा अचलदास के वीरतापूर्ण युद्ध और अन्त का वर्णन है और जिसकी रचना पन्द्रहवी शताब्दी के चतुर्थ चरण मे हुई, तथा दूसरी खिड़िया जग्गा की राठौड़ रतन महेसदासौत-री वचनिका, जिसमे औरगजेव और जसवन्त-सिंह के वीच होने वाले उज्जैन के युद्ध (१७१३) मे राठौड़ रतनसिंह के वीरता-पूर्ण युद्ध और मरण का वर्णन है। ये वास्तव में चंपू-काव्य है जिनमे गद्य के साथ पद्य भी मिश्रित है। दवावैतों मे भाट मालीदास कृत नरसिंघदास गौड-री दवावैत प्रसिद्ध है जिसकी १८ वी शताब्दी के पूर्वार्ध मे लिखित प्रति प्राप्त हुई है। जैन लेखको ने भी वचनिकाएं और दवावैते लिखी है। सोलहवी शताब्दी की दो ऐसी रचनाएं मिली हैं जिनमे एक खरतर-गच्छीय जिनसमुद्र-सूरि और राव सातल के विषय मे है और दूसरी खरतर-गच्छीय शातिसागर सूरि के विपय मे। सं. १७७२ मे उपाध्याय रामविजय ने जिनसुख-सूरि-दवावैत की रचना की जिसका दूसरा नाम 'मजलस' भी है। १९वी शताब्दी के प्रारम्भ मे वाचक विनयभक्ति ने जिनलाभ-सूरि-दवावैत लिखी।

राजस्थानी गद्य का दूसरा महत्त्वपूर्ण रूप ऐतिहासिक साहित्य है। राजस्थानी मे यह प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है। भारत के सुदूर-पश्चिम की राजस्थानी के साथ सुदूर-पूर्व की असमिया ही ऐसी भाषा है जिसमे प्राचीन ऐतिहासिक गद्य मिलता है और प्रचुर मात्रा मे मिलता है। यह ऐतिहासिक गद्य ख्यात, वात, जीवनी, आख्यान, वंशावळी, पट्टावळी, पीढियावळी, दफ्तर, बही, विगत, हगीगत आदि विविध रूपो मे मिलता है। वात मे किसी ऐतिहासिक घटना या व्यक्ति या स्थान का इतिहास संक्षेप में होता है। ख्यात मे या तो वातो का सग्रह होता है या निरतर इतिहास होता है। ख्यातकारो मे सर्वप्रमुख नैणसी, वाकीदास और दयालदास है। नैणसी जैन ओसवाल था और जोधपुर के महाराज जसवंतसिह का दीवान था। उसे राजस्थान का अबुलफजल कहा गया है। उसकी ख्यात मे राजस्थान के विविध राजपूत राजवशो का इतिहास है। उसने जोधपुर राज्य का एक सर्वसग्रह भी लिखा था। वाकीदास की ख्यात मे २५०० से ऊपर वातों का संग्रह है। ये वाते नैणसी की ख्यात की वातो से भिन्न प्रकार की है। ये वहुत छोटी-छोटी टिप्पणियो के रूप मे है, अधिकाश एक-एक या दो-दो पंक्तियो की ही है। इनमे राजस्थान के तथा बाहर के राजपूत राजाओं और ठिकानेदारो के, तथा मुसलमानो, मरहठो और सिक्खो के, एवं ओसवाल आदि अनेक जातियो के, इतिहास से सम्बन्धित सामग्री तथा भारत के अनेक नगरो के भौगोलिक विवरण संगृहीत है। दयालदास की ख्यात मे वीकानेर के राठौड़ राजवश का आरम्भ से निरंतर इतिहास दिया हुआ है। राजस्थानी गद्य की दृष्टि से उक्त तीनो ख्याते वडी महत्त्वपूर्ण है। उनमे राजस्थानी के प्रौढ गद्य के दर्शन होते है। दळपतविलास में वीकानेर के महाराजकुमार दलपतसिह का जीवन-चरित्र है। ग्रंथ मे तत्कालीन इतिहास से सम्वन्धित महत्त्वपूर्ण सामग्री है पर दुर्भाग्य से ग्रंथ अपूर्ण है।

आख्यानो मे इतिहास के साथ लोक-कल्पना और अलौकिक घटनाओ का भी मिश्रण हो गया है। वशावळी और पीढियावळी मे राजाओ आदि की पीढियों का क्रमिक वर्णन होता है, वीच-वीच मे उल्लिखित व्यक्तियों से सम्वन्धित ऐतिहासिक टिप्पणियां भी रहती है। दफ्तर मे डायरी की शैली मे घटनाओं का विवरण रहता है।

ऐतिहासिक गद्य जैनो ने भी अच्छी मात्रा मे लिखा है।

राजस्थानी गद्य का तीसरा महत्त्वपूर्ण रूप वातो अथवा कहानियो का साहित्य है। इन कहानियो के सैकड़ो सग्रह मिलते है जिनमे हजारों कहानिया है—धर्म की और नीति की, वीरता की और प्रेम की, हास्य की और करुणा की, राजाओ की और प्रजाओ की, देवताओ की और भूत-प्रेतों की, चोरो की और डाकुओ की, आदर्शवादी और यथार्थवादी, लोक-कथाएं और कलाकृतियां,

साराश यह कि सभी प्रकार की। कुछ प्रमुख और विशेष प्रसिद्धि-प्राप्त कहानियो के नाम इस प्रकार है—राजा भोज, माघ पण्डित और डोकरी-री वात, राजा भोज अर खाफरै चोर-री वात, सयणी चारणी-री वात, फोफाणद-री वात, जसमा ओडणी-री वात, चदण और मलयागिर-री वात, चीवोली-री वात, एकळगिड डाढाळा वराह-री वात, अचळदास खीची-री वात, ऊमा भटियाणी-री वात, मूमल-महॅंदरै-री वात, पलक दरियाव-री वात, राजकुमार कुतवदी-री वात, खुदाय वावळी-री वात। पचतत्र, सिहासन-वत्तीसी, वेताल-पच्चीसी आदि के भाषान्तर या रूपान्तर भी प्रस्तुत हुए।

कलात्मक गद्य की कृतियो मे खीची गंगेव नींवावत-रो दोपहरो उल्लेखनीय है। राजान-रावत-रो वात-वणाव, सभाश्रृगार, मुत्कलानुप्रास, कौतूहल, भोजन-विच्छित्ति ग्रंथो मे विविध-विषयक वर्णनो के सुन्दर संग्रह है। वात-वणाव मे विविध वर्णनो को वड़े कलापूर्ण ढग से कथारूप में ग्रथित किया गया है। तुकान्त गद्य इन सब की एक प्रमुख विशेषता है। वचनिकाए और दवावैते भी इसी प्रकार की रचनाए है जिनका उल्लेख ऊपर हुआ है।

(३) रुक्मिणी-संबंधी साहित्य

भारतीय भाषाओ मे रुक्मिणी की कथा को लेकर अनेक काव्य लिखे गये। राजस्थानी तथा व्रजभाषा मे लिखित कुछ रचनाओ का उल्लेख आगे किया जाता है।

(१) **हरिजी-रो व्यांवलो अथवा रुकमणी-मंगळ**—इसका कर्त्ता पदम भगत था जो जाति का तेली था। रचना-काल विक्रम की सत्रहवी शताब्दी है। यह विविध राग-रागिनियो मे लिखा गया है। इसमे रुक्मिणी की कथा वाल्य-काल से लेकर उसके विवाह तक की दी गयी है। जनता मे इसका वहुत प्रचार हुआ। अभी भी गायक-मंडलिया रात्रि के समय इसको गाया करती हैं। भोजन और गृहकार्य से निवृत्त होने के पश्चात् नर-नारी एक स्थान पर एकत्र हो जाते है और गायक लोग इसे विविध वाद्यो के साथ गाकर सुनाते हैं। समाप्ति पर, कथाओं की भाति, भेट-पूजा चढाई जाती है और गायकों को जिमाया जाता है। लोक-प्रचलित होने के कारण काव्य की दुर्दशा भी वहुत हुई। वह विखर गया और वहुत-कुछ नष्ट हो गया। कुछ उत्साही सग्राहको ने समय-समय पर इसका सग्रह किया। फलत इसकी हस्तलिखित प्रतियो मे परस्पर वहुत अन्तर मिलता है। सवसे पिछला उद्धार डीडवाणा के शिवकर्ण रामरतन दरक ने किया और उसे छपाया। इसमे भी परिवर्तन-परिवर्धन होता रहा। अव भी यह वैसा ही लोकप्रिय है यद्यपि उसके गाने की प्रथा धीरे-धीरे कम होती जा रही है।

कविता की दृष्टि से यह वड़ी सुन्दर रचना है। रुक्मिणी की कथा के साथ राजस्थान के साधारण जन-जीवन और उसकी प्रथाओं का वड़ा सजीव चित्रण इसमें हुआ है। भाषा बिलकुल सरल और बोलचाल की है।

(२) **रुकमणी-हरण**—इसकी रचना भूला शाखा के चारण सांया ने की। इसके संवंध में एक किंवदन्ती प्रसिद्ध है। पृथ्वीराज की वेलि और भूला सांया का रुकमणी-हरण दोनों वादशाह अकबर के पास पहुँचे। अकवरने पहले वेलि को सुना, फिर रुकमणी-हरण को। 'हरण' को सुनने के वाद उसने कहा—पृथ्वीराज ! तुम्हारी वेल को चारण बावा की हरणी चर गयी। वस्तुतः रुकमणी-हरण एक साधारण रचना है जिसकी वेलि के साथ कोई तुलना नही की जा सकती।

(३) **वीठळदास कृत रुकमणी-हरण**—२६० पद्यों मे साधारण रचना है।

(४) **किसनजी-री वेल**—सांखला करमसी रूणेचा कृत। इसकी हस्तलिखित प्रति १६३४ की प्राप्त हुई है। रचनाकाल इससे अधिक दूर नही है। इसमें रुकमणी का नख-शिख वर्णित है। यह केवल २२ पद्यों की एक लघु रचना है।

(५) **मुरारिदास बारठ कृत गुण-विजै व्याह**—२३१ पद्यो का प्रसाद-गुण संपन्न सरस खंड काव्य है। इसका रचनाकाल सं. १७७५ है।

जैन ग्रंथकारों ने भी **रुकमणी-मंगळ, रुकमणी-हरण** अथवा **वैदर्भी-चौपाई** नाम से इस प्रसंग को लेकर अनेक रचनाएं लिखी है जिनमे सुमतिहंस की **वैदर्भी-चौपाई** उल्लेखनीय है।

व्रजभाषा की रचनाएं प्रायः रुकमणी-मंगल नाम से प्रसिद्ध है। इनमे सबसे प्राचीन अष्टछाप के सुप्रसिद्ध कवि नन्ददास का रुकमणी-मंगल है। यह १३३ रोला छंदों में लिखा हुआ सु-मधुर लघु-काव्य है। दूसरी महत्त्वपूर्ण रचना केसौराय का रुकमणी-मंगल है जो विविध छन्दों में रचा गया है। तीसरी रचना सम्राट् अकवर के दरवारी कवि नरहरि भट्ट की है। यह भी अेक छोटी-सी रचना है जिसमें विविध छंदों का प्रयोग हुआ है जिनमे चांद्रायणा प्रमुख है। अन्यान्य मंगलों के लेखको के नाम इस प्रकार है—(४) नवलसिंह, (५) हीरालाल, (६) ठाकुरदास, (७) रामकृष्ण चौबे। रीवा-नरेश महाराज रघुराजसिंह ने इसी विपय को लेकर रुकमणी-परिणय नामक एक विस्तृत काव्य की रचना की।

रुकमणी के प्रसग को लेकर कई-एक नाटक भी हिन्दी मे लिखे गये है। देवकीनन्दन त्रिपाठी, मथुरादास और अयोध्यासिंह उपाध्याय के रुकमणी-हरण नाटको का उल्लेख किया जा सकता है।

मराठी मे एकनाथ महाराज का **रुकमणी-स्वयंवर** वहुत प्रसिद्ध है। काव्य की दृष्टि से सामराज का **रुकमणी-हरण** वहुत उत्कृष्ट कोटि की रचना है।

गुजराती में महाकवि प्रेमानन्द तथा देवीदास के रुकमणी-हरण काव्य इस विपय की सुन्दर रचनाएं है।

(४) वेलि-साहित्य

वेलि शब्द संस्कृत के 'वल्ली' शब्द से बना हुआ है।

वेलि नाम से लिखी गयी बहुत-सी रचनाएँ प्रसिद्ध है। कबीर के बीजक में भी वेलि नाम की एक छोटी-सी रचना है जिसमे प्रत्येक पंक्ति के अन्त में 'हो रमैया राम' शब्द आते है। परन्तु बीजक की प्रमाणिकता संदिग्ध है।

उपलब्ध वेलि-संज्ञक रचनाओं मे 'राउल वेल' सबसे प्राचीन है। इसकी भाषा पिछली अपभ्रंश है जिसे प्राचीन राजस्थानी भी कहा जा सकता है। यह अेक शिला पर खुदी हुई है जो बबई के प्रिंस आव् वेल्स म्यूजियम मे रखी हुई है। यह शिला धार (मालवा) से प्राप्त हुई थी। लेखन-काल शिला पर दिया हुआ नही है।

वेलि-साहित्य को तीन बड़े विभागों मे बाँटा जा सकता है—(१) जैन कवियो द्वारा लिखित वेलियाँ। (२) लौकिक शैली में लिखित वेलियां, और (३) चारणी शैली मे लिखित वेलियाँ।

जैन कवियो द्वारा लिखित वेलियाँ बहुत बडी संख्या मे मिलती है। श्री अगरचद नाहटा और श्री नरेन्द्रकुमार भाणावत ने साठ से ऊपर ऐसी रचनाओं का उल्लेख किया है। उनमे स० १५२० के लगभग लिखित चिहुंगति वेलि सबसे प्राचीन है। इसमे १३५ पद्य है। सं १६४४ मे लिखित जयवंतसूरि की **स्थूलिभद्रमोहन वेलि** उपलब्ध जैन वेलियो मे सबसे बडी है। उसमें ३१५ गाथाएँ हैं। अधिकाश जैन वेलियाँ बहुत छोटी-छोटी है।

लौकिक शैली मे लिखित वेलियो का विषय धार्मिक है। इनमें रामदेवजी-री वेल, रूपादे-री वेल, तोळादे-री वेल, रतनादे-री वेल, पीर गुमानसिंघजी-री वेल, आई माता-री वेल अकल वेल, और बाबा गुमानभारती-री वेल अभी तक प्राप्त हो चुकी है।

चारणी शैली मे लिखित वेलियाँ दो प्रकार की है—(१) धार्मिक और (२) ऐतिहासिक। इनमे से कुछ के नाम आगे दिये जाते है—

(क) धार्मिक वेलियाँ

१. गुण चाणिक वेलि—दधवाड़िया चारण चूंडा।
२. किसनजी-री वेलि—साखला करमसी रूणेचा।
३. क्रिसन-रुकमणी-री वेलि—राठौड पृथ्वीराज।
४. त्रिपुरसुन्दरी-री वेलि (१६४३)—जसवंत।[1]
५. हर-पारवती-री वेलि—किसनो।[2]

[1] यह केवल १२ पद्यों की छोटी-सी रचना है।

[2] चारणी शैली की उपलब्ध वेलियो में यह सबसे बडी है। इसमें ३८२ पद्य हैं।

६. सोझाजी-री वेलि—सोझा।
७. रघुनाथ चरित नवरस वेलि—महेसदास।

(ख) ऐतिहासिक वेलियाँ

१. राजा रामसिंघ-री वेल—सांदू माला।
२. राजा सूरसिंघ-री वेल—गाडण चोळा।
३. राजकुमार अनूपसिंघ-री वेल—गाडण वीरभाण।
४. राठौड़ रतनसी खीवावत-री वेल—विसराळ दूदो।
५. राठौड़ देईदास जैतावत-री वेल—बारठ अखा।
६. चाँदेजी-री वेलि—वीठ मेहो दूसलाणी।
७. राव रतन-री वेलि—महडू कल्याणदास।
८. राणै उदैसिंघ-री वेल—सांदू रामा।
९. डूंगरसिंघ-री वेल—समधर।
१०. राव मालदेव-री वेल।
११. गुण वेल—वीठू मेहो।
१२. पाबूजी-री वेल—भाटी मुकनसिंह।

चारणी वेलियाँ **छोटा साणोर** गीत के आधार पर बने छंद मे लिखी गयी है। इस छंद को आगे चलकर वेलियो छंद कहने लगे। इस छंद में मात्राओं की संख्या इस प्रकार होती है—

प्रथम चरण मे — (२+१६)=१८ मात्रा।
तृतीय चरण में — १६ मात्रा।
द्वितीय और चतुर्थ चरणो में — १३ (अंत में तीन लघु या लघु-गुरु), या १४ (अंत में लघु-गुरु), या १५ (अंत मे गुरु-लघु) मात्रा।

खण्ड २ : कवि और उसकी कृतियाँ

(५) राठौड़ पृथ्वीराज

पृथ्वीराज का जन्म वीकानेर के राठौड राजवंश में संवत् १६०६ (सन् १५४९) की मँगसिर वदि १ को हुआ। उनके पिता राव कल्याणमल थे और वडे भाई महाराजा रायसिह, जो अकवर के एक प्रमुख सेनापति थे और जो अपनी दानवीरता के लिए वहुत प्रसिद्ध हुए। पृथ्वीराज ने भी साम्राज्य के अनेक युद्धो मे भाग लिया था। स १६३८ की कावुल की लडाई और सं. १६५३ की अहमदनगर की लडाई मे वे शाही सेना के साथ थे। उनकी वीरता के पुरस्कार में सम्राट ने उन्हे गागरोनगढ का दुर्ग जागीर मे दिया था।

पृथ्वीराज के तीन विवाहो के उल्लेख मिलते है। प्रथम विवाह उदयपुर के महाराणा उदयसिह की पुत्री और महाराणा प्रताप की वहन के साथ हुआ था (कोई महाराणा उदयसिह की पौत्री और शक्तसिह की पुत्री वताते हैं)। इस रानी का नाम किरणमयी वताया जाता है। दूसरा विवाह जेसलमेर के महारावल हरराज की कन्या लालादे से हुआ। तीसरा विवाह लालादे की मृत्यु के पश्चात् उसकी छोटी वहन चापादे के साथ हुआ। चांपादे स्वयं अच्छी कवि थी और उसके और पृथ्वीराज के सम्वन्ध की अनेक आख्यायिकाएं प्रसिद्ध हैं।

पृथ्वीराज की प्रतिभा से सम्राट अकवर उनकी ओर आकर्पित हुआ और वह उनको अपने पास रखने लगा। सम्राट के दरवारियो मे पृथ्वीराज का वडा सम्मान था। अकवरी दरवार के नौ रत्नो मे से एक पृथ्वीराज भी थे। सम्राट उन्हे वहुत चाहता था। उसका कहा हुआ निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है—

पीथल सो मजलिस गयी, तानसेन सों राग।
रीझ बोल हँस खेलवो गयो वीरबर साथ॥

पृथ्वीराज का देहान्त सं. १६५७ (सन् १६००) में मथुरा के विश्राम-घाट पर हुआ। उनके वशज अभी तक विद्यमान है और पृथीराजोत वीका कहलाते है। वीकानेर राज्य मे ददरेवा उनका प्रमुख ठिकाना रहा है।

पृथ्वीराज वहुमुखी प्रतिभा वाले महापुरुप थे। वीर होने के साथ-साथ वे उच्चकोटि के भक्त और प्रथम श्रेणी के कवि थे। अपने जीवनकाल मे ही वे इन दोनो रूपो मे प्रसिद्ध हो चुके थे। उनके समकालीन कविवर नाभाजी ने

अपनी 'भक्तमाल' मे उनका सम्मानपूर्ण उल्लेख किया है।[1] गोस्वामी तुलसीदास और सूरदास आदि महात्माओ की भाति अनेक अलौकिक घटनाएं और चमत्कार उनके नाम के साथ संवद्ध हो गये है।

राजस्थान का बहुमत पृथ्वीराज को डिंगल का सर्वश्रेष्ठ कवि मानता आया है। राजस्थान के चारणो की बराबर यह धारणा रही है कि उनसे बढ़कर कवि कोई हो ही नही सकता, कविता चारण-जाति की बपौती है और उस पर उनका ही पूर्ण अधिकार हो सकता है। पृथ्वीराज की कविता को देखकर उन्हे अपनी यह धारणा छोडनी पडी। यद्यपि दो-एक चारण कवि अपनी धारणा को हठ-पूर्वक पकडे रहे, फिर भी अधिकाश ने पृथ्वीराज की कवि-प्रतिभा को और उनके काव्य की श्रेष्ठता को मुक्तकठ से स्वीकार किया। इनमे आढा दुरसा जैसे अपने समय के सर्वमान्य और ख्यातनामा सुकवि-जन भी थे।[2] राजस्थान के इतिहास के सुप्रसिद्ध लेखक कर्नल टाड[3] और राजस्थानी भाषा और साहित्य के महापंडित डाक्टर तैसीतोरी (Tesstori) जैसे विद्वानो ने भी उनकी जी खोल कर प्रशंसा की है।[4]

१ सवया गीत सलोक वेलि दोहा गुण नव रस।
पिंगल काव्य प्रमाण विविध विधि गायो हरिजस॥
परिदुख विदुख सलाध्य वचन-रचना जु उचारे।
अर्थ विचित्र निमोल सवै सागर उद्धारे॥
रुकमिणी-लता वरणन अनुप वागीस-वदन कल्याण-सुव।
नर-देव उभै-भाखा-निपुण पृथीराज कवि-राज हुव॥

२ रुकमणि गुण लखण रूप गुण रचवण
वेलि तास कुण करइ वखाण?
पॉचमउ वेद भाखियउ पीथल,
पुणियउ उगणीसमउ पुराण॥
यह पद्य आढा दुरसा के नाम से प्रसिद्ध है और हस्तलिखित प्रतियों में भी आढा दुरसा का वताया गया है पर एक हस्तलिखित प्रति में इसे गाडण रामसिह का कहा गया है।

३ Prithiraj was one of the most gallant chieftains of the age, and like the Troubadour princes of the West, could grace a cause with the soul-inspiring effusions of the muse, as well as aid it with his sword, nay in an assembly of the bards of Rajasthan the palm of merit was unanimously awarded to the Rahtore cavalier. *(Col. Todd)*

४ The Veli of Krsna and Rukmini by Rathora Prithi Raja of

यद्यपि परिस्थिति-वश पृथ्वीराज को अकवर की सेवा स्वीकार करने के लिए विवश होना पडा पर अपनी पराधीनता उन्हे वरावर अखरा करती थी। पराधीन होने पर भी उनका अन्तर पराधीन नही हुआ था, परतंत्र होकर भी यह कवि-हृदय स्वतन्त्रता का उपासक था। स्वतन्त्रता के लिए आत्मोत्सर्ग करने वाले वीरो के लिए उसके हृदय मे अपार आदर का भाव था। इसी कारण वे महाराणा प्रताप के प्रति वड़ी श्रद्धा रखते थे। जव परिस्थितियो ने महाराणा को भी अकवर से संधि-याचना करने के लिए विवश किया तो पृथ्वीराज का हृदय क्षोभ से भर गया। राजस्थान की स्वतत्रता के अन्तिम आशा-तन्तु को टूटने से वचाने के लिए उनने एक अन्तिम प्रयत्न किया और उसे वचाने मे सफल हुए। इतिहास का प्रत्येक पाठक इसको जानता है। उनके ओजस्वी वाणी मे लिखित पत्र को पाकर महाराणा ने संधि का विचार त्याग दिया और स्वातन्त्र्य-युद्ध को उसी प्रकार चालू रखा।[1]

> Bikaner is one of the most fulgent gems of the Rajasthani literature··· ···· · ···This little poem of Prithi Raja is one of the most perfect productions of the Dingala literature, a marvel of poetical ingenuity, in which, like in the Taj of Agra, elaborateness of detail is combined with simplicity of conception, and exquisiteness of feeling is glorified in immaculateness of form. *(Dr. Tessitori)*

[1] पृथ्वीराज ने महाराणा को जो पत्र लिखा था उसमे ये दूहे लिखे वताये जाते है—

पातल जो 'पतसाह' वोलै मुख-हूँतां वयण।
मिहर पछम दिस माँह ऊगै कासप-राव-उत॥
पटकूँ मूँछा पाण, कै पटकूँ निज तन करद?
दोजै लिख दीवाण! इण दो महँली वात इक॥

यदि प्रताप मुख से अकवर को 'वादशाह' कर पुकारे तो राजा कश्यप का पुत्र सूर्य पश्चिम दिशा मे उदय हो। मोछो पर ताव दू या अपने शरीर पर तलवार चला लू? हे एकलिग के दीवान (हे महाराणा)! इन दो मे से एक वात लिख दो।

महाराणा प्रताप ने उत्तर मे निम्नलिखित दूहे भेजे थे—

'तुरक' कहासी मुख पतै इण तन-सूँ इकलंग।
ऊगै ज्याँही ऊगसी प्राची वीच पतंग॥
कुसी हूँत पीथल कमध! पटको मूँछाँ पाण।
पछटण है जेतै पतो कलमाँ सिर केवाण॥
साँग मूंड सहसी स-को सम-जस जहर-सवाद।
मड़ पीथल! जीतो भलाँ वयण तुरक-सूँ वाद॥

भगवान एकलिंग इस शरीर मे प्रताप के मुख से अकवर के लिए 'तुर्क' शव्द ही कहलवायेगे। सूर्य जहां उदय होता है, वही, पूर्व दिशा मे

दरवारी होते हुए भी वे निर्भीक और स्पष्टवक्ता थे। अकबर के दरबार में रहकर उसी के परम शत्रु महाराणा प्रताप की प्रशसा मे वे काव्य-रचना करते रहे। अकवर की अधीनता स्वीकार करने वाले राजस्थानी राजाओ को उन्होंने खूब ही फटकारा और अपने बडे भाई वीकानेर-नरेश महाराजा रायसिंह को भी नही वख्शा।[1]

(६) पृथ्वीराज की कृतियाँ

पृथ्वीराज की सर्वप्रमुख कृति 'क्रिसन-रुकमणी-री वेलि' है। वेलि के अतिरिक्त उनकी और भी बहुत-सी रचनाएँ मिलती है जो फुटकर गीतों और पद्यो के रूप मे है। राजस्थानी रचनाएं प्रधानतया दूहा छद और (चारणी) गीतों में है पर व्रज-भाषा की रचनाएं घनाक्षरी और छप्पय छंदों में है। इन रचनाओं का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है—

(१) **ठाकुरजी-रा दूहा**—इनकी संख्या २४० के लगभग है। इनमें कोई ५४ भगवान राम से ओर १८५ भगवान कृष्ण से संवंध रखते है। राम वाले दूहों के अन्त मे **दसरथ-राव-उत** और कृष्ण वाले दूहो के अन्त में **वसदे-राव-उत** शब्द आता है-। दूहे विनय-प्रधान है। कृष्ण से संबधित दूहे 'दसम-रा दूहा' नाम से भी प्रसिद्ध है।

(२) **गंगाजी-रा दूहा**—इनकी सख्या ८९ के लगभग है। ये तीन प्रकार के हैं। कुछ के अन्त मे **भागीरथी**, कुछ के अन्त मे **जान्हवी** और कुछ के अन्त में **मंदाकिनी** शब्द आता है। इनमे गंगा की महिमा का वर्णन है।

ठाकुरजी तथा गंगाजी के दूहे, वेलि की भांति ही, स्तोत्रों के रूप मे पाठ किये जाते रहे है।

ही, उदय होगा। हे राठौड पृथ्वीराज ! प्रसन्न होते हुए मूछों पर ताव दो, जब तक यवनों के सिर पर तलवार चलाने के लिए प्रताप जीवित है। वरावरी वाले (शत्रु) का यश स्वाद में जहर-तुल्य है इसलिए प्रताप सिर पर साग आदि सब कुछ सहेगा। हे वीर पृथ्वीराज ! 'तुर्क' के साथ वचनों के विवाद मे भली-भाँति विजय प्राप्त करो।

[1] He was an admirer of courage and unbending dignity and a sworn enemy of degradation and cringing servility. With the same freshness with which he would compose a song in praise of an act of gallantry or of determination performed by a friend or by a foe, he would condemn in verses his own brother, the Raja of Bikaner, or even the all-powerful Akbar for any act of injustice committed by them. *(Dr. Tessitori)*

(४) **महाराणा प्रताप-रा दूहा**—ये महाराणा प्रताप की प्रशसा मे लिखे गये है। उनमे प्रताप की वीरता और उनके वीर-कार्यो का वर्णन है।

(३) **विट्ठळ-रा दूहा**—ये विठ्ठलनाथजी-संबंधी गुरु-प्रार्थना के दूहे है जिनकी संख्या १२ है।

(५) **प्रकीर्णक दूहे**—ये विविध विपयों पर लिखे गये है पर प्रधानतया भक्ति, वैराग्य और नीति संबंधी है।

(६) **प्रकीर्णक डिंगल गीत**—ये भी विविध विषयों से सवध रखते है। कुछ भक्ति और वैराग्य-परक है, कुछ शृंगार-रसात्मक, पर अधिकांश ऐतिहासिक है। ऐतिहासिक गीत सम-सामयिक वीरो और अन्यान्य महापुरुपो की स्मृति मे लिखे गये है। कई-एक गीत महाराणा प्रताप पर भी है।

(७) **प्रकीर्णक पद**—ये प्रधानतया भक्ति-परक है।

(८) **नख-सिख**—यह रचना व्रज-भापा की है। इसमे छप्पय छद मे (जिसे राजस्थानी मे कवित्त कहते है) राधा-कृष्ण का नख-शिख शृंगार वर्णित है। प्रत्येक छप्पय की अन्तिम पक्ति इस प्रकार है—

इह सरूप, पृथिराज कह, मिलौ कृस्न राधा-रमन।

इनके अतिरिक्त कुछ और भी डिंगल और पिंगल के फुटकर पद्य पृथ्वीराज के नाम से पाये जाते है।

इन रचनाओ के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते है—

(१) **ठाकुरजी-रा दूहा**—

सिल ऊधरती सारि नाठौ भीवर नाव ले
महमा चलण मुरारि देखे दशरथ-राव-उत ॥१॥
आयो महमा आण त्हारी रघुकुळ-का तिलक
पोत भयो पाखाण दीसै दसरथ-राव-उत ॥२॥

१ हे राजा दशरथ के पुत्र ! तुम्हारे चरणो की महिमा देखकर और शिला के उद्धार की वात को याद कर केवट नाव को लेकर भाग खडा हुआ (यह सोचकर कि जब शिला स्त्री बन गयी तो काठ की नाव के लिए ऐसा होना क्या असम्भव है और यदि नाव स्त्री वन गयी तो मै गरीव अपना और अपने परिवार का पेट कैसे पालूगा)।

२ हे रघुकुल के तिलक ! हे राजा दशरथ के पुत्र ! तुम्हारी इस महिमा की याद करके तुम्हारी शरण मे आया था कि तुम्हारी कृपा से पत्थर भी जल मे तैर जाते है और नाव का काम देते है, पर मुझे तो जान पडता है कि पत्थर का नाव वनना तो दूर रहा, मेरी नाव ही तुम्हारे पास आकर पत्थर वन गयी है (तुम मेरा उद्धार नही कर रहे हो और मेरी नैया डूब रही है)।

दीनानाथ दयाल तूं जोइ आधख आप-रो
कॉइ अम्ह समौ क्रिपाल देखै दसरथ-राव-उत ? ॥३॥
धायौ धावंतांह गरुड़ै ही माठौ गिणे
ग्रह उग्राहण ग्राह वारण वसदे-राव-उत ॥४॥

(२) गंगाजी-रा दूहा

काया लाग्यौ काट सिकलीगर सुधरै नहीं
निरमळ होय निराट तो भेट्यां भागीरथी ! ॥५॥
त्हारउ अदभुत ताप मात ! सँसारे मानियउ
पाणी-मुंहड़इ पाप जो तूं जाळइ जान्हवी ! ॥६॥
पुळियइ मग पुळिया दरस हुवॉ अदरस हुवा
जळ पइठां जळिया मंदा क्रम मंदाकिनी ! ॥७॥

(३) प्रताप-रा दूहा

माई ! अेहा पूत जण जेहा राण प्रताप
अकबर सूतउ अउभकइ जाणि सिराणइ सांप ॥८॥
अइ हो अकबरिया ! तेज तुहाळउ तुरकड़ा !
नम-नम नीसरिया राण विना सह राजवी ॥९॥

३ हे दीनों के नाथ ! हे दयालु ! तुम अपने मालिकपन को देखो। हे राजा दशरथ के पुत्र ! हे कृपालु ! हमारी ओर क्या देखते हो ? (अपनी महानता का ध्यान करके हमारा उद्धार कर दो, हमारे दोषों की ओर मत देखो, नही तो हमारा उद्धार असम्भव हो जायगा)।

४ हे राजा वसुदेव के पुत्र ! हाथी को ग्राह की पकड से छुड़ाने के लिए दौड़ते समय तुमने गरुड को भी मदगामी समझा और अपने पैरों से दौड़ पड़े।

५ हे भागीरथी ! शरीर मे जंग लग गया, वह सिकलीगर से साफ नही हो सकता, पर तुम्हारे भेटने से वह बिलकुल निर्मल हो जाता है।

६ हे माता ! हे जाह्नवी ! ससार ने तुम्हारे अद्भुत प्रताप को मान लिया क्योकि तुम पानी के द्वारा पापों को जलाती हो !

७ हे मंदाकिनी ! जब मैं तुम्हारी ओर चला तो मेरे पाप भी अपने रास्ते लगे, जब तुम्हारा दर्शन हुआ तो वे अदृश्य हो गये, और जब तुम्हारे जल मे प्रवेश किया तो वे जल गये।

८ हे माता ! ऐसे पुत्रों को जन्म दे जैसे राणा प्रताप है, जिनके भय के मारे अकबर सोता-सोता चौककर जागता है मानो सरहाने सांप आ गया हो।

९ हे अकबर ! हे तुर्क ! तुम्हारा तेज अद्भुत है ! जिसके कारण राणा को छोड़कर सब राजवंशी तुम्हारे सामने झुक-झुककर निकल गये।

(४) प्रकीर्णक दूहा—

तूंबी ही तारण समथ जळ ऊपर पाखाण
ताहि तारियइ जग-तरण ! तइ केहा वाखाण ? ॥१०॥
सज्जण वारूं कोड़धा या दुरजण-की भेंट
रजनी-का मेळा किया विह-के अच्छर मेट ॥११॥
पीयल, घोळा आविया वहुळी लागी खोडि
पूरइ जोवन पदमणी ऊभी मूंह मरोड़ि ॥१२॥
जात वळइ नह दीहड़ा जिम गिर निरझरणाह
उठ रे आतम ! धरम कर, सुतइ निंचितउ काह ? ।१३॥

(५) प्रकीर्णक गीत—

१. हरि ! जेम हलाड़ौ तिम हालीजै
 कांइ धणियां-सूं जोर क्रिपाल ?
मउळी दिवौ दिवौ छत्र माथै
 देवौ सो लेऊं स दयाल !

रीस करौ भांवै रलियावत
 गज भांवै खर चाढ गुलाम
माहरै सदा ताहरी माहव !
 रजा-सजा सिर ऊपरि राम !

१० हे जगत् को तारने वाले ! जल के ऊपर पत्थरो को तैरा देने मे तो तूंबी भी समर्थ है। तुमने जल पर पत्थर तैरा दिये तो क्या वडा काम किया ? (वडा काम तव समझूं जव मुझे तार दो)।

११ इस शत्रु के ऊपर करोडो मित्रो को न्योछावर कर दू जिसने विधाता के लेख मिटाकर (चकवे-चकवी का) रात मे मिलन करा दिया (वहेलिये ने चकवे-चकवी के एक जोड़े को पकड लिया और रातभर उसे पिजडे मे वन्द रखा; पूर्वार्ध रहीम का और उत्तरार्ध पृथ्वीराज का कहा जाता है)।

१२ पृथ्वीराज अपने से कहते हे—हे पृथ्वीराज ! सफेद वाल आ गये, वहुत वडा दोप लग गया। पूर्ण यौवन मे वर्तमान पद्मिनी मुँह मरोड़ कर खडी है।

१३ जाते हुए दिन नही लौटते जैसे पहाड के झरनो का जल। हे जीव ! उठ और धर्म कर। निश्चित क्या सोया है ?

१ हे हरि ! जैसे चलाते हो वैसे चलना पडना है। हे कृपालु ! मालिक से क्या जोर है ? हे दयालु ! माथे पर चाहे सूत का डोरा दो, चाहे राजछत्र दो, जो दोगे सो लूगा।

रोष करो चाहे अनुग्रह करो, दास को हाथी पर चढाओ चाहे गधे पर। हे माधव ! मेरे तो सदा, तुम्हारी प्रसन्नता हो या सजा, दोनो सिर पर है।

मूझ उमेद वडी महमैहण
सिंधुर पाखै केम सरै ?
चीतारौ खर-सीस चित्र दै
किसूं पुतळियां पाण करै ?

तू स्वामी, प्रिथिराज ताहरौ
बळि, बीजा को करै विलाग ?
रूड़ौ जिकौ प्रताप रावळौ
भूंडौ जिकौ अम्हीणौ भाग

२. नर तेथ निमाणा, निळजी नारी,
अकबर गाहक, वट अवट
चौहटै तिण जाय'र चीतौड़ौ
वेचै किम रजपूत-वट ?

रोजायतां तणै नव-रोजै,
जेथ मुसाणा जणो-जण
हिंदू-नाथ दिली-चै हाटै
पतौ न खरचै खत्रीपण

परपंच लाज दीठौ नह का-पति
खोटौ लाभ कुलाभ खरौ
रज वेचवा न आवै राणौ
हाटे मीर हमीर-हरौ

हे समुद्र को मथने वाले ! मै वड़ी आशा करता हूँ कि हाथी के बिना कैसे काम चल सकता है। पर यदि चित्रकार पुतली को गधे पर चित्रित कर दे तो वेचारी क्या जोर करे ? (हाथी चाहता हूँ, पर तुम, जो मेरे बनाने वाले हो, यदि गधे पर ही बिठाओ तो मेरा क्या जोर ?)।

तुम स्वामी हो, पृथ्वीराज तुम्हारा है; वलिहारी जाऊँ, दूसरे कौन हमे अलग कर सकते है ? जो कुछ भला है वह तुम्हारा प्रताप है; और जो कुछ बुरा है वह मेरे भाग्य की वात है।

२ जहाँ पुरुष गौरव-हीन है, नारियां निर्लज्ज है, और अकवर ग्राहक है, उस वाजार मे जाकर चित्तौड वाला (प्रताप) क्षत्रिय-धर्म को कैसे बेचे ?

यवनो के नौरोज के मेले मे, जहाँ एक-एक जन लूट लिया गया, वहाँ दिल्ली के उस वाजार मे हिन्दुओं का स्वामी प्रताप क्षत्रियत्व को नही व्यय करता।

कापुरुष राजाओ ने अकवर के प्रपच और अपनी लज्जा को नहीं देखा। उन्होने यह भी नही देखा कि यह दिखाऊ लाभ झूठा है, वह वास्तव मे

पिँड आप-रैं दाखि पुरसातण
रोहणियाळ तणै बळ राण
खत्र वेचियौ अनेक खत्रियाँ
खत्र-वट थिर राखी खूमाण

जासी हाट, बात रहिसी जग
अकवर ठग जासी अेकार
रहि राखियौ खत्री-ध्रम राणै
सगळा ले वरतौ संसार

हानि है। हम्मीर का वशज राणा राजपूती को बेचने के लिए बादशाह की हाट मे नहीं आता।

अनेको क्षत्रियो ने क्षत्रिय-धर्म को बेच दिया पर खुम्माण के वशज ने अपने शरीर मे पुरुषार्थ का परिचय देकर अपने भाले के बल से क्षत्रिय-धर्म की रक्षा की।

यह बाजार चला जायगा, ठग अकबर भी एक दिन चला जायगा, पर जगत् मे बात रह जायगी। राणा ने क्षत्रिय-धर्म का मार्ग बचा लिया। अब ससार मे सब लोग उसे लेकर उसका व्यवहार कर सकते है (उस पर चल सकते है)।

खंड ३ : वेलि और उसकी समीक्षा

(७) वेलि

क्रिसन-रुकमणी-री वेलि राजस्थानी भाषा की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना है। विद्वानो ने उसे डिंगल-काव्य की सर्वश्रेष्ठ रचना वताया है। प्राचीन और नवीन, देशी और विदेशी, सभी आलोचको ने उसकी जी खोलकर प्रशंसा की है; तैसीतोरी ने उसे डिंगल के समृद्ध साहित्य-भंडार का सबसे जगमगाता रत्न कहा है।[१] भक्त लोग गीता और सहस्रनाम की भांति उसका नित्य-पाठ करते आये है।

[१] (क) This *Veli* of Krsna and Rukmini by Rathora Prithiraja of Bikaner, is one of the most fulgent gems in the rich mine of the Rajasthani literature. Composed in the luminous days of Akbar, this masterpiece of the Rajput muse has been awarded the palm by the consensus of all the bards who have sat in the tribunal of critic from those times to this day. The contemporary bard who held the apparition of the new star in the Parnassion sky as 'a fifth Veda or a nineteenth Purana' was, in a grossly inappropriate but very expressive language, only giving vent to his unbounded admiration; while the other bard, who pictured the *Veli* as 'a veritable' creeper of ambrosia spreading in luxuriant growth all over the earth' was at the same time proclaiming the immortality of the poem and foretelling the immense diffusion which it was destined to obtain in the land of Dingala. In a less picturesque, but more accurate language, one would say today that this little poem by Prithiraja is one of the most perfect productions of the Dingala literature, a marvel of poetical ingenuity in which, like in the Taj of Agra, elaborateness of detail is combined with simplicity of conception, and exquisiteness of feeling is glorified in immaculateness of form. (Tessitori)

(ख)····काव्य-सौष्ठव, अलंकार-चातुर्य, भाव-गांभीर्य, भाषा-लालित्य, अर्थ-गौरव आदि सभी दृष्टियों से अपने रंग-ढंग का अनूठा है, अनुपम है।········ वेलि के कथानक में सरसता, उनकी कविता मे कोमलता, उसके प्राकृतिक वर्णन में कल्पना की कमनीयता, उसकी भाषा में प्रांजलता एवं भावों मे मौलिकता है। (मोतीलाल मेनारिया)

टीकाकार डिंगल-रचनाओ मे सबसे अधिक वेलि की ओर ही आकर्पित हुए और उस पर दर्जनो टीकाए लिखी गयी। सस्कृत मे भी उसकी टीकाएँ और भाष्य बने। व्रजभापा मे उसके पद्यानुवाद हुए। उसकी अधिकाश टीकाए जैन साधुओ द्वारा लिखी गयी। इससे उसकी व्यापक लोकप्रियता सिद्ध होती है।

वेलि कोई ३०० पद्यो का वर्णन-प्रधान शृंगार-रसात्मक काव्य है। उसमे कृष्ण के रुक्मिणी का हरण करने, दोनो का विवाह होने और दोनो के विहार की कथा है। प्रसगवश सौदर्य-वर्णन, शृगार-वर्णन, युद्ध-वर्णन, प्रभात-वर्णन तथा ऋतु-वर्णन आदि अनेक वर्णन आये है। अलकारो का, शब्दालंकार और अर्थालकार दोनो का, प्रचुर प्रयोग हुआ है।

वेलि का रचना-काल

वेलि की प्राचीन (सत्रहवी शताब्दी की) प्रतियों मे रचना-सवत् का सूचक कोई पद्य नही पाया जाता। वेलि की उपलब्ध प्रतियों मे सं. १६६४ की प्रति सबसे प्राचीन है। उसके पश्चात् स १६६७, १६६६, १६६६, १६७३ और सं. १६६२ की प्रतिया आती है। इनमे से किसी मे रचना-सवत् का सूचक पद्य नही है। ढूढाडी टीका की प्रतियो मे भी संवत्-सूचक पद्य या उसका अर्थ नही मिलता।

सवत्-सूचक पद्य का उल्लेख सर्वप्रथम सारंग की सुबोधमंजरी नामक सस्कृत टीका मे मिलता है। यह टीका १६७८ मे रची गयी थी और इसकी प्रति १६८३ की लिखी प्राप्त हुई है। इस प्रति मे सवत्-सूचक पद्य की टीका तो नही दी गयी है पर उसका प्रतीक उद्धृत हुआ है—

तत्र कदायं ग्रंथस् संजातस् तत् कथयति। द्वालकः। वरसीति। इति सुगमम्।

अठारहवी शताब्दी की प्रतियो मे रचना-सवत्-सूचक निम्नलिखित पद्य मिलते है—

(१) **वरसि अचळ गुण अँग ससि संवति (१६३७ या १६३८)**[1]
तव्रियउ जस करि स्री-भरतार
करि स्रव्रणे दिन-राति कंठि करि
प्रामै स्रीफळ भगति अपार[2]

(ग) जहाँ तक काव्य-सौन्दर्य का प्रश्न है, पृथ्वीराज का वेलि ग्रंथ अप्रतिम है। (विपिनविहारी त्रिवेदी)

[1] अचल का अर्थ सात भी होता है और आठ भी। टीकाकारों ने दोनों ही अर्थ किये है। जयकीर्ति और कुशलधीर तथा अगरचन्द नाहटा ने आठ तथा दानचंद्र, तैसीतोरी, जगमालसिह आदि ने सात किया है।

[2] यह पद्य जयकीर्ति और कुशलधीर की टीकाओ वाली प्रतियों मे मिलता

(२) वसु सिव नयन रस ससि वच्छरि (१६३८)
विजय-दसमि रवि रिख वरणउत
क्रिसन-रुकमणी वेलि कलप-तरु
की कमधज कलियाण-उत[1]

(३) सोळै सै सँवत छत्रीसा वरखे (१६३६)
सोम त्रीज वैसाख समंधि
रुकमणि क्रसन रहस रँग रमतॉ
कही वेलि पृथिराज कमंधि[2]

(४) सोळह सै समत चमाळै वरसे (१६४४)
सोम तीज वैसाख सुदि
रुक्मिणी कृष्ण रहस्य रमण रस
कथी वेलि पृथिराज कमँधि[3]

(५) संवत सोळ त्रियाळ वरखह (१६४३)
सोम त्रीज वैशाख समंधि
रुखमणि क्रसन रंग रसि रमणं
कथी वेलि पृथुदास कमंधि[4]

श्री मोतीलाल मेनारिया उदयपुर वाली प्रतियो मे प्राप्त पद्य को प्रामाणिक मानकर वेलि का रचना-काल स. १६४४ वताते है। १६३७ को वे वेलि के प्रारभ करने का संवत् मानने की सलाह देते है। उनका यह मत ठीक नही जान पड़ता। प्रथम तो गणना करने पर तिथि और वार मेल नही खाते जैसा कि मेनारियाजी स्वयं लिखते है। दूसरे, 'वरसि अचळ गुण अँग ससि

है। वाचक सारग कृत संस्कृत टीका भी इसी की ओर सकेत करती है, क्योकि उसमे इसका प्रतीक वरसि उद्धृत है।

१ इस पद्य को लक्ष्मीवल्लभ ने अपनी टीका मे दिया है और शिवनिधान, जयकीर्ति और कुशलधीर ने पाठान्तर के रूप मे उद्धृत किया है।

२ यह पद्य सवत् १७२१ मे लिखित प्रति के अत मे मिलता है। इस प्रति मे ग्रंथ की समाप्ति 'रूप लखण गुण तणा रुकमणी' वाले, पद्य के साथ हो जाती है। फिर 'वेद वीज जल वयण सुकवि जड़ मंडी सधर' यह प्रशसात्मक छप्पय तथा 'इति श्रीकृष्ण-रुकमणीजी-री वेलि सपूर्णम्' ये शब्द देकर उक्त सवत्-सूचक पद्य दिया गया है।

३ यह पद्य उदयपुर की तीन प्रतियो के अत मे मिलता है। गोपाल लाहोरी के व्रजभाषा अनुवाद के साथ भी इसी भाव का पद्य दिया गया है।

४ यह पद्य १६६७ की प्रति के हाशिये में मिलता है, और किसी के द्वारा पीछे से जोड़ा गया है।

सवति' वाला पद्य अपेक्षाकृत प्राचीन जान पडता है, क्योकि सं. १६७८ में रचित सुबोधमंजरी टीका में उसका प्रतीक उद्धृत है, जबकि स. १६५४ वाला पद्य अठारहवीं शताब्दी के पूर्व किसी प्रति मे नही मिलता। वस्तुतः रचना-सवत्-सूचक इन पद्यो मे से कोई भी पृथ्वीराज की रचना नही है। वेलि से संबंधित अन्यान्य कई-एक प्रशंसात्मक पद्यो की भाति, जो वेलि की रचना के बाद बन गये थे और जिनको टीकाकारो अथवा लिपिकारो ने पीछे से वेलि की प्रतियो में मूल-पाठ के अत मे जोड़ दिया, ये पद्य भी पीछे की रचना है।[1]

पृथ्वीराज का देहात स १६५७ मे हुआ। इसके पूर्व ही वे 'वेलि' के रचयिता के रूप मे प्रसिद्ध हो चुके थे। अतः वेलि की रचना सं. १६५० के पूर्व ही होनी चाहिए। सं. १६३७ मे उनकी अवस्था ३१ वर्ष की थी।

वेलि के पद्यो की संख्या

तैसीतोरी के वेलि के संस्करण में पद्यो की संख्या ३०५ है। रामसिंह और सूर्यकरण पारीक द्वारा संपादित संस्करण में तैसीतोरी का अनुसरण किया गया है। बाद मे जो प्रतिया प्राप्त हुईं (और ये प्रतियां वेलि की प्राचीनतम उपलब्ध प्रतिया है) उनमे पद्य-संख्या ३०१ या इससे भी कम मिलती है। उक्त संस्करणो का पद्य सं. ३०५, जिसमे रचना-सवत् दिया गया है, निश्चित रूप से प्रक्षिप्त है, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है। पद्य सं. ३०४ सांखला करमसी की 'क्रिसनजी-री वेलि' में भी मिलता है। करमसी पृथ्वीराज से पहले हुआ है, और 'क्रिसनजी-री वेलि' की हस्तप्रति सं. १६३४ की लिखी मिली है। अतः यह पद्य भी पृथ्वीराज की रचना नही जान पडता। सं. १६६९ की प्रति मे भी, जो पृथ्वीराज के भतीजे भाणजी के लिए लिखी गयी थी, यह पद्य नही मिलता। पद्य स. १२६, १२७ और १७६ भी प्राचीन प्रतियों मे नही मिलते। स. १६७३ की सटीक प्रति मे इनकी टीका भी नही मिलती। सं. १६६७ की प्रति मे ये पद्य हाशिये मे लिखे हुए है। ये पद्य भी वेलि के मूल अश नही। इस प्रकार वेलि के पद्यों की संख्या ३०० रह जाती है।

[1] नागरीप्रचारिणी पत्रिका के भाग ६९ के अंक १–२ मे श्री मदनराज दौलतराम मेहता लिखते है कि सं. १६३८ में राजराजेन्द्र ने वेलि पर टबा टीका लिखी थी जिससे वेलि का रचनाकाल १६३७ ही होना चाहिए। उनका यह कथन ठीक नही। इस टबा टीका का कर्ता राजराजेन्द्र नही किन्तु शिवनिधान है, जैसा दिये गये उद्धरण से भी सिद्ध होता है। टीका मे दिया गया स. १६३८ वाला पद्य और उसकी टीका टीका के रचनाकाल के नही किन्तु वेलि के रचनाकाल के सूचक है। यह पद्य वही है जो लक्ष्मीवल्लभ ने दिया है। शिवनिधान, जयकीर्ति और कुशलधीर ने रचनाकाल के सूचक दो-दो पद्य दिये है। श्री मेहता के उद्धरण मे भी ये ही दोनों पद्य आये है।

नीचे कतिपय महत्त्वपूर्ण प्रतियो मे प्राप्त पद्यों की संख्याएं दी जाती है—

प्रति संख्या	लिपि-काल	लिपि-स्थान	पद्य-संख्या	विशेष विवरण
१	सं. १६६४ पौषवदि ११ शनि	नागपुर (नागौर-राजस्थान)	३०१	मुद्रित संस्करणो के पद्य नं. १२६, १२७, १७६ और ३०५ नही है।
२	स. १६६७ भाद्र वदि ११ शनि	मौजाबाद	३०१[1]	,,
३	सं. १६६९ माघ सुदि ४	फूलखेड़ा	३०१	,'
४	सं. १६६९ फागुन सुदि १	—	२८५	मुद्रित संस्करणों के पद्य नं. १२६, १२७, २४५, २९०, ३०४ और ३०५ इसमें नही है। पद्य न. २७४-२८४ भी नही हैं।
५	सं. १६७३ मार्गशीर्ष सुदि १५ भौम	—	३०१	मुद्रित संस्करणों के पद्य नं. १२६, १२७, १७६ और ३०५ नही है।

वेलि की टीकाएं और भाषान्तर

वेलि आरम्भ से ही वहुत लोकप्रिय ग्रन्थ रहा। रामचरित-मानस और बिहारी-सतसई की भाति वेलि पर भी अनेक टीकाएं लिखी गयी। इन टीकाओं का प्रणयन संभवतः कवि के जीवन-काल में ही आरम्भ हो गया था। अधिकांश टीकाएं जैन विद्वानों द्वारा रचित है। जैन साधुओं ने केवल जैन साहित्य को ही सुरक्षित नही रखा, किन्तु अन्यान्य धर्मानुयायियो के साहित्य की भी प्रयत्न-पूर्वक रक्षा की और यथासंभव उसका परिवर्धन भी किया।

ये टीकाएं अधिकांश राजस्थानी में हैं, पर इनमे से दो संस्कृत में है। इन

[1] अंतिम पद्य की संख्या २९९ है पर वास्तविक संख्या ३०१ ही है। गलत संख्या देने से यह गड़वड़ी हुई है।

टीकाओ के अतिरिक्त व्रजभाषा मे दो पद्यानुवाद भी उपलब्ध हुए है। नीचे संक्षेप मे प्रमुख टीकाओ का परिचय दिया जाता है—

(१) **लाखा चारण कृत टीका**—यह टीका ढूंढाडी टीका नाम से प्रसिद्ध है। यह ढूढाडी अर्थात् पूर्वी राजस्थानी वोली मे है। इसकी सवसे प्राचीन प्रति वीकानेर के अनूप-सस्कृत-पुस्तकालय मे विद्यमान है। उसका लिपिकाल सं. १६७३ है। एक दूसरी प्रति जयपुर के लाल-भवन-स्थानक के सग्रह मे हैं जिसके प्रारंभिक संस्कृत-पद्यो में उसे लाखा चारण की रचना स्पष्ट रूप से वताया गया है—

वल्ल्याः प्रारभते जन-प्रिय-करी टीका लखाख्यः कविः ॥ —(पद्य १)
लखाख्येनापि सुधिया वेलि-टीका प्रतन्यते ॥ —(पद्य ४)

पीछे की अधिकाश टीकाए इसी के आधार पर वनी हैं। स. १६७८ मे इसके आधार पर सारंग ने सस्कृत-टीका लिखी, जिसके आधार पर जयकीर्ति और कुशलधीर की टीकाए लिखी गयी।[1]

(२) **सुवोध-मंजरी टीका**—यह टीका संस्कृत मे है। इसे पद्मसुन्दर के शिष्य वाचक सारंग ने स. १६७८ मे पालणपुर मे वनाया था। टीका के आरम्भ मे टीकाकार लिखता है—

लाक्षाभिधेन भाषायां चतुरेण विपश्चिता।
चाग(र)णेन कृतो वाला-ववोधोऽर्थ-सु-लब्धये ॥
परं न ताद्दगर्थोक्ति-पटुत्वं वितनोत्ययम्।
तेन संस्कृत-वाग्-युक्तां टीकाम्येनां करोम्यहम् ॥

(३) **शिवनिधान कृत टव्वा**—टव्वा शव्द टिप्पणी (टीप) से वना है। टव्वा उस टीका को कहते हैं, जो मूल पाठ के साथ ही मूल पंक्ति के ऊपर या हाशिये मे लिखी जाती है। इसमे साधारणतया शव्दार्थ ही दिया जाता है। यह टीका हमारे देखने मे नही आयी। इसकी रचना सत्रहवी शताव्दी के शेष भाग मे कभी हुई होगी। शिवनिधान खरतरगच्छीय जैन विद्वान् थे। वे राजस्थानी गद्य के विशिष्ट लेखक और टीकाकार थे, उनकी रचनाए सं. १६५२ से १६९२ तक की मिलती है।

(४) **वनमाली-वल्ली-वालाववोध**—इसकी रचना खरतरगच्छीय समय-सुन्दर के शिष्य हर्षनदन के शिष्य जयकीर्ति ने सं १६८६ मे की थी। जयकीर्ति ने वेलि के टीकाकारो का इस प्रकार उल्लेख किया है—

[1] इधर जयपुर के महावीर-भवन मे अठारहवी शताव्दी के प्रारभ मे लिपीकृत वेलि की एक सटीक प्रति मिली है। टीका 'टव्वा' शैली में है। उसकी पुष्पिका मे उसे 'लाखा-रउ टवार्थ' कहा गया है। पर यह टीका भवन के एक अधिकारी श्री कासलीवाल के अनुसार उक्त ढूंढाडी टीका से भिन्न है।

चाल्ह जगि भाखा चतुर चारण लाखउ चंग ।
कीधउ पहिली वारतिक, अरथि न उपजइ रंग ।।
ग्वाळेरी भाषा गुपिल मंद अरथ मित भाव ।
वात-बंध किय भाख वितु समझण तिण सम भाव ।।
चतुर विचक्षण चतुर-मति रवि-तळि पंडित-राय ।
सकळ विमळ भाखा सुधी कवि सारंग कहाय ।।
जिण कवि भाखा जोरि करि संस्कृत भाखि सुजाण ।
अरथ कह्यउ लागइ विखम, वदइ न मंद वखाण ।।

(५) नारायण-वल्ली-बाळावबोध—इसकी रचना सं. १६६६ में खरतर-गच्छीय जिनमाणिक्यसूरि-संतानीय कल्याणलाभगणि के शिष्य उपाध्याय कुशलधीर ने की थी। यह टीका भी वाचक सारग की टीका के आधार पर बनी है। ऊपर लिखी जयकीर्ति की टीका से यह प्रायः शब्दशः मिलती है।

(६) संस्कृत-भाष्य—इसको खरतरगच्छीय श्रीसार ने सं. १७०३ मे लिखा था। यह बहुत विस्तृत टीका है। प्रस्तुत सस्करण तैयार करने मे इसकी सहायता उपलब्ध नही हो सकी।

(७) क्षेमशाखीय वाचनाचार्य लक्ष्मीकीर्त्तिगणि शिष्य लक्ष्मीवल्लभ कृत बालावबोध—विजयपुरस्थ चतुरजन की अभ्यर्थना से लिखित। समय सत्रहवी शताब्दी का पूर्वार्ध है।

तैसीतोरी ने दो और टीकाओ का उल्लेख किया—

(८) कमलरत्न शिष्य दानचंद्र कृत टबा—इसकी रचना सं. १७२७ मे हुई जान पड़ती है। प्रति इसी संवत् की लिखी हुई है।

(९) मारवाड़ी या पश्चिमी राजस्थानी में लिखित टीका—इसकी प्रति सं. १६७६ की लिखी हुई तैसीतोरी को मिली थी।

(१०) इस टीका की रचना भी सत्रहवी शताब्दी के शेष भाग मे हुई थी। इसकी प्रति तीर्थरत्नमुनि द्वारा सं. सोलह सौ और कुछ मे (..........रस-धरणी-मिते वर्षे) लिखी हुई तैसीतोरी को प्राप्त हुई थी।

(११) मेवाड़ी टीका, जो उदयपुर के सरस्वती-भंडार मे है।

(१२) व्रजभाषा में पद्यानुवाद—इसकी रचना गोपाल लाहोरी ने की थी। इसका नाम रसविलास है। जयकीर्ति ने इसका उल्लेख किया है।

(१३) व्रजभाषा में पद्यानुवाद—इसको कर्ता ने टीका दूहाबंध कहा है। टीकाकार का नाम तिलोक और टीका-लेखन का स्थान मेडता दिया गया है।

इनके अतिरिक्त और भी टीकाएं हस्तलिखित ग्रन्थ-भंडारो मे मिलती है। उनमे अधिकांश के साथ कर्ताओं के नाम नही मिलते। आधुनिक काल मे बीकानेर-राजघराने के ख्यातनामा विद्वान् महाराज जगमालसिंह ने वेलि की एक नवीन

टीका बनायी जो ठाकुर रामसिंह और सूर्यकरण पारीक द्वारा संपादित होकर इलाहाबाद की हिन्दुस्तानी-ऐकेडेमी से सन् १९३१ (सं. १९८७) में प्रकाशित हुई थी। इस सस्करण में विद्वान् संपादकों ने प्रस्तावना, सान्वय अर्थ, पाठान्तर, टिप्पणियाँ, शब्दकोप तथा दो प्राचीन टीकाएं भी साथ दी है। राजस्थानी साहित्य के सुप्रसिद्ध इटालियन विद्वान् डाक्टर तैसीतोरी ने वेलि का एक संस्करण कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल द्वारा सन् १९१९ (सं. १९७६) मे प्रकाशित करवाया था, जिसके साथ प्रस्तावना, पाठान्तर, टिप्पणियां तथा शब्दकोप भी दिये गये थे। वेलि का खड़ीबोली में पद्यानुवाद इस लेखक द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है।

वेलि का छंद

चारण कवियो ने पिंगल के छन्दशास्त्र द्वारा अनुमोदित छंदो के स्थान पर गीतों की नवीन पद्धति चलायी। यद्यपि गीत वर्णिक भी होते है पर अधिक संख्या मात्रिक गीतो की है, वर्णिक गीत दो-ही-चार है। मात्रिक छंदों का आरंभ अपभ्रंश के साथ देखा जाता है। संस्कृत और प्राकृत के प्राचीन मात्रिक छंदो के विपरीत ये नये मात्रिक छंद अन्त्यानुप्रास-युक्त या स-तुकान्त है। उनका विकास लोक-गीतो से हुआ जान पडता है। मात्रिक छंदो के साथ-साथ चारणी गीतों और पदों का विकास भी लोक-गीतो से हुआ। पदो मे और चारणी गीतों मे बहुत-कुछ समानता है। जैसे प्रत्येक पद मे कई तुकें होती है, वैसे ही प्रत्येक गीत में कई द्वाले या दोहले होते है। पदो का विभिन्न तुको की भाँति ये दोहले परस्पर-संबद्ध होते है। जैसे पद के आरंभ में एक टेक होती है, जो पद के आरंभ को सूचित करती है और जिसमे साधारणतया आगे के चरणो की अपेक्षा कुछ मात्राएं कम होती है, वैसे ही गीत के आरंभ में साधारणतया कुछ अधिक मात्राओ वाला चरण होता है, जो गीत के आरंभ को सूचित करता है।

एक गीत में कम-से-कम तीन, और साधारणतया चार या पांच, पद्य (दोहले) होते है। प्रत्येक दोहले मे साधारणतया चार, पर कभी-कभी कुछ न्यूनाधिक, चरण होते है। अधिकाश गीतों के दोहले सतुकान्त होते है, पर अतुकान्त दोहलों वाले गीत भी पाये जाते है। इस प्रकार अतुकान्त कविता राजस्थानी के लिए नयी नही है।

गीतों की संख्या कही ७२ और कही ८४ कही गयी है। कुछ गीतों के दोहले सम चरणो वाले, कुछ के अर्धसम चरणो वाले, पर अधिकाश गीतो के विषम चरणो वाले होते है। पदों की भांति अर्धसम चरणों वाले गीत अधिक लोकप्रिय हुए। कवियो ने उन्ही का प्रयोग सबसे अधिक किया।

चारणी गीतों में सबसे अधिक प्रसिद्ध गीत छोटा साणोर है। उसके चार मुख्य भेद है—

(१) वेलियो—जिसके चारों चरणो मे क्रमश. १६ । १५ । १६ । १५ मात्राएं हो। इसकी गति वीर या आल्हा छंद के समान होती है। अन्त में ऽ। आता है।[१]

(२) सोहणो—जिसके चरणो में १६ । १४ । १६ । १४ मात्राएं हों। अन्त मे ऽ। नही आता। इसकी गति ताटंक के समान होती है।[१]

(३) खुडद साणोर (खास छोटा साणोर)—जिसके चरणो में १६ । १३ । १६ । १३ मात्राएं हों। इसके अन्त में ।।। या ।ऽ आता है। इसके चरण के पूर्वार्ध की गति, वीर या ताटंक के पूर्वार्ध के समान और उत्तरार्ध की गति धरणी या चंडिका छंद के समान होती है।[१]

(४) जांगड़ो—जिसके चरणों मे १६ । १२ । १६ । १२ मात्राएं हों। इसके अन्त में ऽ। नही आता । गति सार छंद के समान होती है।

साधारणतया छोटे साणोर गीत मे पहला दोहला वेलिये का,[१] दूसरा सोहणे का, तीसरा खुड़द साणोर का और चौथा जागड़े का होता है।

वेलि मे गीत का प्रयोग नही हुआ है, किन्तु गीत के आधार पर बने हुए छंद का प्रयोग हुआ है। गीत में पद की भाति एक से अधिक दोहले होते है और सब दोहले जुड़े हुए होते है और जैसे प्रत्येक नये पद के आरंभ में टेक होती है वैसे ही प्रत्येक नये गीत के आरंभ में कुछ अधिक मात्राओ वाला चरण होता है। वेलि के पद्य छंदशास्त्र की दृष्टि से prosodically जुड़े हुए न होकर स्वतन्त्र या पृथक्-पृथक् है और प्रत्येक के प्रथम चरण मे दो मात्राएं अतिरिक्त हैं।

वेलिया छंद डिंगल की वेलियों मे प्रमुख रूप से प्रयुक्त हुआ है। इसी से संभवतः इसको यह नाम दिया गया है।

क्रिसन-रुकमणी-री वेलि के छंद का विश्लेषण इस प्रकार है—

१ गीत के प्रथम पद्य के प्रथम चरण में सर्वत्र २ मात्राएं अधिक होती है अर्थात् प्रथम चरण १६ मात्रा के स्थान पर २+१६=१८ मात्रा का होता है (ये अतिरिक्त दो मात्राएं चरण के आरम्भ मे अर्थात् १६ मात्रा के पूर्व जुडती है, चरण के अंत मे अर्थात् १६ मात्रा के बाद नही जुड़ती)।

विषम चरण—
  प्रथम चरण—१८ मात्राए
  तृतीय चरण—१६ मात्राए
सम चरण—

द्वितीय चरण चतुर्थ चरण	———	१५ मात्राएं, अंत मे ऽ।, अथवा १४ मात्राए, अत मे ।ऽ, अथवा १३ मात्राए, अत मे ।।। या ।ऽ

वेलि मे सम चरणो मे १३ मात्राओ वाले पद्यो की सख्या सबसे अधिक है (लगभग तीन-चौथाई)। उसके बाद १५ मात्राओ वाले पद्यो का नबर आता है, १४ मात्राओ वाले पद्यो की संख्या सबसे कम है। इस प्रकार वेलि के अधिकाश पद्य खुडद साणोर या खास छोटा साणोर गीत के आधार पर बने हुए है। वेलि के छद को छोटा साणोर कहना अधिक उचित होगा।

(८) कथा और कथा का आधार

कथा-सार

१. **प्रस्तावना**—परमेश्वर, सरस्वती और सद्गुरु को प्रणाम करके माधव के गुणो का गान गाता हूँ। ये ही चार मगलाचरण है। मैंने निर्गुण होकर भी गुण-निधि भगवान के चरित्र का गान आरम्भ किया है। जो सरस्वती को भी दिखायी नही पडता उसे मैं देख लेना चाहता हूँ, मानो लँगडा व्यक्ति मन के बराबर दौड़ लगाना चाहता है। शेषनाग के दो हजार जिह्वाए है और वह प्रत्येक जिह्वा से भगवान के नये-नये गुणो को गाता रहता है पर उसने भी उनका पार नही पाया। भला, मेरा उन पर क्या वश चल सकता है? ऐसा कौन है जो लक्ष्मीपति के यश का कथन कर सके? यह जानता हुआ भी मै उसका कथन करने चला हूँ। इसका कारण यही है कि जिसने जगत मे जन्म दिया और जो जन्म देने के समय से बराबर पालन-पोषण करता आया है उसके गुणों का गान किये बिना काम नही बन सकता। (१-७)

व्यास, शुकदेव, जयदेव जैसे अनेक कवि हुए है। उन सबका मत है कि शृगार रस का ग्रथ बनाने वाले कवि को प्रथम नायिका का वर्णन करना चाहिए। ससार मे माता प्रत्येक दृष्टि से पिता की अपेक्षा बडी है। वह दस महीनो तक उदर मे धारण करती है, फिर दस बरसो तक पालन-पोषण करती है। अत जगत्पिता (कृष्ण) के वर्णन के पूर्व जगन्माता (रुक्मिणी) का वर्णन सर्वथा उचित है। (८-९)

२ **रुक्मिणी की बाल्यावस्था और वय:संधि**—दक्षिण दिशा मे विदर्भ नाम का सुन्दर देश था जिसमे कुदनपुर नाम का नगर था। उसमें तीन लोको

के निवासियो के शिरोधार्य भीष्मक नामक राजा थे। उनके पॉच पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्रों के नाम रुक्मकुमार, रुक्मवाहु, रुक्ममाली, रुक्मकेश और रुक्मरथ थे। पुत्री का नाम रुक्मिणी था। वह लक्ष्मी का अवतार थी। (१०-१२) बालिका रुक्मिणी ऐसी शोभायमान थी जैसे मानसरोवर मे हंस का बच्चा हो अथवा सुमेरु पर छोटी-सी नवजात लता। वह अनेक समवयस्का सखियो के साथ राजमहल के आंगन में गुड़िया खेलती थी। धीरे-धीरे वचपन वीत गया और यौवन का आविर्भाव हुआ। मुख में ललाई प्रकट हुई, पयोधर अंकुरित हो चले, चित्त मे एक नवीन हलचल जाग उठी। लज्जा ने जन्म लिया। वह ऐसी लजीली थी कि उसे लज्जा करते भी लज्जा आती थी। शरीर प्रफुल्लित हो उठा। नेत्र खिल उठे। स्वर कोयल की भांति मधुर हो गया। शरीर-रूपी सरोवर मे यौवन-रूपी जल वेग से लहराने लगा। (१२-२७)

३. विवाह की मंत्रणा और शिशुपाल की बरात का आना—रुक्मिणी ने चौदह विद्याओ और चौंसठ कलाओं मे पूर्ण प्रवीणता प्राप्त की। कृष्ण के गुणो को सुनकर वह उनकी ओर आकर्षित हुई और उनको पति-रूप मे पाने के लिए गौरी और शकर की पूजा करने लगी। उसकी विवाह के योग्य अवस्था को देखकर माता-पिता ने उपयुक्त वर की खोज की। उन्हे कृष्ण जैसा दूसरा कोई वर नही दिखायी पडा। पर रुक्मकुमार को कृष्ण नही जँचे। उसे शिशुपाल पसंद आया और उसने चुपचाप पुरोहित को भेजकर शिशुपाल को वुला लिया। शिशुपाल बरात सजाकर कुदनपुर पहुँचा। उसके आने पर कुदनपुर के निवासियों ने नगर को सजाया। स्त्रिया झरोखो पर चढकर मंगल-गीत गाने लगी। (२८-४२)

४. रुक्मिणी का कृष्ण को संदेश भेजना—शिशुपाल को देखकर सारी स्त्रिया प्रसन्न हुईं पर रुक्मिणी मुरझा गयी। वह झरोखे पर जाकर ऐसे पथिक को देखने लगी जिसे वह कृष्ण के पास भेज सके। काजल की स्याही और नखो की लेखनी से उसने एक पत्र लिखकर रख लिया था। इतने मे एक ब्राह्मण दिखायी पडा। रुक्मिणी ने उसे पुकारा और पत्र लेकर अविलव द्वारका जाने की प्रार्थना की। ब्राह्मण वेचारा वृद्ध था। नगर से निकला ही था कि रात पड गयी और वह सो गया। परन्तु जव जागा तो अपने को एक नये ही स्थान मे पाया। एक व्यक्ति से पूछा। उसने वताया कि यह द्वारकापुरी है। यह जानकर ब्राह्मण को वडी प्रसन्नता हुई। वह पूछता-पूछता राजमहल मे जा पहुँचा। उसको आता देखकर कृष्ण दूर से ही उठ खडे हुए। अतिथि-सत्कार करने के पश्चात् परिचय एव आने का कारण पूछा। ब्राह्मण ने अपना परिचय देकर रुक्मिणी का पत्र कृष्ण के हाथ मे दे दिया।

रुक्मिणी के पत्र को पाकर कृष्ण के शरीर मे आनन्दजनित सात्विक भाव उमड आये। उनसे पत्र पढा नही गया। उनने पत्र ब्राह्मण को ही लौटा दिया और पढने की आज्ञा दी। (४२-५८)

५. रुक्मिणी का संदेश—रुक्मिणी ने पत्र में लिखा था—यदि कोई दूसरा मुझे ब्याहता है, तो समझो कि सियार सिंह के भोजन को खाता है, कपिला गाय कसाई को दी जाती है, तुलसी चांडाल के हाथ पडती है, अग्नि मे जूठन होमी जाती है शालिग्राम की शिला को शूद्र के घर मे रखा जाता है अथवा वेद की ऋचाओ को म्लेच्छो के मुखों मे रखते है; आप तीन बार पहले मेरा उद्धार कर चुके है; वह उद्धार आपने स्वयं ही किया था, उसके लिए किसी ने आपसे कहा नही था, पहली वार पृथ्वी के रूप मे वर्तमान मेरा हिरण्याक्ष के हाथो से उद्धार किया था, दूसरी बार समुद्र को मथकर लक्ष्मी के रूप मे मुझे प्राप्त किया था, तीसरी वार समुद्र को बाधकर और रावण को मारकर सीता के रूप मे मेरा लंका से उद्धार किया था, अब यह चौथी बार है, आप अन्तर्यामी है, आपसे जी की बात कहना अनावश्यक है, क्योंकि आप घट-घट की जानते है, पर मैं एक तो अवला ठहरी और फिर प्रेम के कारण आतुर हूँ; इसलिए यह सब वक रही हूँ; विवाह के दिन के बीच मे केवल तीन दिन रह गये है और आप बहुत दूर द्वारका में है, हे पुरुषश्रेष्ठ ! नगर के पास एक देवी का मन्दिर है, पूजा के बहाने मैं वहाँ आऊँगी। (५९-६६)।

६. कृष्ण और बलराम का कुन्दनपुर आना—रुक्मिणी का पत्र सुनकर कृष्ण पथदर्शक, पुरोहित आदि को लेकर तुरन्त रथ मे जा बैठे और कुन्दनपुर को चल दिये। वहाँ पहुच कर ब्राह्मण को रुक्मिणी के पास खबर देने को भेज दिया। इधर रुक्मिणी चिन्ता कर रही थी। इतने मे छीक हुई और ब्राह्मण भी आ पहुँचा। उसे गुरुजनो और सखियो से घिरी देखकर ब्राह्मण ने 'लोग कहते है कि कृष्ण आये है' इस प्रकार अप्रत्यक्ष-रूप से कृष्ण के आने का समाचार सुनाया। उधर द्वारका मे बलराम ने कृष्ण को अकेले ही गया सुना तो चुने हुए वीरो को लेकर पीछे-पीछे आ पहुँचे। राजा भीष्मक ने दोनो का स्वागत-सत्कार किया। (६७-७८)

७ रुक्मिणी का शृंगार—कृष्ण के आने का समाचार सुनकर रुक्मिणी ने माता की आज्ञा लेकर अम्बिका की पूजा के लिए जाने की तैयारी की। उसने गुलाबजल से स्नान किया और धुला हुआ वस्त्र पहना। फिर केशो को धूप दी। इसके बाद स्नान की चौकी से उतरकर गद्दी पर आ बैठी। एक सखी दर्पण लेकर सामने खडी हो गयी। अब रुक्मिणी शृंगार करने लगी। गले मे पवित्री पहनी। वेणी मे फूल गूंथे। कानों

मे कुडल पहने । नेत्रों में अंजन लगाया । ललाट पर कुंकुम का तिलक किया। माथे पर जड़ाऊ तिलक पहना । कुचों पर कंचुकी वांधी । कंठ मे मोतियों की माला और कठी पहनी । गौर भुजाओं मे वाजूवंद बाँधे । कलाई मे गजरे और पहुँचियाँ तथा कंगन धारण किये । उर पर मोतियो का हार पहना । कमर में करधनी पहनी । पैरों में नूपुर और घुँघरू पहने । नाक मे वेसर पहनी जिसका मोती भूल रहा था । एक तांवूल मुख मे और एक हाथ में लिया । पैरों मे मोतियों से जड़ी पगरखी पहनी । नीली साडी के भीतर गहनों के रत्न जगमगा रहे थे । (७८-१०१)

८. रुक्मिणी का देवी-पूजा को जाना—सखियो ने हाथो मे पूजा की विविध सामग्री ली और राजकुमारी पालकी पर चढ़कर देवी के मन्दिर को चली। साथ मे घुड़सवार, हाथी, रथ और पैदल सैनिक चले। सेना मन्दिर के चारो ओर खडी हो गयी और रुक्मिणी ने भीतर जाकर पूजा की । (१०२-१०८)

९. रुक्मिणी का हरण और शिशुपाल तथा रुक्मकुमार के साथ युद्ध—पूजा करके रुक्मिणी वाहर आयी। उसके अद्भुत सौंदर्य को देखकर सेना के वीर अचेत हो गये । इतने मे कृष्ण सहसा आ पहुंचे और रुक्मिणी को रथ पर विठा कर ले चले।

जव पुकार हुई तो शिशुपाल के सुभटो ने कृष्ण का पीछा किया और उनको जा पकडा। दोनो दलो में भयकर युद्ध हुआ जिसमे शिशुपाल की पराजय हुई। शिशुपाल की पराजय का हाल सुनकर रुक्मकुमार अकेला ही जा पहुँचा और उसने कृष्ण को ललकारा। दोनो का युद्ध हुआ जिसमे रुक्मकुमार की हार हुई। रुक्मिणी का लिहाज करके कृष्ण ने उसको मारा नही, केवल केश काटकर विरूप कर दिया। (१०९-१३५)

१०. कृष्ण का द्वारका लौटना और रुक्मिणी के साथ विवाह होना—उधर द्वारका मे लोग चिता के साथ कृष्ण के लौटने की प्रतीक्षा कर रहे थे। वधाईदारो से कृष्ण का सकुशल आना सुनकर वे कृष्ण को लेने के लिए सामने गये । अनेक उत्सव हुए । फिर कृष्ण के माता-पिता ने कृष्ण के विवाह की तैयारी की । ब्राह्मणों ने कहा कि हथलेवा तो हरण के समय ही हो गया, वाकी संस्कार कर लिये जायँ । विधिपूर्वक विवाह की सव विधि सम्पन्न की गयी। (१३५-१५५)

११. वर-वधू का एकान्त मिलन और निशापगम—इसके पश्चात् सखियाँ वर और वधू को चित्रसारी मे ले गयी। वहाँ वर-वधू को छोड़कर वे वाहर चली गयी। कृष्ण और रुक्मिणी का सम्मिलन हुआ। (१५६-१७९)

फिर प्रभात काल हुआ। रात बीत गयी। चन्द्रमा फीका पड़ गया। फूलो ने सुगन्ध छोडी। शख और नगाडो की ध्वनि होने लगी। अन्धकार दूर होकर प्रकाश फैल गया। सूर्य उदित हुआ। (१७९-१८३)

१२. ऋतु-वर्णन और ऋतु-विहार—इसके पश्चात् ऋतु-वर्णन के साथ कृष्ण और रुक्मिणी के षड्-ऋतु-विहार का वर्णन है। ग्रीष्म ऋतु (१८४-१९०) से आरम्भ करके वर्षा (१९०-२०२), शरद् (२०३-२१३), हेमन्त (२१४-२१९) शिशिर (२१९-२२५) और वसत (२२६-२६५) का एक-एक करके वर्णन किया गया है। वसत के प्रसग मे पहले वसत-रूपी वालक के जन्म और जन्मोत्सव का, फिर वसत-रूपी राजा के न्यायपूर्ण राज्य का, तदनतर वसंत-रूपी राजा के अखाडे (नृत्यशाला) का और उसके पश्चात् मलय-पवन का वर्णन है। प्रत्येक ऋतु के वर्णन के अन्त मे रुक्मिणी-कृष्ण के ऋतु-विहार का सक्षिप्त वर्णन है।[1] (११४-२६५)

१३. कृष्ण का परिवार और गृहस्थ-जीवन—कुछ काल पश्चात् महादेव द्वारा जलाये हुए कामदेव ने रुक्मिणी के गर्भ में वास किया और प्रद्युम्न के रूप मे जन्म लिया। रति से प्रद्युम्न के अनिरुद्ध नाम का पुत्र हुआ जिसकी पत्नी उषा थी। पुत्र-पौत्र आदि से समृद्ध होकर भगवान गृहस्थ धर्म का पालन करने लगे। क्रोध, हिंसा, निदा, मदिरा और दुर्वचन को चाडाल-चाडाली की भाँति दूर कर दिया। (२६६-२७४)

१४. वेलि-माहात्म्य—इसके पश्चात् १२ पद्यो मे वेलि का माहात्म्य है। पद्य २७७ मे वेलि के पाठ की विधि वतायी गयी है। पद्य २८७ मे वेलि को गगा से वढकर कहा गया है। आगे के दो पद्यो मे वेलि का लता के साथ रूपक वाधा गया है और फिर ७ पद्यो मे वेलि की काव्यगत श्रेष्ठता का प्रतिपादन है। (२७५-२९६)

१५ उपसंहार—पद्य २९७ और २९८ मे कवि अपनी विनय प्रदर्शित करता है। वह कहता है कि जो कुछ मैंने वडो से सुना वही यहाँ शब्दो मे कह दिया है। सज्जन इसे वडो का प्रसाद कहेगे और दुर्जन जूठन। दूसरे पद्य मे वह पडितो से प्रार्थना करता है कि हे पडित जन! मेरे वचन दोषपूर्ण है पर उनमे हरि का यश वर्णित है, उसके आधार पर वे आपके कर्ण-रूपी तीर्थ मे आये है, आप उन्हे दोषमुक्त कीजिये।

पद्य २९९ मे कवि कहता है कि मैंने रुक्मिणी-कृष्ण की क्रीडा के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा है उसमे कुछ भी मिथ्या नही है। सरस्वती रुक्मिणी की सखी है। उसने जैसा मुझे वताया वैसा ही मैंने लिखा है।

[1] वर्णन के विवरण के लिए हिन्दी गद्य भाषान्तर को देखें।

पद्य ३०० में कवि कृष्ण और रुक्मिणी के चरित्र के वर्णन की असंभवता बताता है। वह भगवान को सबोधन कर के कहता है कि हे केशव, तुम्हारे और रुक्मिणी के चरित्र का वर्णन कौन कर सकता है; इसमे जो कुछ सुन्दर है उसे सरस्वती की कृपा, और जो कुछ असुन्दर है उसे मेरे अज्ञान का फल समझा जाय।

यही काव्य की समाप्ति हो जाती है।

काव्य की कथा का आधार

वेलि की कथा का आधार भागवत पुराण है। कवि स्वय कहता है—

> **वेली, तसु बीज भागवत वायउ**
> **महि थाणउ प्रिथुदास-मुख।**

भागवत के दशम स्कध के उत्तरार्ध के अध्याय ५२—५३—५४ मे रुक्मिणी की कथा आयी है।[1]

पृथ्वीराज ने भागवत का अध्ययन किया और उससे प्रेरणा प्राप्त की इसमे सदेह नही, पर इतना होने पर भी वेलि और भागवत में भाव-साम्य बहुत कम पाया जाता है। तैसीतोरी को ढूढने पर केवल चार ऐसे स्थल मिले जहाँ दोनो मे साम्य दिखायी पड़ता कहा जा सकता है। नीचे कुछ अंश उद्धृत किये जाते है जिनमे निकट का या दूर का कुछ भाव-साम्य है—

> **राजासीद् भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर् महान्।**
> **तस्य पञ्चाभवन् पुत्राः कन्यैका च वरानना ॥२१॥**
> **रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनन्तरः।**
> **रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषां स्वसा सती ॥२२॥**[2]
> **सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूप-वीर्य-गुण-श्रियः।**
> **गृहागतैर् गीयमानास् तं मेने सदृशं पतिम् ॥२३॥**[3]
> **तन् मे भवान् खलु वृतः पतिरंग जाया**
> **मात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि।**

[1] रुक्मिणी-हरण की कथा भागवत के अतिरिक्त हरिवंश तथा विष्णुपुराण आदि अन्यान्य बहुत-से पुराणो तथा उपपुराणो मे भी आयी है पर वेलि के कवि ने उनसे कुछ लिया हो ऐसा नही जान पडता।

[2] दक्खिण दिसि देस विद्रभ अति दीपत पुर दीपत अति कुँदणपुर
राजत अेक भीखमक राजा सिरहर अहि नर असुर सुर
पंच पुत्र ताइ छठी सु पुत्री कुंवर रुकम कहि विमळ-कथ
रूकमबाहु अनइ रुकमाळी रुकमकेस नइ रुकमरथ

[3] सॉभळि अनुराग थियउ मनि स्यामा वर-प्रापति वंछती वर
हरि-गुण भणि ऊपनी जिका हरि हरि तिणि वंदइ गव्रि-हर

मा वीर-भागमभिमर्शतु चैद्य आराद्
गोमायुवन् मृगपतेर् बलिमंबुजाक्ष ! ॥३६॥[1]
स चाश्वैः शैब्य-सुग्रीव-मेघपुष्प-बलाहकैः ।
युक्तं रथमुपानीय तस्थौ प्रांजलिरग्रतः ॥ ५ ॥[2]
आरुह्य स्यंदनं शौरिर् द्विजमारोप्य तूर्णगैः ।
आनर्त्तादेकरात्रेण विदर्भानगमद् धयैः ॥ ६ ॥[3]
श्रुत्वैतद् भगवान् रामो विपक्षीय-नृपोद्यमम् ।
कृष्णं चैकं गतं हर्त्तुं कन्यां कलह-शंकितः ॥२०॥
बलेन महता सार्धं भ्रातृ-स्नेह-परिप्लुतः ।
त्वरितः कुंडिनं प्रागाद् गजाश्व-रथ-पत्तिभिः ॥२१॥[4]
एवं वध्वाः प्रतीक्षन्त्या गोविन्दागमनं नृप !
वाम ऊरुर् भुजो नेत्रमस्फुरन् प्रिय-भाषिणः ॥२७॥[5]
तमागतं समाज्ञाय वैदर्भी हृष्टमानसा ।
न पश्यन्ती ब्राह्मणाय प्रियमन्यन् ननाम सा ॥३१॥[6]
तयोर् निवासं श्रीमद् उपकल्प्य महामतिः ।
स-सैन्ययोः सानुगयोर् आतिथ्यं विदधे यथा ॥३४॥
कृष्णमागतमाकर्ण्य विदर्भ-पुर-वासिनः ।
आगत्य नेत्राञ्जलिभिः पपुस् तन्-मुख-पंकजम् ॥३६॥[7]
अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा ।
असावप्यनवद्यात्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः ॥३७॥[8]
यां वीक्ष्य ते वत नृपतयस् तदुदार-हास—
व्रीडावलोक-हृत-चेतस उज्झितास्त्राः ।

१ वळिवधण ! मूझ सियाळ सिंघ-बळि प्रासइ जउ वीजउ परणइ
२ सुग्रीवसेन नइ मेघपुहप समवेग वळाहक इसइ वहंत
खँति लागउ त्रिभुवणपति खेड़इ घर गिरि तरु साम्हा धावंत
सारंग सिळीमुख साथि सारथी प्रोहित जाणणहार पथ
३ कागळ-चउ ततकाळ क्रिपानिधि रथि वइठा सांभळि अरथ
चढिया हरि सुणि संकरखण चढिया कटक-बंध नहु घणा किध
४ अेक उजाघर कलहि अेकहा साथी सहु आखाढसिध
चिंतातुर मनि इम चिंतवती थयी छीक तिम धीर थयी
५ वॉभण मिसि वदे हेतु सु वीजउ कही स्रवणि संभळी कथ
६ आवासि उतारि जोड़ि कर ऊभा जण-जण आगइ जणउ-जणउ
७ वसुदेव-कुमार-तणउ मुख वीखे पुणइ सुणइ जण आप-पर
८ अउ रुकमणी-तणउ वर आयउ हिव म करउ अनि राइ हर

पेतुः क्षितौ रथ-गजाश्व-गता विमूढा
यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयतीं स्व-शोभाम् ॥५३॥[1]
मुमुचुः शर-वर्षाणि मेघा अद्रिष्वपो यथा ॥ ३ ॥[2]
परिघं पट्टिशं शूलं चर्मासी शक्ति-तोमरौ
यद्-यदायुधमादत्त तत्सर्वं सोऽच्छिनद् धरिः ॥२९॥[3]
मल्लानामशनिर् नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रो. शिशुः ।
मृत्युर् भोजपतेर् विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः ॥१७॥[4]

उद्धृत उदाहरणो की तुलना से ज्ञात होगा कि पृथ्वीराज ने जहा-कही भागवत के भाव को लिया है वहां उसको अधिक मनोहर बना दिया है ।

वेलि और भागवत की कथा में अन्तर

(१) भीष्मक के पाच पुत्रों के नामो का क्रम—
भागवत के अनुसार—रुक्मी, रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश, रुक्ममाली ।
वेलि के अनुसार—रुक्मकुमार, रुक्मबाहु, रुक्ममाली, रुक्मकेश, रुक्मरथ ।

भागवत का क्रम वेलिकार को सभवत. छन्द के अनुरोध के कारण बदलना पड़ा है ।

(२) भागवत मे रुक्मिणी की बाल्यावस्था, वय.सधि, यौवनागम और विद्याध्ययन का उल्लेख नही है ।

(३) भागवत में—**घर आये जनों से** कृष्ण के गुणादि को सुनकर रुक्मिणी उनको पति मान लेती है और कृष्ण भी रुक्मिणी के गुणो को जानकर उससे विवाह की इच्छा करते है ।
वेलि मे—**कृष्ण के गुणों को** सुनकर रुक्मिणी के मन मे उनको वर रूप मे पाने की इच्छा होती है और गौरी और शंकर की आराधना करती है ।

(४) भागवत में **माता-पिता** के साथ रुक्मकुमार की **बात-चीत का वर्णन नहीं है** । उसमे कहा गया है कि बधुजन कृष्ण के साथ रुक्मिणी का

१ आकरखण वसीकरण उनमादक परठि द्रवित्रण सोसण सर पंच
चितवणि हसणि लसणि तणि सँकुचणि सुंदरि द्वारि देहुरइ संच
मन पंगु थियउ सहु सेन मूरछित तह नह रही सँपेखतइ
२ सिलह-लोह ऊपरा लोह-सर मेह-बूंद माहे महण
३ अे अखियात जु आउधि आउध सजे रुकम हरि छेदे सो-जि
४ कामणि कहि काम काळ कहि केवी नारायण कहि अवर नर
वेदारथ इम कहइ वेदवंत जोग-तत्त जोगेसवर

विवाह करना चाहते थे पर कृष्ण के द्वेषी रुक्मी ने शिशुपाल को ठीक समझा और पुत्र-स्नेहवश राजा ने भी शिशुपाल को कन्या देने की तैयारी की। रुक्मी के शिशुपाल के यहाँ पुरोहित के भेजने का उल्लेख भागवत मे नही है।

(५) राजा के द्वारा विवाह की तैयारी का वर्णन भागवत मे अधिक है, जो वेलि मे नही है। भागवत मे शिशुपाल के पिता दमघोप का पुत्र की वरात लेकर आना लिखा है तथा वरात के साथ आने वाले राजाओ—शाल्व, जरासध, दतवक्त्र, विदूरथ, पौड्रक—के नाम दिये है। साथ ही यह भी लिखा है कि उनको आशका थी कि कृष्ण सभवतः कन्या का हरण करेगा।

(६) शिशुपाल के आगमन पर नगर में जो सजावट की गयी उसका उल्लेख भागवत मे नही है।

(७) ब्राह्मण के कुन्दनपुर मे ही सोते रहने और प्रातःकाल द्वारका मे जागने का वर्णन तथा द्वारका की शोभा का वर्णन भागवत मे नही है।

(८) भागवत मे कृष्ण ब्राह्मण से लम्बी-चौड़ी कुशल पूछते है जो वेलि मे नही है।

(९) भगवान के सात्त्विक भावो के आविर्भाव के कारण पत्र पढ़ने मे असमर्थ होने का कथन भागवत मे नही है, न पत्र का उल्लेख है। ब्राह्मण मौखिक सन्देश देता है।

(१०) रुक्मिणी का सन्देश दोनो का भिन्न-भिन्न है, केवल भागवत की—
मा वीर-भागमभिमर्शतु चैद्य आराद् गोमायुवन् मृगपतेर् वलिमंबुजाक्ष !
यह पक्ति वेलि की
वलिवधण ! मूझ सियाळ सिंघ-वळि प्रासइ जउ वीजउ परणइ।
इस पक्ति से किसी अश मे मिलती है।

(११) वेलि के अनुसार ब्राह्मण को रुक्मिणी ने शिशुपाल की वरात के पहुँचने के बाद द्वारका भेजा था। भागवत के अनुसार शिशुपाल को रुक्मी के वर निश्चित करने के बाद ही भेज दिया था, शिशुपाल की वरात पीछे आयी।

(१२) भागवत और वेलि दोनो मे रुक्मिणी की चिंता का वर्णन है। भागवत मे कृष्णागमन-सूचक शुभ शकुन वाम नेत्र, भुजा और ऊरु का फड़कना बताया गया है, वेलि मे छीक का होना।

(१३) वेलि मे ब्राह्मण और रुक्मिणी का प्रत्यक्ष वार्तालाप नही होता, ब्राह्मण 'सुना है' कहकर कृष्ण का आना सूचित करता है। भागवत मे दोनो का प्रश्नोत्तर होता है।

(१४) भागवत मे रुक्मिणी ब्राह्मण के वहाने कृष्ण को—प्रत्यक्षरूप से ब्राह्मण को पर वास्तव में कृष्ण को—प्रणाम करती है। वेलि मे ब्राह्मण के वहाने ब्राह्मण को प्रणाम करती है—अर्थात् प्रणाम इसलिए करती है कि वह कृष्ण को ले आया पर देखने वाले यही समझे कि उसने ब्राह्मण देखकर प्रणाम किया (प्रत्येक ब्राह्मण प्रणाम का अधिकारी है)।

(१५) भागवत मे रुक्मिणी का माता से आज्ञा लेने का उल्लेख नही है और न उसके शृंगार का ही वर्णन है।

(१६) भागवत मे देवी-पूजा का वर्णन वेलि की अपेक्षा अधिक विस्तार से है।

(१७) रुक्मिणी-हरण का प्रसंग दोनो मे है पर वर्णन मे समानता नही है।

(१८) यही हाल युद्ध-वर्णन का है। दोनो के वर्णन सर्वथा भिन्न है।

(१९) भागवत मे युद्ध के अन्त मे जरासध आदि शिशुपाल को समझाते है और भविष्य मे विजय की आशा दिलाते है। वेलि मे यह प्रसग नही है।

(२०) भागवत में रुक्मी यह प्रतिज्ञा करके आता है कि रुक्मिणी को छुडाऊगा, नही तो कुन्दनपुर मे नही लौटूगा, पराजय के पश्चात् वह कुन्दनपुर नही लौटा, वही भोजकट नगर बसाकर राज्य करने लगा। वेलि मे यह प्रसग नहो है।

(२१) भागवत में कृष्ण रुक्मी को मारने को तलवार उठाते है और रुक्मिणी के कहने से उसे नही मारते। वेलि मे ऐसा वर्णन नही है; कृष्ण स्वयं रुक्मिणी के मन का ध्यान रखते है और रुक्मी को नही मारते है।

(२२) भागवत में रुक्मी को विरूप करने के कारण बलराम कृष्ण को फटकारते है और फिर कई पद्यो मे रुक्मिणी को समझाते है। वेलि मे वे केवल उपालंभ देते है और उनका यह उपालंभ कही अधिक प्रभावशाली और काव्योचित है।

(२३) कृष्ण के रुक्मिणी-सहित द्वारका पहुँचने का और उनके स्वागत तथा विवाह का वर्णन वेलि मे विस्तार से है। भागवत मे वह अत्यन्त संक्षिप्त है।

(२४) भागवत मे विवाहोत्तर उत्सवों का सक्षिप्त वर्णन है पर वेलि मे नही है।

(२५) विवाह के वाद भागवत का रुक्मिणी का प्रसंग समाप्त हो जाता है। कृष्ण-रुक्मिणी-मिलन, प्रभातवर्णन, ऋतुवर्णन तथा रुक्मिणी-कृष्ण के विहार का वर्णन आदि प्रसग भागवत मे नही है। प्रद्युम्न के जन्म-उल्लेख के अतिरिक्त आगे कोई समानता नही।

(६) समीक्षा

वस्तु

वेलि एक खडकाव्य है। खंडकाव्य मे नायक या नायिका के जीवन की किसी एक ही घटना या प्रसंग को लेकर रचना की जाती है। वेलि मे कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह, मिलन और (ऋतु-विहार) की कथा है। वैसे तो रुक्मिणी की वाल्यावस्था से लेकर पुत्र-पौत्र प्राप्ति तक का उल्लेख हुआ है परन्तु केन्द्र-विन्दु कृष्ण तथा रुक्मिणी का विवाह तथा मिलन ही है। वाल्यावस्था तथा पुत्र-पौत्र-प्राप्ति का वर्णन अत्यन्त सक्षिप्त है—केवल उल्लेख-मात्र।

कथा का आधार भागवत पुराण है। भागवत के दशम स्कध के उत्तरार्ध मे, अध्याय ५२ से ५४ तक, रुक्मिणी की कथा आयी है। भागवत के ये अध्याय कथा-प्रधान है, पर वेलि कथा नही है, वह काव्य है। वेलि के कवि का उद्देश्य रुक्मिणी और कृष्ण की कथा कहना नही है। उसने रुक्मिणी की कथा के व्यपदेश से एक कलापूर्ण काव्यकृति का निर्माण किया है। उसने भागवत से केवल कथा-सूत्र लिया है, वाकी का सारा वैभव उसका अपना है। भागवत से कथा का ढाँचा लेकर उससे कवि ने कविता-कामिनी की सजीव प्रतिमा गढ़ी है।

भागवत के साथ कथा के विवरणो (details) का वहुत ही कम साम्य पाया जाता है। भागवत की कथा को काव्योपयोगी बनाने के लिए कवि ने वहुत-से परिवर्तन किये है। उदाहरणार्थ, भागवत मे कृष्ण रुक्मी को मारने के लिए तलवार उठाते है, तव रुक्मिणी उनके पैरो पड़कर भाई को बचाने की प्रार्थना करती है और तव कृष्ण रुक्मी को मारने से विरत होते है पर वेलि मे कृष्ण निकटासीना रुक्मिणी के 'मन' का स्वय ध्यान रखते है और रुक्मकुमार को मारने का कोई प्रयत्न नही करते, केवल उसके चलाये हुए आयुधो को व्यर्थ कर देते है। इस परिवर्तन से कृष्ण का चरित्र निस्सन्देह अधिक मधुर और अधिक उदात्त बन गया है।

काव्य की वस्तु वहुत संक्षिप्त है। प्रासंगिक वस्तु के लिए तो खंडकाव्य में अवकाश ही नही होता, फलतः वेलि मे कोई प्रासंगिक कथा नही है। आधिकारिक वस्तु मे भी 'कार्य' की ओर उन्मुख करने वाली अत्यन्त आवश्यक घटनाओ और प्रसगो को ही लिया गया है। उसमे कार्य की विभिन्न अवस्थाओ का सुचारु रूप से निर्वाह हुआ है।

रुक्मिणी कृष्ण के गुणो को श्रवण कर मुग्ध होती है और उनको पति रूप मे पाने की इच्छा से, उनकी प्राप्ति के लिए, हर-गौरी की पूजा करती है (आरभ)। रुक्मकुमार और शिशुपाल के रूप मे वाधाएं आती है जिससे कृष्ण की प्राप्ति सदिग्ध हो जाती है पर रुक्मिणी ब्राह्मण को पत्र देकर द्वारकापुरी

कृष्ण के पास भेजती है (यत्न)। कृष्ण ठीक समय पर आ पहुँचते है। रुक्मिणी पूजा के लिए नगर के बाहर देवी के मन्दिर को जाती है जहाँ कृष्ण भी आ पहुँचते है और उसका हरण कर चल देते है; इस प्रकार प्रयत्न सफल होता है पर अभी और बाधाएं बाकी है (प्राप्त्याशा)। शिशुपाल और रुक्मकुमार कृष्ण का पीछा करते है। प्राप्ति एक बार फिर सदिग्ध हो जाती है। युद्ध होते हैं जिनमे कृष्ण की विजय और विरोधियो की पराजय होती है। अब प्राप्ति निश्चित हो जाती है (नियताप्ति)। इसके पश्चात् कृष्ण रुक्मिणी को लेकर द्वारका जाते है जहाँ दोनों का विधिवत् विवाह होता है, और फिर दोनो का मिलन होता है। यहाँ फल की प्राप्ति एक प्रकार से हो जाती है पर विवाह की सफलता गृहस्थ-सुख और सन्तान-प्राप्ति तथा परिवार की समृद्धि में है। फलतः काव्य की समाप्ति पुत्र-पौत्रादि की प्राप्ति होने पर होती है (फलागम)।

काव्य मे एकाध स्थान पर अलौकिक घटनाएं भी आयी है जैसे ब्राह्मण का कुन्दनपुर में सोना और द्वारका में जागना। काव्य के लिए ये अस्वाभाविक है और खटक सकती है पर पृथ्वीराज उत्कृष्ट कवि होते हुए भी भक्त पहले थे। वेलि के आदि और अन्त के भागों से यह स्पष्ट है। इन अलौकिक घटनाओ को उनकी इस भक्ति का ही परिणाम समझना चाहिए। वे चाहते तो इन घटनाओं को बचा सकते थे। भागवत में इनका उल्लेख नही है। पर भगवान की भक्तवत्सलता को व्यक्त करने के लिए उनने इनकी योजना कर डाली। ब्राह्मण वाली घटना में उनने राजस्थान में प्रचलित कृष्ण-काव्य और लोक-मानस की धारणा का अनुगमन किया है।

काव्य के बीच-बीच मे जो वर्णन आये है उनमे से कई-एक बहुत लंबे है; उदाहरणार्थ यौवनागम-वर्णन, शृंगार-वर्णन और ऋतु-वर्णन। ये वर्णन कथा मे विराम उत्पन्न करके कथा की एकसूत्रता मे व्याघात पहुँचाते है ऐसा आक्षेप किया गया है। ध्यान रखना चाहिए कि वेलि वर्णन-प्रधान काव्य है। उसमे वर्णन प्रधान है, और कथा गौण। इस सम्बन्ध मे कवि ने संस्कृत की काव्य-परम्परा का अनुसरण किया है। संस्कृत मे अनेक ऐसे काव्य है जिनमे कथा नाम-मात्र को है—केवल इतनी कि काव्य की प्रबन्धात्मकता टिकी रहे। किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषधचरित ऐसे ही काव्य है। 'वेलि' के वर्णन वस्तुत. लबे नही है। वे लंबे इसलिए जान पडते है कि कथा बहुत सक्षिप्त है। ये वर्णन प्रसंग के लिए आवश्यक है, प्रसंगानुकूल तो है ही। अन्त में वसंत का वर्णन अवश्य अधिक लंबा है, पर कवि ने जो तीन साग-रूपक खडे किये है उनका निर्वाह इतने से कम में होना सम्भव नही था।

चरित्र

वेलि वर्णन-प्रधान काव्य है। उसमे चरित्र-चित्रण का प्रयत्न नही है। वहुत आवश्यक पात्रो को ही लिया गया है और उनका चित्रण भी कूची के मोटे-मोटे हाथ मार कर ही किया गया है।

पात्रो मे प्रधान रुक्मिणी, कृष्ण, रुक्मी और वलराम है। प्रधान पात्र होते हुए भी शिशुपाल का केवल एक-दो स्थानों पर उल्लेख-मात्र हुआ है। गौण पात्रों मे सवसे प्रमुख 'ब्राह्मण' है। अन्य गौण पात्र है—रुक्मिणी के माता-पिता, कृष्ण के माता-पिता, पुरोहित, रुक्मिणी की सखियाँ, कुन्दनपुर के नागरिक, रुक्मिणी के साथ जानेवाले सैनिक, शिशुपाल के सुभट और द्वारका के नागरिक।

रुक्मिणी—रुक्मिणी काव्य की नायिका या सर्वप्रमुख पात्र है। वाल्यावस्था मे वह सखियों के साथ गुडिया खेलती है। फिर यौवन का आगमन होता है। वह चौदहो विद्याओ और चौसठो कलाओं का ज्ञान प्राप्त करती है। कृष्ण के गुणो का श्रवण कर वह उनकी ओर आकर्षित होती है और उन्हे पति-रूप मे पाने की इच्छा से हर-गौरी की पूजा करती है। माता-पिता उसका विवाह कृष्ण के साथ करना चाहते है पर रुक्मी शिशुपाल को वुला भेजता है। शिशुपाल के वरात लेकर आने पर वह मुरझा जाती है पर अभीष्ट की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करती है। कृष्ण के पास संदेश भेजना चाहती है। लगन के तीन ही दिन वाकी रह गये है। शीघ्रता करना आवश्यक है। वह एक पत्र लिखती है। छिपाकर लिखती है, अत गीले काजल से नखो द्वारा लिखती है। पर भेजे किसके हाथ ? राजमहल से वाहर जा नही सकती। वार-वार छज्जे पर जाती है और जाली मे से किसी उपयुक्त व्यक्ति को खोजती है। आतुर प्रतीक्षा के पश्चात् एक वृद्ध ब्राह्मण दिखायी पडता है। उसी को वड़े अनुनय और आग्रह से तैयार करती है। ब्राह्मण पत्र को लेकर चला जाता है।

एक-एक करके दिन वीतने लगते हैं। लगन का दिन आ पहुँचता है। पर कृष्ण और ब्राह्मण का कोई पता नही। उसकी आशा उसे छोडने लगती है। वह चितातुर हो उठती है—इतनी देर तो उनने कभी नही की ? अवश्य ही अव वे नहीं आयेंगे। निराशा की इस स्थिति मे छींक होती है। इस शगुन से आशा लौट आती है। इतने मे ब्राह्मण भी आ पहुँचता है। एकान्त मे मिलने का अवसर नहीं। रुक्मिणी पूछे तो कैसे पूछे और ब्राह्मण अपनी खवर सुनाये तो कैसे सुनाये ? दोनो अवसरानुकूल चातुर्य से काम लेते है। रुक्मिणी उसके मुख की मुद्रा को देखकर भीतर की वात जानने का प्रयत्न करती है। ब्राह्मण लोकप्रवाद का सहारा लेता है और कहता है—लोग कहते है कि कृष्ण पधारे है। रुक्मिणी समझ जाती है और कृतज्ञता प्रकट करने के लिए ब्राह्मण को प्रणाम करती है।

पत्र मे रुक्मिणी ने कृष्ण को देवी के मन्दिर मे आने के लिए लिखा था। अब उसने देवी के मंदिर को जाने की तैयारी की। सखी को पहले से ही सिखा रखा था। उसने माता की आज्ञा प्राप्त की। कृष्ण-मिलन के उत्साह मे उसने सावधानी से शृंगार किया। फिर सखियो के साथ पालकी पर चढ़ कर चली। चतुरंगिणी सेना साथ चली। रुक्मिणी ने भाव के साथ देवी की पूजा की और फिर द्वार पर आयी। वहां उसने चतुरता से अपने अपूर्व सौन्दर्य का प्रदर्शन किया, जिसके फलस्वरूप सेना के सारे सुभट होश-हवाश खो बैठे।[1] इतने मे कृष्ण रथ लेकर आ पहुँचे। रुक्मिणी द्वार पर तैयार थी ही। कृष्ण ने हाथ पकड़ कर उसे रथ पर बैठा लिया और तुरंत रथ को हाक दिया।

इसके पश्चात् रुक्मिणी को हम नव-परिणीता वधू के रूप में देखते है। सखियाँ उसे प्रिय के पास ले जा रही है और वह लाज और सकोच के कारण पग-पग पर ठहर जाती है। प्रिय का मिलन होने पर जहा प्रिय उसको देखने के लिए उत्कठित होता है वहा वह भी उत्कठित होती है और घूघट के भीतर से ही तिरछी चितवन द्वारा उसे देखने का प्रयत्न करती है।

इसके पश्चात् कृष्ण और रुक्मिणी के वैभवपूर्ण ऋतु-विहार के उल्लेख है। फिर पारिवारिक समृद्धि का संकेत। रुक्मिणी के उदर से प्रद्युम्न का जन्म होता है, रति के साथ उसका विवाह होता है, रति के उदर से अनिरुद्ध का जन्म होता है और उषा के साथ उसका विवाह होता है।

कृष्ण—कृष्ण आदर्श प्रेमी और साहसी वीर है। उनमे वीरोपयुक्त शिष्टाचार और विनय है। ब्राह्मण को आता देखकर वे दूर से उठ खडे होते है और उसकी वंदना करते है। आतिथ्य-सत्कार करने के अनतर उसका परिचय और आने का उद्देश्य पूछते है। रुक्मिणी का पत्र पाकर आनदजनित सात्विक भाव उमड़ पडते है। पत्र का आशय जान कर तुरंत ही कार्य करते है। सेना को साथ लेने में विलंब होगा यह समझ कर अकेले ही केवल पथ-दर्शक और सारथी को लेकर चल देते है।

सेना से घिरे हुए मदिर के द्वार पर रथ को लेकर पहुँच जाने और सेना के बीच से रुक्मिणी का हरण करने मे उनने अपनी बुद्धि, अपने साहस और अपनी क्षिप्रता के साथ कार्य करने की शक्ति का अद्भुत परिचय दिया। चोर की तरह छिपकर नही भागे, जाते समय पुकार कर कह गये—कृष्ण रुक्मिणी को

[1] फारसी काव्यो मे और लौकिक काव्यों और लोक-गीतो में सौन्दर्य के दर्शन से मूर्च्छित या अचेत हो जाने का बराबर वर्णन मिलता है। पद्मावत मे पद्मिनी के रूप को देख कर रतनसेन, राघवचेतन और अलाउद्दीन के संज्ञा-हीन हो जाने का वर्णन है।

हर कर लिये जाता है, यदि उसका कोई वर (=वरने का इच्छुक) हो, तो उसे छुड़ाने को आ जावे !

जब पीछा करती हुई शिशुपाल की सेना निकट पहुंच जाती है तो वे भी युद्ध के लिए मुड़ पड़ते हैं। वे कुछ समय तक स्वयं युद्ध मे भाग लेते है। फिर शिशुपाल और उसके साथियो को बलराम के लिए छोड़कर आगे बढ़ते हैं कि रुक्मकुमार सामने मार्ग रोके मिलता है। उसकी ललकार से वे क्रुद्ध हो उठते है, धनुष पर बाण चढ़ा लेते है पर छोड़ते नही। रुक्मिणी पास बैठी है, उसके भाई को बाण का लक्ष्य कैसे बनाया जाय ? प्रिया के हृदय की बात वे बिना बताये जान लेते है। वे केवल रुक्मकुमार के चलाये आयुधो को व्यर्थ करते जाते है। अन्त मे रुक्मकुमार को पकड़ लेते है और उसके केश उतारकर उसे विरूप कर देते है। शास्त्रों में कहा है—वपनं श्मश्रु-केशानां वैरूप्यं सुहृदो वधः अर्थात् दाढी-मूंछ और सिर के केशो को मूंड कर विरूप कर देना ही सुहृज्जन का वध करना है।

इसके बाद कृष्ण को हम रगमहल मे नव-परिणीत वर के रूप मे देखते है। नव-वधू के दर्शन के लिए वे अत्यन्त उत्कठित है। बड़ी कठिनता से दिन बीतकर संध्या होती है। रुक्मिणी के आने का समय जानकर वे अधीर हो जाते है। शय्या से द्वार तक और द्वार से शय्या तक बारबार आते-जाते है। कभी कान लगाकर आहट को सुनते हैं। प्रिया के मिलने पर

बारबार तिम करइ बिलोकन
धण-मुख, जेही रंक धण

प्रिया के साथ बीतती हुई रात उनको ऐसी अप्रिय जान पड़ती है जैसी जीवन से मोह रखने वाले को बीतता हुआ जीवन।

इसके पश्चात् दम्पति के ऋतु-विहार और पारिवारिक समृद्धि का वर्णन है। अन्त मे कृष्ण को हम आदर्श गृहस्थ के रूप में देखते है—क्रोध, निंदा, हिंसा, नशा और दुर्वचन को उनने अस्पृश्यो की भांति सर्वथा दूर कर दिया है।

रुक्मकुमार—रुक्मकुमार रुक्मिणी का बड़ा भाई है। वह कृष्ण का द्वेषी, अभिमानी, क्रोधी, अविनीत और माता-पिता की अवज्ञा करने वाला है। सोची हुई बात को तुरंत कार्य-रूप में परिणत करता है। शिशुपाल को रुक्मिणी का वर मनोनीत करके वह उसे तुरन्त बुला भी लेता है।

इसके पश्चात् हम उसे रुक्मिणी-हरण के पश्चात् देखते है। शिशुपाल को पराजित देखकर वह तुरन्त कृष्ण का पीछा करता है और एक तिरछे मार्ग से चलकर रास्ता रोककर खड़ा हो जाता है और कृष्ण को ललकारता है, पर पराजित होता है।

(४) **बलराम**—वलराम कृष्ण के वडे भाई है। साहस और वीरता मे वे कृष्ण के उपयुक्त भ्राता है। वडे भाई के उपयुक्त अनुज-प्रेम, समझदारी और गंभीरता भी उनमे है। कृष्ण को गया सुनकर तुरन्त ही पीछे चल पड़ते है। आगे युद्ध निश्चित रूप से होगा इसलिए सेना को साथ ले जाना आवश्यक था। लंबी-चौडी सेना तैयार करने और ले जाने दोनो मे देरी होती, अतः उन्होंने चुने हुए सुभटों को ही लिया। शीघ्रता ऐसी की कि पीछे रवाना होने पर भी कुदनपुर मे दोनों साथ-साथ पहुँचे।

युद्ध मे वलराम ने प्रमुख भाग लिया। जब कृष्ण ने रुक्मकुमार को विरूप कर दिया तो उन्हें यह कार्य अच्छा नही लगा। उनने प्रेम-भरे शव्दों में कृष्ण को उपालंभ दिया।

ब्राह्मण—रुक्मिणी का सदेशवाहक ब्राह्मण वृद्ध था। उसने कार्य का भार ले तो लिया पर उसके गुरुत्व को देखकर चिता भी हुई। नगर के बाहर निकलते ही संध्या हो गयी। चिंता करता-करता ही सो गया। पर भगवान ने उसे सोते-सोते ही द्वारका पहुँचा दिया। जव उसे ज्ञात हुआ कि द्वारका में आ गया है, तो हर्ष हुआ और साहस भी। आगे का कार्य उसने बडे उत्साह के साथ किया। लौटने पर कृष्ण के आने का समाचार भी वडी चतुरता से रुक्मिणी को दिया।

वर्णन

वेलि वर्णन-प्रधान काव्य है। उसका अधिकांश भाग वर्णनों से घिरा हुआ है। एक ऋतुवर्णन ही काव्य का चौथाई से भी अधिक स्थान घेरे हुए है। निम्नलिखित वर्णन उसमे आये है—

(१) रुक्मिणी की बाल्यावस्था, वयःसंधि और यौवनागम का तथा यौवनागम के साथ नखशिख का वर्णन।

(२) कुन्दनपुर की सजावट और शिशुपाल की वरात के स्वागत का वर्णन।

(३) रात पडने का वर्णन।

(४) द्वारका का वर्णन।

(५) कृष्ण के कुन्दनपुर आने का और उनके स्वागत का वर्णन।

(६) रुक्मिणी के शृंगार का वर्णन।

(७) रुक्मिणी की रक्षक सेना का वर्णन।

(८) कृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण का वर्णन।

(९) शिशुपाल की सेना के पीछा करने का वर्णन।

(१०) युद्ध-वर्णन।

(११) द्वारकावासियों द्वारा कृष्ण के स्वागत का वर्णन।

(१२) विवाह का वर्णन
(१३) वर-वधू के मिलन का वर्णन
(१४) रात्र्यन्त तथा प्रभात का वर्णन
(१५) ऋतु-वर्णन

वर्णनों मे कवि ने सादृश्यमूलक अलकारो का यथेष्ट प्रयोग किया है, विशेषतः रूप-वर्णन और दृश्य-चित्रण के लिए। उपमानो की योजना मे सादृश्य का ही नही, साधर्म्य का भी बराबर ध्यान रखा गया है। वे रूप, गुण और क्रिया का तीव्रता के साथ अनुभव तो कराते ही है, पर साथ-साथ भावानुरूप भी है—उसी भाव की व्यजना करते है जिसकी कवि कराना चाहता है। कवि पिटी-पिटायी लीक पर नही चला है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत—वर्ण्य और उपमान—दोनो मे नवीनता और एक मनोहर ताजगी है।

युद्ध-वर्णन रूपक-प्रधान है, फिर भी उपमान लोक-जीवन मे लिये हुए होने के कारण वर्णन रूखा नही होने पाया है।

वेलि का ऋतु-वर्णन उद्दीपन के रूप मे, रुक्मिणी और कृष्ण के विहार की पृष्ठभूमि के रूप मे, हुआ हे पर कथा की सक्षिप्तता के कारण उसका उद्दीपन रूप छिप गया है।

ऋतु-वर्णन का आरम्भ ग्रीष्म ऋतु से हुआ है। महाकवि कालिदास के ऋतुसहार और हिन्दी के कविवर सेनापति के कवित्त-रत्नाकर मे भी ग्रीष्म ऋतु से ही आरम्भ किया गया है। वसत का वर्णन कवि ने बहुत विस्तार से किया है। वसत ऋतुओं का राजा कहा गया है, अत. उसका वर्णन विस्तार मे होना ही चाहिए। वसत-वर्णन मे कवि ने तीन साग रूपक बाधे है। प्रथम मे वसन्त-रूपी बालक के जन्म का चित्रण है—माता वनस्पति पुत्र वसत को जन्म देती है जो धीरे-धीरे बढकर युवावस्था को प्राप्त होता है। उसमे पुत्र-जन्मोत्सव से सम्बन्धित विविध रीतियो (ceremonies) का सुन्दर वर्णन हुआ है। दूसरा रूपक वसत और राजा का है जिसमे ऋतुराज वसत, उसके परिग्रह, उसके राजदरबार, उसकी महफिल, और उसके न्यायपूर्ण शासन का चित्रण है। तीसरे रूपक मे दक्षिण दिशा से उत्तर दिशा की ओर आते हुए मलय-पवन को 'सापराध पति' बनाकर उसके शीतल, मन्द और सुगन्ध गुणो की व्याख्या की गयी है।

ऋतु-वर्णन परपरा-भुक्त नही है। कवि ने जीवन को देखा है और अपने अनुभवो से काम लिया हे। स्थान-स्थान पर राजस्थान का स्थानिक रग (local colour) भी दृष्टिगोचर होता है—

कातिग घरि-घरि द्वारि कुमारी
थिर चीत्रति चीत्राम थयी।

श्री मोतीलाल मेनारिया लिखते है—

'वेलि का प्रकृति-वर्णन डिंगल साहित्य को पृथ्वीराज की अपनी एक अपूर्व देन है। यह प्रकृति-वर्णन षट्-ऋतु-वर्णन के रूपमे है, लेकिन परपरानुगत और पिष्टपेषित नही, अपनी नवीनता और मौलिकता को लिये हुए है। रात्रि, प्रभात, ग्रीष्म, वर्षा, वसत आदि के मनोरम दृश्य एक-के-बाद-एक इस प्रकार अकित किये गये है कि देखकर मन रसमग्न हो जाता है। ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो पाठक कोई ग्रथ नही पढ रहा है, बल्कि एक ऐसा चलचित्र देख रहा है जिसमे रग और प्रकाश दोनो का अनुकूल सामजस्य है। इस प्रकृति-वर्णन की दो बहुत बडी विशेषताएं है पर्यवेक्षण की सूक्ष्मता और वातावरण की तीव्रता। कवि ने राजस्थान की ऋतु-परिवर्तन-सम्बन्धी विभिन्न विशेषताओ को बडी बारीक निगाह से देखा है और देखकर उन्हे हूबहू शब्दो मे उतारने की सफल चेष्टा की है। ग्रीष्म-ऋतु के वर्णन में राजस्थान की प्रचडता तथा लू का, और वर्षा-ऋतु के वर्णन मे आकाश मे जल्दी-जल्दी इधर-उधर दौडते हुए बादलो एवं वर्षा की झडी का. वर्णन इस दृष्टि से विशेष करके दर्शनीय है। पढते-पढते राजस्थान की धरती का चित्र सामने आ जाता है। कवि के शब्दो ने तूलिका की भाति चित्र खीचे है। ....ऐसा सुन्दर, स्वाभाविक और सुरम्य प्रकृति-चित्रण तो सस्कृत के महाकवियो से ही बना है। इसमें कवि की भाव-तल्लीनता, चित्रकार का चित्र-कौशल, और वैज्ञानिक की सूक्ष्म दृष्टि सन्निहित है।'

श्री तैसीतोरी कहते है—

Then with great ability Prithi Raja draws a discreet curtain before the thalamus of the two lovers and, leading us outside into the dark light, makes us watch the breaking of the day; and then in succession the passing of the six seasons of the Indian year, the summer, the rainy season, the autumn, the winter, the *sisira*, and lastly the spring It is like a succession of magic-lantern pictures on a wall, each stanza is a quadrate in itself worked to perfection with that elegance in which Indian poets of the seasons succeed so well.

रस-व्यंजना

वेलि का प्रधान रस संयोग-शृगार है। दूसरा स्थान वीर रस का है जिसके साथ वीभत्स भी आया है। शृगार के साथ वीर का वर्णन लौकिक प्रेम-काव्यो की परपरा रही है। साहित्य-शास्त्र मे भी वीर शृगार का मित्र कहा गया है। वीभत्स की अवतारणा वीर को बीच मे रखकर की गयी है। अन्य रसो मे रौद्र, भयानक, अद्भुत, करुण और वात्सल्य की झाकिया मात्र है।

आरम्भ और अन्त मे भक्ति भाव की व्यंजना हुई है जिसे प्राय: शान्त रस के अन्तर्गत समझा जाता है।

रुक्मिणी का प्रेम लौकिक प्रेम-कथाओ की पद्धति का है जिसमें रूप, गुण आदि के श्रवण से ही प्रेम उत्पन्न हो जाता है। नल-दमयंती का, और जायसी के पदमावत काव्य मे रतनसेन का, प्रेम इसी प्रकार का है।

वेलि के वर्णन-प्रधान काव्य होने और कथा के अत्यन्त सक्षिप्त होने के कारण भावो की व्यजना के लिए विशेप अवकाश नहीं। फिर भी कई-एक भावो की बडी सुकुमार व्यंजना हुई है।

वेलि में रस-विरोध दोष

वेलि के हिन्दुस्तानी एकेडेमी सस्करण के सम्पादक श्री सूर्यकरण पारीक ने वेलि मे रस-विरोध दोष पाया है। वे लिखते है—

'दोहला ११३-१३७ मे वीर-रस-प्रधान युद्ध वर्णन है।···· ···वीर रस के आदर्श को दृष्टिगत रखते हुए इन वर्णनो की आलोचनात्मक प्रशसा करना सूर्य को दीपक दिखाना होगा।··· · ·······परन्तु साथ ही निस्सकोच होकर हमको यह कहना पडता है कि 'वेलि' जैसे शृंगार-रस-प्रधान ग्रंथ मे इस प्रकार विशद और व्यक्त रूप से सागोपाग भयानक, वीर एव तदनुगत वीभत्स रस (देखो दोहला १२०-१२५) के दृश्यो का समावेश करना काव्य के एक-रसत्व (unity) और उसके 'रस-भाव-निरतरम्' के निर्वाह के विपय मे सदेह अवश्य उपस्थित करता है।" (पृष्ठ ७६-७७-७८)

'ध्वनिकार ने 'वीर-शृंगारयो:,' 'रौद्र-शृंगारयो.' का अविरोध माना है, क्योकि उनका अगागि-भाव सघटित होना सभव है। तत्र भवत्वंगागिभाव। परन्तु उन्होने 'शृंगार-वीभत्सयो' का वाध्य-वाधक-भाव माना है अर्थात् शृंगार और वीभत्स का अगागि-भाव सघटित नही होता।' (पृष्ठ ८१)

'परन्तु दोहला १२०, १२१, १२२, १२३, १२४, १२५ तथा १२८ मे पहुँचकर यही वीर रस क्रमश रौद्र और वीभत्स पदवी पर आरूढ़ हो जाता है और पाठक के हृदय मे आशिक-रूप मे अगि-रस अर्थात् शृंगार रस का अननुसंधान होने लगता है जिसको काव्य-प्रकाशकार ने रस-दोष का एक भेद माना है। निस्सदेह वेलि जैसे उच्चकोटि के शृंगार-ग्रथ मे परनाळै जळ रुहिर पडै (१२०)··· · ·· ··इत्यादि जुगुप्साजनक वीभत्स वर्णन पर असगतता और अनौचित्य का दोष आरोपित हो सकता है।' (पृष्ठ ८४-८५)

'हमारी समझ मे उपरोक्त पाच-छै दोहलो मे वर्णित वीभत्स-वर्णन शृंगार-प्रधान वेलि के लिए अनुचित है। इसी वात के प्रमाण मे हमने पहले 'यस्मिन् श्रुते च चित्तस्य वैरस्य, न च हृद्यता, तानि वर्ज्यानि पद्यानि' का उल्लेख किया था।' (पृष्ठ ८८)

'वेलि जैसे रति-भाव-प्रधान खण्डकाव्य मे एक ही सर्ग मे विरोधी भाव यथा युद्ध भयंकरता वीभत्सादि का समावेश कर देना रस के नैरन्तर्य—उसकी एक-रसता एवं रस-सौष्ठव—को विक्षिप्त अवश्य करता है । अतः यदि किसी भी अंग में 'वेलि' के खण्डकाव्यत्व होने मे दोष आता है, तो वह छंद ११३-१३७ पर्यन्त, जिसका कारण रस-विरोध दोप हो सकता है । वेलि-रूपी पूर्णचन्द्र की अपूर्व यशश्छटा मे यह अश कलक-कालिमा की तरह है।…'(पृष्ठ १०८)

विचार करने पर पारीकजी के आक्षेप उचित नही जान पड़ते ।

शास्त्र मे शृंगार और वीर का विरोध कहा गया है पर तभी जबकि दोनो का आलंबन एक ही हो । आलंबन भिन्न होने पर दोनो मे कोई विरोध नही । प्रस्तुत प्रसंग में शृंगार का आलंबन रुक्मिणी तथा वीर का आलबन शत्रु-सेना है । अतः दोनो के विरोध का तो यहाॅ कोई प्रश्न ही नही उठता ।

साधारणतया शृंगार और वीर मित्र-रस माने जाते है। रसगगाधर के कर्त्ता जगन्नाथ कहते है—

तत्र वीर-शृंगारयोः, शृंगार-हास्ययोर्, वीराद्भुतयोः, वीर-रौद्रयोः, शृंगाराद्भुतयोश् च, अविरोधः ।

शृंगार के साथ वीर रस का वर्णन न शास्त्रीय साहित्य के लिए नयी बात है और न लोक-साहित्य के लिए । रामायण, महाभारत, रघुवश, किरातार्जुनीय, शिशुपाल-वध, पृथ्वीराज-रासो, रुक्मिणी-मगल, रामचरितमानस, रामचन्द्रिका, साकेत, कामायनी आदि प्रमुख काव्य-कृतियो मे दोनों का एकत्र वर्णन मिलता है । शृंगार रस के नायक का वीरत्व उसके उत्कर्ष-साधन मे सहायक होता है ।

अब रहा शृंगार और वीभत्स का विरोध । दोनो रसो के विरोध को सभी साहित्य-शास्त्रियो ने स्वीकार किया है, पर साथ मे वे यह भी कहते है कि दोनो मे विरोध तभी होता है जब दोनों का निरन्तर—ठीक एक-के-बाद दूसरे का—वर्णन किया जाय । यदि दोनों के बीच में कोई तीसरा रस, जो दोनो का अविरोधी हो, डाल दिया जाय तो फिर विरोध नही रह जाता । प्रस्तुत प्रसंग मे शृंगार और वीभत्स के वीच मे वीर-रस दिया गया है जो दोनो का मित्र (या कम-से-कम अविरोधी) है ।

पारीकजी कहते है कि इस प्रकार विरोध का परिहार वडे-बड़े महाकाव्यो मे ही किया जा सकता है—'महाकाव्य मे अनेक सर्ग होते है जो उपयुक्त संधियो द्वारा अन्योन्याश्रित होते हुए भी स्वतन्त्र होते है और 'भिन्नावृत्तान्तोपेत' होने के कारण उनके पृथक्-पृथक् सर्गो मे भिन्न-भिन्न रसो की प्रधानता इतनी नही अखरती जितना कि एक खंड-काव्य मे अनेक रसों का मिश्रण अथवा रस-संकर अखरता है । शास्त्रकार ने युद्ध, विप्रलंभादि वृत्तों के वर्णनों को शृंगार-प्रधान महाकाव्य मे सम्मिलित कर लेने की आज्ञा देकर रस-विरोध की आशका

इस आधार पर नही की कि चतुर कवि महाकाव्य के वृहत् आकार एव उसके सर्गो की व्याप्ति के अवकाश को पाकर काव्य के रस-भाव-निरन्तरम् गुण को नष्ट न होने देगा।'

उनका यह कथन भी उचित नही।

काव्यप्रकाश-कार मम्मट कहते है—न पर प्रवधे यावद् एकस्मिन्नपि वाक्ये रसान्तर-व्यवधिना विरोधो निवर्तते अर्थात् न केवल प्रवध मे किन्तु एक वाक्य मे भी बीच में दूसरा रस डाल देने से विरोध नष्ट हो जाता है।

इसी बात को काव्यानुशासन-कर्त्ता हेमचन्द्र दुहराते है—न केवल प्रवंधे यावद् एकस्मिन्नपि वाक्ये रसान्तर-व्यवधानेन विरोधो निवर्तते।[1]

कविराज जगन्नाथ ने एक वाक्य का निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

सुराङ्गनाभिराश्लिष्टा व्योम्नि वीरा विमान-गाः।
विलोकन्ते निजान् देहान् फेरु-नारीभिरावृतम्॥[2]

इस उदाहरण मे शृगार रस और वीभत्स रस के बीच मे वीर रस को देकर दोनो के विरोध का परिहार कर दिया गया है। वेलि के प्रस्तुत प्रसंग मे भी इसी प्रकार विरोध का परिहार हुआ है।

पृथ्वीराज-रासो मे एक ही सर्ग मे शृगार, वीर और वीभत्स का वर्णन न-जाने कितनी बार हुआ है। चारणी काव्य मे वीर और वीभत्स के साथ शृगार के मिश्रण की परम्परा ही वन गयी थी। छोटे-छोटे गीतो तक मे यह बात मिलती है।

एक बात और। नीचे लिखी अवस्थाओ मे भी विरोधी रसो का साथ-साथ वर्णन हो सकता है—

(१) जब कोई रस अपने विरोधी रस का अंग बनकर आवे।

(२) जब दो परस्पर-विरोधी रस किसी तीसरे रस के अग हो।

वेलि के प्रस्तुत प्रसग मे वर्णित वीर और वीभत्स रस प्रधान रस शृगार के अग होकर ही आये है अतः उनके वर्णन मे रस-विरोध की आशका उचित नही।

अव दूसरा आरोप लीजिये। पारीक जी कहते है कि वीर रस के विशद वर्णन से अगी रस शृगार का अननुसधान हो जाता है जिससे काव्य के

[1] मम्मट और हेमचन्द्र दोनो ने तीन श्लोको के कुलक का एक उदाहरण भी दिया है जिसमे वीभत्स और शृगार के बीच मे वीर रस का सन्निवेश किया गया है।

[2] **सुरनारिन सँग गगन मे वीर विराजि विमान।**
निरखत स्यारिन सों घिरे अपुने देह महान॥

एक-रसत्व की हानि होती है और अंगी का अननुसंधान नामक दोष उत्पन्न होता है।

अंगी का अर्थ टीकाकारो ने प्रधान अर्थात् प्रधान व्यक्ति या नायक-नायिका का किया है।[१] जगन्नाथ कविराज कहते हैं—

रसालंबनाश्रययोरनुसंधानम् अन्तरान्तरा, न चेद् दोष·।

अर्थात् रस के आलंबन और आश्रय का बीच-बीच मे अनुसंधान होना चाहिए, यदि न हो तो दोष है।

रस के प्रधान पात्र का बीच-बीच मे अनुसधान—स्मरण— होना आवश्यक है, इसमे संदेह नही क्योकि, जैसा कि कविराज कहते है, रस के अनुभव की धारा आलबन और आश्रय के अनुसधान के ही अधीन है, यदि उसका अनुसंधान न हो तो वह निवृत्त हो जाती है। पर इसका यह अभिप्राय नही कि वह प्रत्येक पद्य मे होता रहे। वेलि के प्रस्तुत प्रसंग मे पद्य न. ११२ मे नायिका का उल्लेख है ही, पद्य न. ११४ मे भी उसका सकेत है, फिर पद्य १३२ मे वह पुनः आ जाती है। बीच मे कोई २०-२२ पद्य युद्ध-वर्णन के है। उनमे नायिका का नाम नही आया तो वह कोई ऐसा विस्मरण नही हुआ।

'अंगी का अननुसधान' मे अगी का अर्थ पारीकजी ने अगी रस (शृगार) का लिया है। इस दृष्टि से भी देखा जाय तो २३ पद्यो मे किये गये युद्ध-वर्णन को वीर रस का अनावश्यक विस्तार नही कहा जा सकता। इन २३ पद्यो मे युद्ध की तैयारी, युद्ध और युद्ध का अन्त, सब कुछ आ जाते है। यह बात ध्यान मे रखने की है कि यह युद्धवर्णन अगी या मुख्य विषय रुक्मिणी-हरण के साथ घनिष्ठ रूप से सबद्ध है, उसके बिना रुक्मिणी-हरण का प्रसग

१ (क) अंगिनोऽननुसन्धानन्। यथा रत्नावल्या चतुर्थे अके बाभ्रव्यागमने सागरिकाया विस्मृतिः। (काव्यप्रकाश, उल्लास ७)

अंगिन इति। अगिनः प्रधानस्य नायकस्य नायिकाया वा अननुसन्धानम् अ-परामर्शो विस्मरणम् इत्यर्थः। (झळकीकर वामनाचार्य कृत टीका)

(ख) अग्यननुसन्धान (Ignoring the principal factor—the hero or the heroine)—Short Analysis of Kavya Prakasa by Amareswar Thakur.

(ग) अगी का अननुसन्धान (प्रधान व्यक्ति को विस्मृत कर देना)—अवान्तर घटनाओ के द्वारा मुख्य कथावस्तु की पुष्टि सर्वथा ग्राह्य होती है। परन्तु कभी-कभी इन घटनाओ की इतनी प्रधानता हो जाती है कि प्रधान नायक विस्मृति के गर्भ मे चला जाता है। जैसे रत्नावली नाटिका के चतुर्थ अंक मे बाभ्रव्य के आगमन के वर्णन मे कवि इतना आसक्त हो जाता है कि वह नाटक की नायिका सागरिका को ही भूल जाता है। (बलदेव उपाध्याय · भारतीय साहित्यशास्त्र, भाग २, पृष्ठ ६७)

ही अधूरा रह जाता है। अत्यन्त आवश्यक होने से ही कवि ने उसका वर्णन किया है। अन्यान्य वर्णनो की भाति कवि ने उसको अधिक विस्तार दिया भी नही। शिशुपाल का युद्ध ११ पद्यो मे है और रुक्मी का केवल ५ पद्यों मे। इस वीर रस के अवतारण से अगी रस शृगार का पोषण ही हुआ है; काव्य के एक-रसत्व को इससे कोई बाधा नही पहुँचती। एक-रसत्व का अर्थ यही है कि एक प्रधान रस हो और बाकी रस अग बनकर आवे, यह नही कि बाकी रस आवे ही नही।

कला

वेलि एक कलापूर्ण कृति है। कवि कारीगर था और एक कारीगर की भाति उसने अपनी कृति को सजाया है। उपयुक्त शब्दावली, नाद-सौन्दर्य, अलकार आदि का उसने बराबर ध्यान रखा है। यह सब होते हुए भी काव्य मे किसी प्रकार की अस्वाभाविकता लक्षित नहीं होती। स्वाभाविकता और सजावट का यह सुन्दर सामजस्य कवि की महान् प्रतिभा का परिचायक है।

श्री तैसीतोरी लिखते है—The great merit of the poem is in the combination of a delightful genuineness and naturalness of expression with the most rigorous elaborateness of style. Apart from the contents, it is, as regards form, like Horace in Dingala. All the Procrustean rules of Dingala poetry are observed to the largest possible extent and yet the language is not distorted, but runs as natural and easy as it would probably have been if the poet had refused to walk with the shackles of the internal rhymes and of the *venasagai*; only more elegant, more exquisite, more musical. Indeed the musicality of the verses is such that nothing could more conspicuously prove the error of them who hold that Dingala is too harsh for erotical or idyllic subjects and is fit only for heroic themes.

भाषा

वेलि की भाषा विशुद्ध डिंगल है। उसमे माधुर्य के साथ बल, उल्लास और तेज है। भाषा पर कवि का अद्भुत अधिकार है। शब्दावली मानो उसकी जिह्वा पर खेलती है। अवसर के उपयुक्त शब्द आवश्यकता होते ही तुरन्त आ उपस्थित होता है। शब्दालकारो के प्रचुर प्रयोग के होते हुए भी भाषा का प्रवाह सर्वत्र सजीव और अनवरुद्ध है।

शब्द-चयन बडी मार्मिकता के साथ हुआ है। शब्दावली की सबसे बडी

विशेपता है उसकी ध्वन्यात्मकता (suggestiveness)। शब्द अपने अभिधेय (अथवा लाक्षणिक) अर्थ के साथ-साथ न जाने कितने भावों को एक ही साथ सूचित कर जाता है।

दृश्य-वर्णनों में शब्दो का चुनाव ऐसी खूबी से हुआ है कि शब्दो की ध्वनि से ही भावना का चित्र साकार हो जाता है। उदाहरण के लिए ये पद्य लीजिये—

काळी करि कांठळि ऊजळि कोरण
धारे स्रावण धरहरिया
गळि चालिया दसो दिसि जळग्रभ
थंभि न, विरहणि-नयण थिया
वरसतइ दड़ड़ नड़ अनड़ वाजिया
सघण गाजियउ गुहिर सदि
जळनिधि ही सामाइ नहीं जळ
जळ-वाळा न समाइ जळदि
कळकळिया कुन्त किरणि कळि ऊकळि
वरसत विसिख विवरजित वाउ
धड़ि-धड़ि धड़कि धार धारू-जळ
सिहरि-सिहरि समरवइ सिळाउ

भापा के नाद-सौन्दर्य और स्वच्छद प्रवाह को इन पक्तियो मे देखिये—

(१) वहु विलखी वीछड़तइ वाळा वाळ-सँघाती वाळपण।

(२) तेज कि रतन कि तार कि तारा हरि हँस सावक ससहर हीर।

(३) सकिसळ सवळ सदळ सिरि सामळ पुहप-वूद लागी पड़ण।

निम्नलिखित पंक्ति मे पवन के मन्द गति से, रुक-रुककर, चलने का वर्णन है। उसकी वर्ण-योजना भी ऐसी है कि पढते समय वीच-वीच मे रुकना पड़ता है—

मधु-मद स्त्रवति मंद गति मल्हपति मदोमत्त मारुत मातंग।

रुक्मिणी को सखिया कृष्ण के पास ले जा रही है। रुक्मिणी लाज के कारण रुक-रुक कर चलती है—

लाज लोह लंगरे लगाये गय जिमि आणी गय-गमणि।

पंक्ति के पूर्वार्ध में ठहर-ठहर कर दीर्घ वर्णो का प्रयोग किया गया है जिससे जिह्वा को वीच-वीच मे रुकते हुए चलना पड़ता है।

अलंकार

वेलि रीति-भुक्त रचना है। उसमें अलंकारों का प्रचुर प्रयोग हुआ है—शव्दालंकारों का भी और अर्थालंकारों का भी। ऐसे पद्यों की सख्या कम नही

जिनमें एक साथ चार-चार पाँच-पाँच अलंकार आये हैं। परन्तु ये अलंकार सर्वत्र स्वाभाविक रूप मे आये है, कही पर भी प्रयत्न-प्रसून नही जान पडते। दो-एक वड़े साग रूपक कवि ने वाधे है, वे अवश्य ही प्रयत्न-प्रसूत है पर उनमे भी अस्वाभाविकता अथवा कृत्रिमता के दर्शन नही होते। अलकारों ने भाव को कही पर भी आच्छादित नही किया है।

शव्दालंकारो का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे हुआ है। डिगल काव्य-शास्त्र के नियमानुसार वैणसगाई तो प्रत्येक चरण में अनिवार्य ही ठहरी। वृत्यनुप्रास, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश तथा यमक भी स्थान-स्थान पर दृष्टि-गोचर होते हैं। वृत्यनुप्रास से तो कोई पद्य खाली नही। छेकानुप्रास से रहित पद्यो की गिनती भी उँगलियो पर की जा सकती है।

कवि का भाषा पर अपूर्व अधिकार है। वह उसको चाहे जिस प्रकार सहज ही मोड़ सकता है। शव्द मानो उसकी जिह्वा पर खेलते है जो आवश्यकता होते ही तुरन्त उपस्थित हो जाते हैं। शव्दालंकारो की इतनी प्रचुरता मे भाषा के माधुर्य को और उसके स्वाभाविक प्रवाह को वनाये रखना पृथ्वीराज का ही काम था। हिन्दी के कवियों मे देव मे यह गुण पाया जाता है पर पृथ्वीराज की और देव की कोई वरावरी नही। देव को अनेक स्थानों पर शव्दो को विकृत करना पड़ा है, भाव की वलि भी अनेक वार देनी पड़ी है।

वैणसगाई

डिंगल कविता की एक प्रमुख विशेषता वैणसगाई है। चारणो ने वैणसगाई को कविता के लिए अनिवार्य वना दिया; चाहे जो हो, वैणसगाई का निर्वाह होना ही चाहिए। ससार की शायद ही किसी भाषा मे किसी अलंकार का निर्वाह इतनी कठोरता के साथ किया गया हो। पीढियो के दीर्घ अभ्यास से चारण जाति के लिए वैणसगाई का निर्वाह इतना दुष्कर नही रह गया था। पर पृथ्वीराज को यह पैत्रिक दाय प्राप्त न था। फिर भी उनकी रचना मे वैण-सगाई का पूर्ण निर्वाह हुआ है और सुन्दर और स्वाभाविक रूप मे हुआ है। आद्योपान्त ऐसी स्वाभाविकता तो चारणो की रचनाओं मे भी दृष्टिगत नही होती।[1]

[1] वैणसगाई का पूर्ण निर्वाह कितना दुष्कर कार्य है यह इसी वात से ज्ञात हो जायगा कि सूर्यमल्ल मिस्रण जैसा महाकवि भी, जो चारण कवियो मे सवसे अधिक प्रसिद्ध है और जिसको चारण एक स्वर से सर्वश्रेष्ठ कवि घोषित करते है, वीर-सतसई में उसका पूर्ण निर्वाह न कर सका और उसे घोषित करना पड़ा—

> **वैणसगाई वाळियां पेखीजै रस-पोस**
> **वीर-हुतासण-वोळ-में दीसै हेक न दोस**

वैणसगाई (जिसे वरणसगाई भी कहा जाता है और यह नाम अधिक उपयुक्त है) का अर्थ है वर्ण द्वारा स्थापित शब्दो की सगाई या संबंध। इसमें चरण के प्रथम शब्द के आदि वर्ण को चरण के अन्तिम शब्द के आदि मे पुनः लाकर दोनों में संबंध स्थापित किया जाता है। इस प्रकार वैणसगाई अलंकार में चरण के प्रथम शब्द का और चरण के अन्तिम शब्द का आरम्भ एक ही वर्ण से होता है। जैसे—

कमळा-पति तणी कहेवा कीरति
आदर करे जु आदरी
जाणे वाद मांडियउ जोपण
वाग-हीणि वागेसरी

इस पद्य के प्रथम चरण मे प्रथम और अन्तिम दोनो शब्द क से आरम्भ होते है; दूसरे चरण मे आ से, तीसरे चरण मे **ज** से, और चौथे चरण मे **व** से।

वैणसगाई के प्रकार—

वैणसगाई साधारणतया चरण के प्रथम और अंतिम शब्दो की होती है पर कभी-कभी अन्यान्य शब्दो की भी होती है। इस दृष्टि से वैणसगाई के दो भेद होते है—(१) साधारण और (२) असाधारण।

(१) साधारण वैणसगाई वह होती है जिसमे चरण के प्रथम शब्द की चरण के अन्तिम शब्द के साथ सगाई हो।

(२) असाधारण वैणसगाई वह होती है जिसमे (१) चरण के प्रथम शब्द की चरण के **उपान्त्य** शब्द के साथ, अथवा (२) चरण के **द्वितीय** शब्द की चरण के अन्तिम शब्द के साथ, सगाई हो।

उदाहरण

साधारण— (१) लिखमी आप नमे पाइ लागी
(२) राज दूरि द्वारिका विराजउ
(३) गाव्रण गुणनिधि हूँ निगुण

असाधारण—(१) नवइ विहाणइ नव्री परि
(२) दस मास समापति गरभ दीध रिति
(३) अंगणि जळ तिरप उरप अलि पीयति
(४) तिणि आप ही करायउ आदर
(५) किरि वइकुठ अजोध्या-वासी

अर्थात् वैणसगाई का उद्देश्य रस का पोषण करना और काव्य-दोष-जनित दोष को दूर करना है पर वीर रस की ज्वाला जलने पर उसमे सारे दोष स्वतः अदृश्य हो जाते है अतः मेरे इस वीर-रस-पूर्ण काव्य में वैणसगाई की आवश्यकता नही।

वैणसगाई कभी एक ही वर्ण द्वारा और कभी दो मित्र वर्णो के द्वारा स्थापित की जाती है। इस दृष्टि से वैणसगाई के उत्तम, मध्यम और अधम (अधिक, सम और न्यून) ये तीन भेद होते है।

(१) उत्तम या अधिक—जब सगाई उसी वर्ण के द्वारा हो।

(२) मध्यम या सम और अधम या न्यून—जब सगाई उसी वर्ण के द्वारा न होकर दो मित्र वर्णो के द्वारा हो।

मित्र वर्ण इस प्रकार है—

(१) असमान स्वर परस्पर मित्र होते है।

(२) अर्धस्वर (य,व) परस्पर मित्र होते है।

(३) सब स्वर और सब अर्धस्वर परस्पर मित्र होते है।

(४) ब और व परस्पर मित्र है।

(५) अल्पप्राण वर्ण अपने समयोगी महाप्राण वर्ण का मित्र होता है।

(६) तवर्ग का वर्ण टवर्ग के समयोगी वर्ण का मित्र होता है।

प्रथम तीन की, अर्थात् मित्र स्वरो और अर्धस्वरो की सगाई मध्यम, तथा अंतिम तीन की, अर्थात् मित्र व्यंजनो की, सगाई अधम मानी गयी है।

उदाहरण

उत्तम— (१) आनन आगळि आदरिस
(२) आगळि रितुराइ मंडियउ अवसर
(३) चातिग रटइ बळाकी चंचळ

मध्यम—(१) इतरइ एक आली ले आवी
(२) वाजइ तूर अनन्त
(३) अकबर कीना याद

अधम— (१) दरपक कदर्प काम कुसुमाउध
(२) घर रखवाळो गूदडा
(३) ताणइ कमाण पइँतीस टंक
(४) बोलै मुख हूँताँ वयण

वैणसगाई को स्थापित करने वाला वर्ण कभी अन्तिम शब्द के आदि मे आता है, कभी मध्य मे और कभी अन्त मे। इस दृष्टि से भी वैणसगाई के तीन भेद होते है—

(१) आदिमेळ—जब वैणसगाई को स्थापित करने वाला वर्ण अन्तिम शब्द के आदि मे आवे।

(२) मध्यमेळ—जब वैणसगाई का स्थापक वर्ण अन्तिम शब्द के मध्य मे आवे।

(३) अन्तमेळ—जब वैणसगाई का स्थापक वर्ण अन्तिम शब्द के अन्त में आवे।

उदाहरण

आदिमेळ—(१) जळवाळा न समाइ जळदि
खुसी हूँत पीथल कमध
मध्यमेळ—(१) हेक वडउ हित हुव्रइ पुरोहित
(१) रथि वइठा साभळि अरथ
अन्तमेळ—(१) कस छूटी छुद्र-घंटिका
(२) दरपक कंदर्प काम कुमुमाउध

इनके अतिरिक्त वैणसगाई का अरधमेळ नाम का एक और भेद होता है। उसमें आधे चरण में ही वैणसगाई कर दी जाती है अर्थात् चरण को दो भागों मे विभक्त करके प्रत्येक भाग मे वैणसगाई लायी जाती है। उदाहरण—

अरधमेळ—(१) कोकिल कंठ/सुहाइ सर
(२) कुमकुमइ मँजण करि/धउत वसत धरि
(३) रळतळइ रत्त/सोखइ सपत्त

पृथ्वीराज ने साधारण तथा उत्तम वैणसगाई का ही प्रयोग किया है। असाधारण वैणसगाई, (असमान स्वरो की) मध्यम वैणसगाई, अरधमेळ वैणसगाई और मध्यमेळ तथा अन्तमेळ वयणसगाई के उदाहरण भी कही-कही प्राप्त होते है। अधम वैणसगाई का प्रयोग केवल एक या दो जगह हुआ है।

शब्दालंकार

वयण-सगाई के पश्चात् दूसरा महत्त्वपूर्ण अलंकार, जिसका प्रयोग वेलि मे हुआ है, अनुप्रास है। एक वर्ण की अनेक आवृत्ति वाला वृत्त्यनुप्रास तो सभी पद्यों में आया है। अनेक वर्णो की एक आवृत्तिवाला छेकानुप्रास (जो महाकवि कालिदास का प्रिय अलंकार है), अनेक वर्णो की अनेक आवृत्तिवाला वृत्त्यनुप्रास, अनेक वर्णो की सस्वर आवृत्तिवाला निरर्थक यमक, शब्द की आवृत्तिवाला सार्थक यमक, और शब्द, अर्थ तथा तात्पर्य की आवृत्तिवाला पुनरुक्तिप्रकाश आदि सभी आवृत्तिप्रधान अलंकारो का पृथ्वीराज ने प्रचुर प्रयोग किया है। ऐसे पद्य विरले ही होगे जिनमे इनमे से कोई एक या अधिक अलंकार प्रयुक्त न हुए हो। ऐसे ही पद्यो की संख्या अधिक होगी जिनमे इनमे से सभी या अधिकाश एक साथ आये है। अर्थालकार इनके अतिरिक्त है।

इन शब्दालकारों की विशेषता यह है कि ये सब स्वाभाविक रूप से आये है। ऐसा कही नही जान पडता कि इन्हे लाने के लिए कवि को प्रयास करना पडा है। इससे कवि का भाषा पर अद्भुत अधिकार सूचित होता है।

कुछ उल्लेखनीय उदाहरण नीचे दिये जाते है—

(१) इतरइ अेक आली ले आव्री आनन आगळि आदरिस (वृत्त्यनुप्रास)

(२) मधु मद स्रवति मदगति मल्हपति मदोमत्त मारुत मातंग (वृत्त्यनुप्रास)

(३) लाज लोह लंगरे लगाये गय जिमि आणी गय-गमणि (वृत्त्यनुप्रास, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास)

(४) लाजवती अँगि अेह लाज विधि लाज करंती आवइ लाज (लाटानुप्रास)

(५) दुरदिन दुरग्रह दुसह दुरदसा नासइ दुसपन दुरनिमित (लाटानुप्रास)

(६) जिणि सेस सहस फण फणि-फणि बि-वि जिह जीह-जीह नव-नवउ जस (पुनरुक्तिप्रकाश)

(७) वाहरि रे वाहरि ! छइ कोइ वर, हरि हरिणाखी जाइ हरि (पुनरुक्ति-प्रकाश, यमक)

(८) तेज कि रतन कि तार कि तारा हरि हँस-सावक ससहर हीर (वृत्त्य-नुप्रास, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास)

(९) वहु विळखी वीछडतइ वाळा बाळ-सँघाती वाळपण (वृत्त्यनुप्रास, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास)

(१०) कळकळिया कुत किरण कळि ऊकळि वरसत विसिख विवरजित वाउ धडि धडि धडकि धार धारू-जळ सिहरि सिहरि समरवइ सिळाउ (वृत्त्यनुप्रास, छेकानुप्रास, यमक, पुनरुक्तिप्रकाश)

(११) घटि-घटि घण घाउ, घाइ-घाइ रत घण, ऊंच छिछ ऊछळइ अति (वृत्त्यनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश, लाटानुप्रास)

(१२) तरुणी-तरुण विरहि-जण-दुतरणि फागुणि घरि-घरि खेलइ फाग (वृत्त्य-नुप्रास, छेकानुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश)

(१३) मिळियइ तटि ऊपटि विथुरी मिळिया धण धर धाराधर धणी (वृत्त्य-नुप्रास, छेकानुप्रास, यमक)

(१४) गमे-गमे मद गळित गुडता गात्र गिरोवर नाग गति (वृत्त्यनुप्रास, छेकानुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश)

(१५) वेणी किरि वेणी वणी (वृत्त्यनुप्रास, छेकानुप्रास, यमक)

(१६) जळनिधि ही सामाइ नही जळ, जळबाळा न समाइ जळदि (वृत्त्य-नुप्रास, लाटानुप्रास, छेकानुप्रास)

(१७) म्रिगसिरि वाइ किया किंकर म्रिग, आद्रा वरसि कीध धर आद्र (वृत्त्यनुप्रास, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास)

श्लेष का प्रयोग कम हुआ है। वह विशेषतः साग रूपक के साथ आया है। चित्रालकार का प्रयोग ऋतु-वर्णन मे एक स्थान पर हुआ है—

पारथियां क्रिपण-वयण दिसि पवणे

(मांगे जाने पर कृपण के मुख से निकलने वाले वचन की दिशा के पवन ने)। माँगने पर कृपण के मुख से ऊतर (=उत्तर, जवाब, नाही, इनकार) निकलता है। ऊतर का दूसरा अर्थ उत्तर दिशा भी होता है और वही अर्थ इस चरण में अपेक्षित है।

वक्रोक्ति और पुनरुक्तवदाभास का प्रयोग वेलि मे नही हुआ।[1]

अर्थालंकार

वेलि मे चालीस से ऊपर अर्थालंकार प्रयुक्त हुए है। सादृश्यमूलक अलंकार और उनमे भी उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा स्वभावतः ही प्रमुख है। उपमानो की नवीनता उनकी प्रधान विशेपता है। कवि साहित्य की पिटी-पिटायी लीक पर नही चला है, प्रकृति और जीवन भी उसकी दृष्टि मे रहे है।

श्री विपिनविहारी त्रिवेदी के शब्दो में पृथ्वीराज के अलंकार काव्य की आत्मा—रस—के साधक है, न कि वाधक। वे बहुत ही स्वाभाविक रूप मे लाये गये है तथा वे प्रसाद गुण मे सहायक और भावोत्तेजना में पूर्ण योग देने वाले है।

श्री मोतीलाल मेनारिया लिखते है–पृथ्वीराज ने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का प्रचुर प्रयोग किया है स्वरूप-वोध और भावोत्तेजन की दृष्टि से इनकी योजना हुई है।....हमारे प्राचीन कवि आख की उपमा कमल से और मुख की चन्द्रमा से देते आये है। इस तरह की उपमाओ से उपमेय-उपमान के बीच का थोड़ा सादृश्य अवश्य प्रकट हो जाता है पर वर्णन में सजीवता नही आती, न कथित विषय का पूरा दृश्य सामने आता है। पर

[1] सीख दीध किण तुम्ह-सूं ? (पद्य ६१) में विद्वानो ने वक्रोक्ति अलंकार वताया है। पर वक्रोक्ति अलंकार तभी होता है जब एक व्यक्ति एक अर्थ में एक शब्द या वाक्य को कहे और दूसरा व्यक्ति उसको दूसरे अर्थ में लेकर दुहरावे। काकुवक्रोक्ति में पहले कहे हुए किसी वाक्य या शब्द का दुहराया जाना आवश्यक है (दुहराना साधारणतया दूसरे व्यक्ति के द्वारा होता है पर अपने द्वारा भी हो सकता है)। दुहराने पर ही वक्रोक्ति अलंकार होता है अन्यथा ध्वनि या गुणीभूत व्यंग्य होता है। उदाहरण—

(१) विरहिणी—**आये हू रितुराज अलि ! प्रीतम ऐहै नाँहि।**
सखी—**आये हू रितुराज अलि ! प्रीतम ऐहैं नाँहि ?**

(२) दशरथ—**कहु तजि रोष राम-अपराधू।**
सब कोइ कहत राम सुठि साधू॥
कैकेयी—**राम साधु ! तुम साधु सुजाना !**
राम-मातु भलि मै पहिचाना !!

पृथ्वीराज की उपमाओ मे यह वात नही है। वे अपनी उपमाओ में न केवल उपमेय-उपमान का साधर्म्य कथन करते है परन्तु दोनो के आसपास के पूरे वातावरण को ही शब्दो मे ला उतारते हैं जिससे भाव सजीव होकर जगमगाने लगता है। यथा

सँगि सखी सीळ कुळ वँस समाणी
पेखि कळी पदमणी परि
राजति राजकुंअरि रायंगणि
उडियण वीरज अंबहरि

यहा पर कवि ने रुक्मिणी की उपमा चन्द्रमा से देकर ही अपने कार्य की इतिश्री नही कर दी है किन्तु रुक्मिणी की सखियों की समता तारो मे दिखाकर आसपास के समूचे वातावरण का शब्दचित्र सामने ला रखा है।

श्री रामचन्द्र शुक्ल ने सादृश्यमूलक अलंकारों के दो उद्देश्य बताये है—(१) किसी वस्तु के रूप या गुण या क्रिया का अनुभव अधिक तीव्रता से कराना और (२) भाव का अनुभव तीव्रता से कराना। कहना नही होगा कि वेलि के अलंकार इन उद्देश्यो को भली-भाति सिद्ध करने वाले है।

वेलि में प्रयुक्त अलंकार (संक्षिप्त लक्षण सहित)—

वयणसगाई—चरण के प्रथम शब्द के प्रथम वर्ण की चरण के अतिम शब्द मे आवृत्ति। (सब पद्यो मे)

अनुप्रास—वर्ण की आवृत्ति।

वृत्यनुप्रास—एक या अनेक वर्ण की अनेक आवृत्ति। (सब पद्यो मे)

छेकानुप्रास—(एक या) अनेक वर्ण की एक आवृत्ति। (अधिकाश पद्यो में)

श्रुत्यनुप्रास—एक स्थान से उच्चरित अनेक वर्णो का प्रयोग। (अनेक पद्यो में)

लाटानुप्रास—शब्द की आवृत्ति, अर्थ प्रत्येक बार अभिन्न, अन्वय प्रत्येक बार भिन्न। (अधिकाश पद्यो मे)

पुनरुक्तिप्रकाश—शब्द की आवृत्ति, अर्थ प्रत्येक बार अभिन्न, अन्वय भी प्रत्येक बार अभिन्न। (अनेक पद्यो मे)

यमक—(१) शब्द की आवृत्ति, अर्थ प्रत्येक बार भिन्न। (अनेक पद्यो मे)
(२) अनेक वर्णो की स्वरसहित आवृत्ति।[1] (अनेक पद्यो मे)

श्लेष—शब्द के (एक बार प्रयोग मे ही) अनेक अर्थ।

[1] इस प्रकार को वर्णावृत्ति होने के कारण अनुप्रास कहना अधिक उचित है पर परपरा यमक ही कहती आयी है।

*वक्रोक्ति—वक्ता के एक अर्थ मे प्रयुक्त शब्द या शब्दो का श्रोता द्वारा दूसरा अर्थ किया जाना। श्लेष-वक्रोक्ति मे शब्द अनेकार्थक होता है जिसके कारण दूसरा अर्थ सभव होता है। काकुवक्रोक्ति में विना श्लेष के ही दूसरा अर्थ किया जाता है पर वह श्रोता द्वारा परिवर्तित कंठस्वर (काकु) द्वारा सूचित किया जाता है; इसमें ऐसे शब्द या शब्दो की आवृत्ति आवश्यक है, बिना आवृत्ति के केवल काकु होने पर ध्वनि या गुणीभूत व्यंग्य होता है।

*पुनरुक्तवदाभास—जब ऐसे शब्दो का प्रयोग किया जाय जिनमें अर्थ की पुनरुक्ति जान पड़े; उनका अर्थ एक-सा दिखायी पडे, पर वास्तव में अर्थ एक न हो।

उपमा—जव एक पदार्थ को दूसरे पदार्थ के समान कहा जाय।

मालोपमा—ऐसी उपमा जिसमें उपमेय एक पर उपमान अनेक हो।

असम—जब उपमेय का उपमान न हो।

*अनन्वय—जब उपमेय का उपमान उपमेय ही हो।

प्रतीप—(१) जब उपमान को उपमेय और उपमेय को उपमान बना दिया जाय।
(२) जब उपमान उपमेय की समता के अयोग्य कहा जाय।

व्यतिरेक—जब उपमेय को उपमान से (अच्छाई या बुराई में) बढकर कहा जाय, जब उपमेय में उपमान से कोई बात (अच्छी या बुरी) अधिक हो।

*स्मरण—जब उपमान को देखकर उपमेय की स्मृति हो।

संदेह—जब उपमेय मे उपमेय और उपमान दोनो की संभावना जान पड़े और निश्चय न हो।

भ्रांतिमान्—जब उपमेय को उपमान समझ लिया जाय।

अपह्नुति—जब (जान-बूझकर) उपमेय मे उपमेय का निषेध करके उपमान की स्थापना की जाय।

उत्प्रेक्षा—जब एक पदार्थ को दूसरा पदार्थ मान लिया जाय।

हेतूत्प्रेक्षा—जब अहेतु को हेतु मान लिया जाय।

रूपक—जब उपमेय को उपमान का रूप दिया जाय, उपमेय को उपमान बना दिया जाय।

सांगरूपक—जब उपमेय को उपमान बना दिया जाय और उपमान के अंग भी उपमेय के साथ बताये जायँ।

*उदाहरण—जब दृष्टान्त अथवा अर्थान्तरन्यास के दो वाक्यों के बीच मे जैसे, या उसका कोई पर्यायवाची शब्द, आवे।

*प्रतिवस्तूपमा—जब दो कथनो (वाक्यो) के धर्मो मे वस्तु-प्रतिवस्तु-भाव

हो अर्थात् जब दोनो के धर्म एक ही हों पर पर्याय शब्दो द्वारा कहे जायँ।

दृष्टान्त—जब दो कथनो (वाक्यो) के धर्मो मे बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव हो अर्थात् दोनो धर्म मिलते-जुलते हो (एक-से हो पर एक न हो)।

निदर्शना—जब दो वस्तुओ या कथनो मे समानता सूचित करने के लिए उनको एक कहा जाय।

रूपकातिशयोक्ति—जब उपमेय का लोप करके उपमान का ही कथन हो और उससे उपमेय का अर्थ सूचित हो (जब उपमेय के स्थान पर उपमान का प्रयोग किया जाय)।

श्लेष—जब ऐसे शब्दो का प्रयोग किया जाय जिनका अर्थ अनेक (दो या अधिक) पक्षो के साथ लग जाय। इसमे दोनो पक्षो का शब्दो द्वारा उल्लेख होता है।

समासोक्ति—जब ऐसे शब्दो का प्रयोग किया जाय जो अनेकार्थक होने के कारण या अनेकार्थक हुए बिना भी अनेक पक्षो मे लग जायँ। इसमे शब्द द्वारा उल्लेख एक ही पक्ष का, उपमेय का ही, होता है; दूसरे पक्ष का अर्थात् उपमान का उल्लेख नहीं होता।

जब प्रस्तुत अर्थ से प्रस्तुत अर्थ निकलने के साथ-साथ एक अप्रस्तुत अर्थ भी सूचित हो।

अप्रस्तुतप्रशसा—जब अप्रस्तुत अर्थ से प्रस्तुत अर्थ सूचित हो।

[**रूपकातिशयोक्ति**—जब उपमान वस्तु से उपमेय वस्तु सूचित हो।]

दीपक—(१) जब एक ही शब्द वाक्य मे अनेक शब्दो के साथ अन्वित हो, जैसे एक ही क्रिया अनेक कर्त्ताओ से अन्वित हो, एक ही कर्त्ता अनेक क्रियाओ से अन्वित हो, अथवा एक ही विशेषण अनेक विशेष्यो से आन्वित हो।

(२) जब एक ही शब्द एक से अधिक वाक्यो (उपवाक्यो) के साथ अन्वित हो।

सहोक्ति—जब एक ही शब्द साथ शब्द (या उसके किसी पर्याय) द्वारा अनेक शब्दो के साथ अन्वित हो।

परिकर—जब साभिप्राय विशेषण का प्रयोग किया जाय।

परिकरांकुर—जब साभिप्राय विशेष्य (नाम) का प्रयोग किया जाय।

उल्लेख—जब एक वस्तु का विषयभेद या ज्ञाता-भेद से अनेक प्रकार से वर्णन किया जाय (अनेक सबधी वस्तुओ के दृष्टिकोणो से या अनेक व्यक्तियो के दृष्टिकोणो से वर्णन किया जाय)।

पर्यायोक्त—(१) जब वाच्यार्थ और व्यग्यार्थ लगभग वही हो पर वाच्यार्थ व्यग्यार्थ से अधिक सुन्दर हो। जब बात को सीधी तरह से न कहकर घुमा-फिराकर कहा जाय।

(२) जब किसी बहाने से काम बनाया जाय या काम बनाने का प्रयत्न किया जाय।

विरोधाभास—जब साथ न रह सकने वाली बातों का साथ रहना कहा जाय।

असंगति—जब साथ रहने वाली बातो का साथ न रहना कहा जाय।

विभावना—जब अपने कारण के न होने पर भी कोई कार्य हो जाय।

विशेषोक्ति—जब अपने कारण के होने पर भी कार्य न हो।

व्याघात—जब एक ही कारण से अनेक (दो या अधिक) विपरीत कार्य हो।

अधिक—जब आधार से छोटे आधेय को उस आधार से बड़ा बताया जाय। जब आधेय से बड़े आधार को उस आधेय से छोटा बताया जाय। (इसमें आधेय की बड़ाई पर जोर दिया जाता है)।

***अल्प**—जब आधार को छोटे आधेय से भी छोटा बताया जाय।

अन्योन्य—जब दो वस्तुएं एक-दूसरी के प्रति एक ही क्रिया करे (या जब दो वस्तुओं की एक-दूसरी के प्रति एक ही क्रिया हो)।

***कारणमाला**—जब कार्य-कारणों की शृंखला हो अर्थात् जब कई कार्य हों और प्रत्येक कार्य पिछले कार्य का कारण बनता जाय या कई कारण हों और प्रत्येक कारण पिछले कारण का कार्य बनता जाय।

एकावली—जब विशेषक-विशेष्यो की शृंखला हो अर्थात् जब कई विशेष्य हो और प्रत्येक विशेष्य पिछले विशेष्य का विशेषक बनता जाय या जब कोई विशेषक हो और प्रत्येक विशेषक पिछले विशेषक का विशेष्य बनता जाय।

***सार**—जब उत्तरोत्तर श्रेष्ठ वस्तुओ की शृंखला हो अर्थात् जब कई श्रेष्ठ वस्तुएं हो और प्रत्येक वस्तु पिछली वस्तु से श्रेष्ठ हो।

मीलित—जब एक वस्तु समान रंग की दूसरी वस्तु के संपर्क में आने पर उसमें मिल जाय—विलीन या अदृश्य हो जाय।

काव्यार्थापत्ति—जब एक बात के होने से दूसरी बात का होना स्वत. समझ लिया जाय।

अनुमान—जब कार्य के लक्षणो को देखकर अलक्षित कार्य का होना भी समझ लिया जाय। जब किसी वस्तु के लक्षणो को देखकर वस्तु का होना भी, उसके अलक्षित होने पर भी, समझ लिया जाय।

काव्यलिंग—जब किसी कथन के साथ उसका उपपादक (स्थापना करने वाला समर्थक) कारण भी कहा जाय।

अर्थान्तरन्यास—जब विशेष कथन का समर्थन सामान्य कथन से या सामान्य

कथन का समर्थन विशेष कथन से किया जाय। (काव्यलिंग मे समर्थन तो होता है, पर सामान्य-विशेष-भाव नही होता)।

हेतु—(१) जब कारण और कार्य में अभेद किया जाय अर्थात् कारण को कार्य बना दिया जाय (रूपक मे उपमेय पर उपमान का आरोप होता है, इसमे कारण पर कार्य का)।

(२) जब कारण और कार्य दोनो का साथ वर्णन हो (काव्यलिंग मे साथ वर्णन होता है पर उद्देश्य यह होता है कि कारण कार्य की सिद्धि करे, हेतु मे यह उद्देश्य नही होता; दूसरे यह कि हेतु मे कारण उत्पादक कारण होता है, समर्थक नही)।

समुच्चय—(१) जब अनेक कारणों का एक साथ वर्णन हो।

(२) जब अनेक क्रियाओ या गुणों का एक साथ वर्णन हो।

अत्युक्ति—जब किसी वस्तु का लोकोत्तर वर्णन हो।

उदात्त—जब संपत्ति का लोकोत्तर वर्णन हो (उदात्त अत्युक्ति का ही एक रूप है)।

स्वभावोक्ति—जब किसी वस्तु के स्वभाव का याथातथ्यपूर्ण (हूबहू) वर्णन हो।

लोकोक्ति—जब वाक्य मे प्रसंगप्राप्त लोकोक्ति (कहावत) का प्रयोग किया जाय। मुहावरे को भी कभी-कभी लोकोक्ति कहा जाता है।

यथासंख्य—जब एक क्रम से कथित वस्तुओ से संबधित अन्यान्य वस्तुओ का कथन भी उसी क्रम से किया जाय।

टिप्पणी—तारक चिन्ह * से अकित अलंकार वेलि में प्रयुक्त नही हुए है।

(१०) प्रकीर्णक

कवि की बहुज्ञता

कवि ने वेलि के सम्बन्ध मे कहा है—

जोतिखी वयद पौराणिक जोगी सांगीती तारकिक सहि।
चारण भाट सुकवि भाखा-चत्र करि एकठा त अरथ कहि॥ (२९६)

वेलि का अर्थ भली-भाँति समझने के लिए इतने विद्वानो की या इतने शास्त्रो के ज्ञान की आवश्यकता है। इसमे संदेह नही कि पृथ्वीराज वहुपठित और बहु-श्रुत व्यक्ति थे। अकवर जैसे विद्यानुरागी वादशाह के दरबारी के लिए ऐसा होना स्वाभाविक ही था। वेलि मे स्थान-स्थान पर कवि की विविध शास्त्रो तथा

लौकिक प्रथाओं की जानकारी प्रकट होती है। कुछ स्थलों का संकेत यहाँ किया जाता है—

(क) विविध शास्त्र और कलाएं—

(१) ज्योतिष और शकुन—

भावी-सूचक थिया कि भेळा सिघ-रासि, ग्रह-गण सकळ
हसत नखित्र वेधियउ हिमकरि अरध कमळ अळि आवरित
चोटियाळी कूदइ चौसठि चाचरि ध्रू ढळियइ, ऊकसइ धड़
म्रिगसिरि वाइ किंकर म्रिग, आद्रा वरसि कीध घर आद्र
दुरदिन दुरग्रह दुसह दुरदसा नासइ दुसपन दुरनिमित
चिंतातुर मनि इम चितवंती थयी छीक तिम धीर थयी

(२) वैद्यक—

चतुराविध वेद-प्रणीत चिकितसा ससत्र उखद मंत्र तत्र सुवि
आधिभूतिक आधिदेव अध्यातम पिडि प्रभवति कफ वात पित
त्रिविध ताप तसु रोग त्रिविध-मइ न भवति वेलि जपति नित

(३) संगीत, नृत्य और नाट्य-शास्त्र—

वसंत के अखाड़े का वर्णन (पद्य २४३ से २४८ तक) देखिये।

(४) योगशास्त्र

धुनि उठी अनाहत संख-भेरि-धुनि अरुणोदय थिय जोग-अभ्यास
माया-पटळ निसामय भजे प्राणायामे जोति-प्रकास
राता तत-चिता रत-चिता-रत गिरि-कदरि घरि बिन्हे गण
निद्रा-वसि जगि अेह महा-निसि जामिअे कामिअे जागरण
सइसव तनि सुसुपति जोवण न जाग्रति वेस-सधि सुहिणा सुवरि
जिमि सतगुरु कळि-कळुख तणा जण दिपति ज्ञान प्रकटे दहण

(५) पुराण—

अंग अनंग गया आपाणा जुडिया जिणि वसिया जठरि
समइ भाग करि संख संखधरि अेकणि ग्रहियउ अगुळी
किरि वइकुठ अजोध्या-वासी मंजण करि सरजू नदि माहि
अेहि ज परि थयी भीर कजि आया धनंजइ अनइ सुयोधन
मासइ मगसिर भलउ जु मिळियउ जागिया मीटि जनारजन
वे हरि-हर भजइ (२६०)
कळि कळप-वेलि वळि कामधेनुका चिंतामणि सोम-वेलि च्रत्र
नासा अग्रि मुताहळ निहसत भजति कि मुक मुखि भागव्रत

(६) कोष—

रुक्मिणी, प्रद्यम्न, अनिरुद्ध के नामो वाले पद्य (२७०-७१-७२) देखिये।

(७) राजनीति—
दीजइ तिहा डक न दड न दीजइ ग्रहण मवरि तरु गानगर
कर-ग्राही परवरिया मधुकर कुसुम गंध मकरंद कर

(८) कर्मकांड—
महि सुइ खट मास प्रात जळ मजे अप-सपरस-हरु जित इंद्री
प्रामइ वेल पढंता नित प्रति

(९) भाषा-ज्ञान—
भाखा, संसक्रित, प्राक्रित भणता मूझ भारती अे मरम

(१०) कृषि-शास्त्र—
युद्ध-वर्षा-रूपक के पद्य १२३ से १२६ तक देखिये।

(११) वस्त्र बुनने की कला—
आजाति जाति पट घूंघट अतरि मेळण अेक करण अमिळी
मन दपती कटाछि दूति-मइ निय मन सूत्र कटाछि नळी

(१२) लुहारी—
रुकमइयउ पेखि तपति आरणि रणि पेखि रुकमणी-जळ प्रसन
तणु लोहार वाम कर निय तणु माहव किउ संटसी मन

(१३) सिकलीगरी—
अणियाळा नयण वाण अणियाळा सजि कुडळ खुरसाण सिरि
वळे वाढ दे सिळी-सिळी वरि काजळ जळ-वाळियउ किरि

(ख) लोक-प्रथाएं और लोक-जीवन

श्रृंगार, आभूषण, वस्त्र (रुक्मिणी-श्रृंगार-वर्णन प्रकरण); विवाह-संबंधी रीतिया (विवाह-प्रकरण), पुत्र-जन्म-सम्बन्धी रीतिया (वसंत-जन्म प्रकरण); ऋतु-विहार (ऋतु-वर्णन प्रकरण), तुला-दान (पद्य २०६); कार्तिक मे कुमारियों द्वारा घर के द्वारो पर चित्र बनाना (पद्य २११); होली और फाग (पद्य २२४); वधाईदारो का हाथ मे हरी डाल लेकर जाना (पद्य १३८); स्वागत मे और उत्सवो मे अक्षत, केशर, हल्दी, दूब आदि का उछाला जाना (१४०), न्यायपूर्ण राज्य मे प्रजा का सुखी और निश्चित जीवन (दीपक चंपक लाखे दीधा, कोड़ि धजा फहराणी केळि); राज-सभा और अखाडा (वसत-राजा रूपक तथा वसंत का अखाडा प्रकरण); आदि-आदि।

(ग) प्रकृति-ज्ञान, पशु पक्षियो के स्वभावों और व्यापारों का ज्ञान—
म्रिगसिरि वाइ किया तरु झखर, आद्रा वरसि कीध धर आद्र
वग रिखि राजान सु पावसि वइठा, सर सूता, थिउ मोर-सर
चातिक रटइ, वळाहकि चचळ, हरि सिणगारइ अंवहर
गो खीर स्रवति रस धरा उदगिरति, सर पोइणिअे थयी सु-श्री

वोलंति मुहुरमुहु विरह गमइ वे तिसी सुकुळ निसि सरद-तणी
ऊडण पंख समारि रहे अळि कंठ समारि रहे कळकंठ

कवि की आत्मश्लाघा

वेलि के २७५ से २९६ तक के पद्यो मे वेलि का माहात्म्य वर्णन किया गया है जिसमे वेलि की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा की गयी है। विद्वानो ने इन पद्यो मे कवि की आत्मश्लाघा देखी है।

श्री तैसीतोरी उसे the boldest possible self-eulogy which an author could compose कहा है, यद्यपि कवि की सफलता को देखते हुए वे उसे अनुचित नहीं मानते—उसे स्वाभाविक ही बताते हैं।

श्री सूर्यकरण पारीक लिखते है—पृथ्वीराज को यह विश्वास था कि उनका यह काव्य-प्रयत्न अत्यन्त सफल हुआ है और उन्होने अपने स्वाभाविक भोलेपन मे यह विश्वास प्रकट कर दिया।

हमारी सम्मति मे वेलि के इस माहात्म्य-कथन को आत्मश्लाघा कहना उचित नही। कवि उतना ही विनीत है जितने कालिदास और तुलसीदास। वेलि के प्रारंभिक पद्य इसके प्रमाण है। वेलि के अंत मे आये हुए पद्यो से भी उसका विनय सूचित होता है। पद्य २९८ मे वह विद्वानो से प्रार्थना करता है—

हरि-जस-रस साहस करे हालिया, मो पडिता ! वीनती, मोख।
अम्हीणा तुम्हीणइ आया स्रवण-तीरथे वयण स-दोख ॥

मेरे वचन दोषों से परिपूर्ण है। आपके कान तीर्थ-रूप है। उनमें पहुँचकर दोप-मुक्त होने के लिए वे आपके पास आये है। आप उन्हे दोषों से मुक्त कर दें। आपसे मेरी यह प्रार्थना है। आपके कानो मे पड़ जाने पर, आपके द्वारा सुन लिये जाने पर, मेरी सदोप कविता निर्दोप हो जायगी। उनको आपके पास आने का साहस भी नही हो रहा था पर उनमे हरि के यश का वर्णन है; उसी के भरोसे उन्हे आने का साहस हुआ है—उसी के वल पर वे आपके पास आने का साहस वटोर सके है।

आगे पद्य ३०० मे कवि पुन. अपने अज्ञान और अपनी सदोषता को स्वीकार करता है—

भलउ तिकउ परसाद भारती, भूंडउ ताइ महारउ भ्रम।

मेरे काव्य मे अच्छाई और वुराई दोनों है, अच्छाई जो कुछ है वह सरस्वती की कृपा है और वुराई जो कुछ है उसका कारण मेरा अज्ञान है।

तो फिर कवि ने वेलि की इतनी अतिशयोक्ति-पूर्ण प्रशसा क्यों लिखी ? ध्यान से देखने पर ज्ञात होगा कि इन पद्यों मे कवि अपनी या अपनी कविता की प्रशंसा नहीं कर रहा है। यह प्रशंसा कवि के काव्य की नही, भगवान के पावन चरित्र की है जिसके पठन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन से आस्तिक जन

समस्त मनोरथो की पूर्ति और विविध सिद्धियो की प्राप्ति सहज-संभाव्य मानते है। अलौकिक गुण वेलि के अपने नही, किंतु हरि-चरित्र के है, जो हरि-चरित्र के संपर्क के कारण वेलि मे भी प्रतिफलित है।

रामचंद्रिका-कार केशव भी अपने काव्य के अन्त मे कहते है—

रामचंद्र-चरित्र को जु सुनै सदा सुख पाइ।
ताहि पुत्र-कलत्र-संपति देत श्रीरघुराइ॥
यज्ञ दान अनेक तीरथ-न्हान को फलु होइ।
नारिका नर विप्र छत्रिय वैश्य सूद्र जु कोइ॥
....
लहै सु भुक्ति लोक-लोक अंत मुक्ति होइ ताहि।
कहै सुनै पढ़ै गुनै जु रामचंद्र-चंद्रिकाहि॥

तुलसीदास जैसा महाकवि भी, जिसने अपनी दीनता और अपना विनय प्रकट करने मे कोई कमी नही रखी है, अपनी रचना के लिए कह उठता है—

श्रीमद्-राम-चरित्र-मानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति जे।
ते संसार-पतंग-घोर-किरणैर् दह्यन्ति नो मानवाः॥

पृथ्वीराज की मौलिकता

कई-एक आलोचको ने पृथ्वीराज की मौलिकता मे संदेह प्रकट किया है। उनने उनकी कविता को पुराने कवियो की 'जूठन'-मात्र बताने का साहस भी किया है। इस आक्षेप मे कोई तथ्य नही है। यो तो कालिदास, तुलसीदास, शेक्सपियर, माघ, बिहारी जैसे महाकवियो मे भी यत्र-तत्र पुराने कवियो या लेखको के साथ भाव-साम्य दिखायी पड़ जाता है जिसमे से बहुत-कुछ आकस्मिक, और कही-कही कुछ जान-बूझकर अपनाया हुआ, होता है। पृथ्वीराज मे भी कुछ स्थलो पर पुराने कवियो के साथ ऐसा भाव-साम्य मिल जाय तो कोई आश्चर्य की बात नही। ऐसा भाव-साम्य एक-ही विषय पर लिखनेवाले कवियो मे स्वाभाविक है। संभव है कही-कही उन्होने पुराने कवियो के भाव जान-बूझकर भी ग्रहण किये हों पर ऐसे स्थलो मे वे उसमे कोई-न-कोई नवीनता लाये है और उसे और भी अधिक मनोहारी बनाने मे समर्थ हुए है। ऐसे स्थल बहुत थोड़े है।[1]

[1] वैसे तो अपनी नम्रता दिखाते हुए कवि ने स्वयं कहा है—

ग्रहिया मुखि मुखां गिळित ऊग्रहिया, मूं गिणि आखर अे मरम।
मोटाँ तणउ प्रसाद कहइ महि, अइंठउ आतम सम अधम॥

[पद्य २९७]

आलोचक महोदयों ने समान भावो वाले पद्यो की जो लवी सूची उपस्थित की है उनमे से अधिकांश मे कही दूर-की भी समानता नही है। विज्ञ पाठक उन पद्यो के अर्थो पर विचार करेगे तो वे सहज ही इसका पता लगा सकेंगे। यदि ऐसी समानताओ के आधार पर किसी कवि की रचना को जूठन वताया जा सकता है तो हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, या यों कहिये किसी भी भाषा, का शायद ही कोई कवि ऐसा होगा जो इस आरोप से मुक्त हो सके। अनेक उपमाएं साहित्य मे रूढ़ हो चुकी है जिसका कवि लोग वरावर प्रयोग करते आये है। पृथ्वीराज ने भी यत्र-तत्र ऐसा किया हो तो इससे उनकी मौलिकता पर कोई आच नही आ सकती।[१]

[१] आलोचको का कहना है कि पृथ्वीराज ने कर्मसी साखला कृत 'कृष्णजी-री वेलि' के 'रूप लखण गुण तणा रुकमणी' इस पद्य को ज्यों-का-त्यो उठाकर अपनी वेलि मे रख लिया है। अवश्य ही यह वेलि की अधिकाश प्रतियों मे मिलता है पर सं. १६६९ (फागुन सुदि) की प्रति मे यह नही पाया जाता। यह प्रति पृथ्वीराज के भतीजे के लिए लिखी गयी थी। इससे सिद्ध होता है कि यह पद्य मूल का अंश नही है, प्रतिलिपिकारो द्वारा जोड़ा गया है। प्रतिलिपिकारों और टीकाकारों ने और भी कई पद्य आगे चलकर जोड़े, जिनमे संवत-सूचक पद्य भी है जो विविध प्रतियो मे विविध रूपों में मिलते है (प्राचीनतम प्रतियों में ये पद्य नही मिलते जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं)। पीछे के प्रतिलिपिकारो ने वेलि की प्रशंसा के भी कई-एक पद्य अन्त में जोड़े है।

खंड ४ : वेलि की भाषा का व्याकरण

१. उच्चारण

(१) दो व्यजन सयुक्त हो और उनमे पिछला य, ह, या र हो तो सयुक्त व्यजन के पूर्व वाले स्वर पर उच्चारण के समय प्रायः जोर नही पडेगा और न उसकी मात्रा मे वृद्धि होगी अर्थात् वह ह्रस्व हो तो दीर्घ नही होगा। जैसे—(१) चद्‌यउ मे च एकमात्रिक है; (२) तुम्हा मे तु एकमात्रिक है; (३) वसत्र मे स एकमात्रिक है।

अन्य उदाहरण—सीखव्या (६२) जीपिस्यइ (१२२) मध्याह्न (१९०) त्रिण्हे (१) अम्ह (६०) वक्र, चक्र (८९) वसत्र (९५, २०५, २३७) पत्र (९५) सत्र (१२३) बळभद्रि (१२६) चित्रण (२) अग्रज (१३६) हळिद्र-दळिद्र (१४२) निग्रह (२२८) तत्र (१७४) छुद्रघंटिका (१७८)।

प्रत्युदाहरण—अम्हीणा-तुम्हीणइ (३०१) मध्य रात्रि (१९०) नखित्र (९३) पत्र (२४२)।

(२) आ, ए, ओ का एकमात्रिक उच्चारण भी होता है। जैसे—

वाउआ! हुअउ कि वाउळउ (३), जागियउ परभाते जगति (४७), आप कहउ तउ आज जाइ आवउ (७९), माहरइ मुख हूँता ताहरइ मुखि (४५), वळि रितुराइ-पसाइ वसन्नर (२५४), लोकमाता सिधुसुता स्री लिखमी (२७३)।

२. जाति

नारी-प्रत्यय

(१) ई, इ —छठी (छठी), तणी (की), लागी (लगी), ऊपड़ी (उठी)।

(१) णी —हंसणी (हंसी, हसिनी)।

(३) इणि —मालिणि (मालिन)।

नान्यतर-जातीय रूप

प्राचीन राजस्थानी मे नर-जाति और नारी-जाति के साथ नान्यतरजाति भी होती थी। मध्यकाल मे वह लुप्त हो गयी पर उसके कई-एक रूप बने रहे पर व्यवहारत: उनमे और नर-जाति के रूपो मे कोई अन्तर नही रहा।

नरजातीय रूप	नान्यतर-जातीय रूप
भूडउ, भूडौ; पहिलउ, पहिलौ; घणउ, घणौ; तणउ, तणौ; किसउ, किसौ।	भूडउं, भूडू; पहिलउं, पहिलू; घणउं, घणूं; तणउ, तणू; किसउ, किसू।

३. कारक-प्रत्यय और परसर्ग

कारक	एकवचन	अनेकवचन	अउ(ओ)कारान्त शब्द एक व०	अउ(ओ)कारान्त शब्द अनेक व०	परसर्ग दोनों वचन
कर्त्ता	×	×	×	आ	×
कर्म	×	×	× अइ (अै)	आ, अै	×
भूतकालिक सकर्मक क्रिया का कर्त्ता	× इ अे	× इ अे आं	अइ (अै)	आं	×
विकारी या परसर्गग्राही	×	× आ	अइ (अै)	आं	×
करण	× इ अे अेण	× इ अे अेण आं	,,	,,	सउं (सूं), करि
अधिकरण	× इ अे	× इ अे आं	,,	,,	महि, महे, माहि, मधि, परि, वरि, सिरि
अपादान	× आ	× आ अे आं	,,	,,	सउं(सूं),हउं(हूं), हूत, हूतउ, हूंती, हूता
सप्रदान	×	× अे आं	,,	,,	नइ (नै), प्रति, काजि,कजि,क्ति, रेस
संबंध	×	आं अह	,,	,,	रउ (रौ), कउ (कौ), चउ(चौ), तणउ (तणौ)
संबोधन	×	× आं	आ	आ	×

उदाहरण

	एकवचन		अनेकवचन
(१) कर्त्ता—			
०	कव्वण रक करि मेरु करइ	०	सुर नर नाग करइ जसु सेव
	लिखमी समी रुकमणी लाडी	आं	वरहासा नासा वाजन्ति
	तारू कव्वण जु समुद्र तरइ		अति प्रेरित रूप आखिया अन्रिपत
	देठाळउ हुव्वउ दळा दुह	आ	सुकदेव व्यास जैदेव सारिखा
(२) कर्म—			
०	जाणे वाद माडियउ जीपण	०	स्यामा आरभिया सिणगार
	वाग-हीणि वागेसरी	आं	गेघूंवे गळि-वाहा घाति
	वात विचारि न भली-वुरी		वागा ढेरव्विया वाहरुअे
	राणी तदि दूव्वउ दीध रुकमणी	आ	पुहप भार ग्रहणा पहिरि
इ	वनसपती प्रसव्वती वसति	अे	पिंडिनख सिख लगि ग्रहणे पहिरीअे
अइ	चीत्रारइ लागी चीत्रण		मोतिअे विसाहण ग्रहि कुण मूकइ
(३) सकर्मक भूतकालिक क्रिया का कर्त्ता—			
०	सिणगार करे मन कीधउ स्यामा	०	वाधाउआं ग्रिहे-ग्रिहे पुर-वासी
	राणी तदि दूवउ दीध रुकमणी		जण स्रीजणगण अधिक जाणियउ
	सरण हेम-दिसि लीधउ सूरिज		
इ	दिणयरि ऊगि अेतळा दीधा		
अे	झोले वाइ किया तरु झखर	अे	मारकुअे फेरिया मुह
अह (?)	पारथिया क्रिपण-वयण-दिस पव्वणह		फूले छडी वास प्रफूले
(४) करण—			
०	किसी सीख करुणाकरण !	०	सगळे दोख विव्वरजित साहउ
इ	माहरइ मुख हूता ताहरइ मुखि	इ	हाइ-भाइ मोहिया हरि
	वळि रितुराइ-पसाइ वेसन्नर	अे	लागी विहुँ करे धूपणइ लीधइ
अइ	कुमकुमइ मंजण करि		ऊभी सहु सखिअे प्रसंसिता अति
अेण	फुट वानरेण कच नारिकेळ फळ	आं	ऊजळियां धारा ऊमड़ियउ
(५) अधिकरण—			
०	मडइ किरि तडव गिरि मोर	०	वाजूवध वंधे गउर वाह विहुँ
इ	स्यामा तणइ निलाटि सोहिया	अे	होड छंडि चरणे लागा हँस
अइ	सकुड़ित सम-समा सध्या समयइ		ग्रथे गायउ जेणि गति

(६) संप्रदान—

० राणी तदि दूब्रउ दीध रुकमणी
लिखमीवर हरख-निगरभर लागी
संभ्या-वंदण रिखेसर
दुसट सासना भली दयी

अे पितरे ही मितलोक प्री
आं वाघाउआं ग्रिहे-ग्रिहे पुरवासी
मोखियां वंध वंधियां मोख

(७) अपादान—

० हालिय मळयाचळ हेमाचळ
आ सु जु दुज पुरा नीसरे सूतउ

आं घण दीहां अंतरइ घरि
अे परनाळे जळ रुहिर पड़इ
चिहुरे जळ लागउ चुवण

(८) संवंध—

० विमळ विचार करइ वीवाह
नाम लियउ दमघोख नर
अइ छंडि चवरी हथलेवइ छूटइ
इ राका दिनि दरसणि राकेसि

० सिरहर अहि नर असुर सुर
आं जाइ जादवां इन्द्र जत्र
वरहासां नासा वाजंति
कंपिया उर काइरा
खुभी पनां प्रवाळी खंभ
अह विण अंवह वाळिया वण
अे जामिअे-कामिअे जागरण
सखिअे मनरखिअे सँघट

(९) संवोधन—

० मुख करि किसू कहीजइ माहव !
श्रीपति ! कुण सुमति
राणी ! पूछइ रुकमणी
वीर ! वटाऊ ! व्राहमण !
अंव ! जात्र अंविका तणी
आ वाउआ ! हुअउ कि वाउळउ
प्राणिया ! वछि त वेलि पढि

० विवरण जउ वेलि रसिक ! रस वंछउ
आं मो पंडितां ! वीनती मोख

परसर्ग

(१) संप्रदान—

जा सुख दे स्यामा-नइ जिम
प्रभणंति पुत्र इम मात-पिता प्रति
अंतरजामी-सूं आळोज
सीख दीध किणि तुम्ह-सूं
पूजा व्याजि काजि प्री परसण

(२) अपादान—

हूं ऊधरी पताळ-हूं
घणा हाथ-हूं पड़इ घणा
कुन्दणपुर-हूंतां वसां कुदणपुरि
हूं ऊधरी त्रिकुटगढ-हूंती
दिखण-हूंत आवतउ उतर दिसि

अम्ह कजि तुम्ह छंडि अवर वर आणइ
रुकमणि क्रिसण वधावण रेसि

मध्यरात्रि **प्रति** मध्याह्न
पूत हेत पेखतां पिता **प्रति**

(३) **करण—**

सीळ आवरित लाज-**सूं**
सरिखा-**सूं** वळिभद्र लोह साहियइ
मुख-**करि** किसू कहीजइ माहव

(४) **अधिकरण—**

मिथ्या वयण न तासु **महि**
समाचार इणि **माहि** सहि
मेह-वूद **माहे** महण

(५) **संबंध—**

कामणि-करग सु वाण काम-**रा**
राम-क्रिसन आया राजा-**रइ**
किरि साखा स्रीखंड-**की**
कहि रुकमणि प्रदुमन अनिरुध-**का**
हळधर-**का** वहता हळा
वाळक-गति किरि हस-**चउ** वाळक
मन म्रिग-**चइ** कारणइ मदन-**ची**
देस-देस-**चा** देसपति

अउ रुकमणी **तणउ** वर आयउ
हुवउ सुदरसण **तणउ** हरि
तू-**तणा** अनइ तूं-**तणी**-**तणा** त्री
कमळ **तणा** मकरंद कजि
स्यामा **तणइ** निलाटि सोहिया
मँजियइ विणु मन तणइ मळि

४. सर्वनामो के रूप

(१) **हूँ=मैं**

हूँ, हुउं=मैं
हूँ मू=मैं, मुझे
मइं=मैंने
मूझ=मुझको
मूझ=मेरा
मो, मू=मेरा
माहरइ=मेरे (विकारी रूप)
अम्ह=हमारे (विकारी रूप)
अम्हा=हमारे ,,
अम्हीणा=हमारे (अनेकवचन)

(२) **तूं=तू**

तू=तू
तूझ=तेरा
ताहरइ=तेरे (विकारी)
तुम्ह=तुमको
तुम्हां=तुमको
तुम्हा=तुम (विकारी)
तुम्हीणइ=तुम्हारे (विकारी)

(३) **सो=वह**

सो=वह
सु=वह
सा=वह

(४) **जो=जो**

जो, जउ=जो
जु=जो
जा=जो

ति = वह, वे
तिकउ = वह
ताइ = वह
ते = वे
तइ = उस
तइ = उसको
ताइ = उसको, का, में,
तसु = उसका
तासु = उसका
तासु = उस
तिणि = उस
तिणि = उसने, से, में
तेणि = उससे

जिका = जो

जइ = जिसको
जाइ = जिनको
जसु = जिसका
जासु = जिसका

जिणि = जिस
जिणि = जिसने, से, में
जेणि = जिसने

(५) औ = यह
औ, अउ = यह
आ = यह
अे = यह
अेह = यह
अेइ = इससे
ईअे = इसने
इणि = इस
अेणि = इस
अेणि = इससे

(६) कुण = कौन
को = कौन
कुण — कौन
कवण = कौन
कवण = किसने
कवण = कौन (कर्म)
किणइ = किसने
किणि = किसने
किणि = किस

(७) कोई = कोई
को = कोई
कोइ = कोई
किहि = किसी

(८) कांई = क्या
कांइ = क्या
किसू = क्या

५. क्रिया-रूप

१. प्रेरणार्थक प्रत्यय—

(१) आ	करायउ (कराया) पहिरायउ (पहनाया)
(२) आव	सीखावि (सिखाकर)

(३) आड, आळ, आर, आण — पउढाडइ (सुलाते है) दिखाळिया (दिखाये) वइसारी (बिठायी) वइसाणि (बिठाकर)
(४) गुण — मेळिया-मिळिया (मिलाये)

२, कर्मवाच्य और भाववाच्य के प्रत्यय—
(१) इय, ईय — मडियइ (माडे जाते है), पूजियइ (पूजा जाता है)
(२) इज, ईज — सुणिजइ (सुने जाते है), कहीजइ (कहा जाय)
(३) ई (=इय) — सपेखी, सपेखिइ (देखे जाते है)

३. भविष्य के प्रत्यय—
(१) इस — होइसइ (होगा) आविसि (आऊँगी)
(२) इस्य — हुइस्यइ (होगी) आविस्यइ (आवेंगे)
(३) अेस्य — पहुँचेस्या (पहुँचेगे)

४. वर्तमान, विधि और भविष्य के रूप
(१) अन्य पुरुष (दोनो वचन)—
(१) अइ
वर्त० सूझइ (सूझता है) करइ (करते है) होवइ (होता है) हुवइ (होता है) थायइ (होता है) लियइ (लेता है)
विधि वरइ (वरे) हुवइ (हो) परणइ (ब्याहे)
भवि० हुइस्यइ (होगी) जीपिस्यइ (जीतेगा)
(२) इ
वर्त० कहि=कहइ (कहती है) समाइ (समाती है) जाइ (जाता है) थाइ (होता है) हुइ (होता है)
विधि हुइ (हो)
(३) इयइ
वर्त० ढळियइ (ढलते हैं)
(२) मध्यय पुरुष (एकवचन)—
(१) अइ — वर्त० सोभइ (खोजता है)
(२) इ — वर्त० वंछि (चाहता है)
(३) असि — वर्त० कलपसि (कळपता है)
(३) मध्यम पुरुष (अनेक वचन)—
(१) अउ
वर्त० वंछउ (चाहते हो)
विधि कहउ (कहो)
भवि० प्राभिस्यउ (पाओगे)

(४) उत्तमपुरुष (एकवचन)—

(१) अउं, ऊं वर्त० सकू (सकती हूँ) वकू (वकती हूँ)
विधि आऊं (आऊ) कहूँ (कहूँ)

(२) उ, इ भवि० कहिसु (कहूँगा) आविसि (आऊंगी)

(५) उत्तमपुरुष (अनेकवचन)—

(१) आं वर्त० वसां (वसते है) आणा (लाते है)
भवि० पहुँचेस्या (पहुँचेगे)

वर्तमान के विशेष रूप

अन्यपुरुष (दोनों वचन)—

(१) अति, अत राजति (सोहता है, सोहती है, सोहते हैं) भाति (सोहते है) कहति (कहते है) भवति (होते है), आजाति-जाति (आते है जाते है)

(२) अंति, अंत प्रभणंति (कहता है) प्रविमति (प्रवेश करती है) रहंति (रहता है) गायंति (गाते हैं) बोलंति (वोलते है) संति (है)

५. आज्ञा के रूप

(१) मध्यमपुरुष (एकवचन)—

(१) इ कहि (कह) पढि (पढ) देइ (दे) देहि (दे)

(२) अ ग्रब (गर्व कर)

(३) इसि करिसि (कर)

(२) मध्यम पुरुष (अनेकवचन)—

(१) अउ करउ (करो) कहउ (कहो) वेसासउ (विश्वास करो) दियउ (दो)

टि०—आज्ञा के अर्थ मे कर्मवाच्य भी आता है—
वीजिजइ (वोओ, वस्तुत· बोये जोय)

६. भूतकाल के रूप

(१) नर-जाति (एकवचन)—

(१) इयउ जाणियउ (जाना) जनमियउ (जनमा) आइयउ (आया)

(२) यउ, इउ टाळयउ (टाला) पइसारयउ (प्रवेश कराया) आयउ (आया) रहिउ = रह्यउ (रहा)

(२) नर-जाति (अनेकवचन)—

(१) इया जागिया (जगे) आविया (आये) पहिरिया (पहने) कहिया (कहे)

(२) या पधारचा (पधारे) आया (आये)
(३) आ लागा (लगे)
(४) ए कहे (कहे) पहिरे (पहिने) वधे (बाधे)

(३) नारी-जाति (एकवचन)—

(१) ई, यी कही (कही) ऊपडी (उठी) लागी (लगी) आवी (आयी) गयी (गयी) आयी (आयी) संजोयी (जलायी)

(४) नारी-जाति (अनेकवचन)—

(१) ई, यी पसारी (फैलायी)
(२) इया ढेरविया (ढीली की)

(५) दोनों जाति (दोनों वचन)

(१) इ करि (किया) धरि (धारण की) समारि (सवारी)

भूतकाल के कुछ विशेष रूप

१. हुवउ, हूवउ, हुअउ, हूअउ, हुअ (हुआ), थयउ, थियउ, थ्यउ, थिउ (हुआ)
हुवा, हूवा, हुआ, हुए (हुए), थया, थिया, थ्या (हुए); हुयी, हुअ, भयी, थयी (हुई), हूँतउ (था)।

२ कियउ, कीयउ, किउ, कीधउ, किय, किध (किया)
किया, कीया, कीधा, किय, किध (किये)
की, कि, कीधी, किय, किध (की)।

३. दीन्हा (दिये), दिन = दिन्ह = दीन्ह (दी), वधाणी (बाधी गयी), मडाणा (माडे गये), नीलाणा (नीले हुअे), पीलाणी (पीली हुई), सूता (सोये), वूठउ (वरसा), थाकउ (थका), छूटा (छूटे), भूला (भूले), पुहतउ (पहुँचा), वितअे (बीते), उपायउ (उपाया) ऊठि (उठी)।

अपूर्णभूत के रूप

आवतउ (आता था), वछता (चाहते थे), चितवती (सोचती थी)।

टिप्पणी—ये रूप वस्तुत. वर्त्तमान कृदन्त के है जो अपूर्णभूत और वर्तमान मे भी प्रयुक्त होते है।

६. कृदन्त

(१) पूर्वकालिक कृदन्त—

(१) इ तरि (तैरकर) लहि (पाकर) लेइ (लेकर)

		हुइ (होकर) सुइ (सोकर) मनावि (मनाकर)
(२)	ए	करे (करके) देखे (देखकर) मंजे (स्नान करके) व्याअे (प्रसव करके) प्रफूले (खिलकर)
(३)	एउ	करेउ (करके)
(४)	इयइ	वीखियइ(देखकर)चडियइ(चढकर)छिणियइ(छीनकर)
(५)	०	दे (देकर)

(२) हेतु-कृदन्त—

(१)	अण	जीपण (जीतने को) दियण (देने को) वाखाणण (वखानने को)
(२)	इवा	राखिवा (रखने को) कहिवा (कहने को)
(३)	अेवा	कहेवा (कहने को)
(४)	०	कर (करने को)

(३) भाववाचक कृदन्त—

(१)	अण	गावण (गाना) कहण (कहना) समझण (समझना) चात्रण (काटना)
(२)	अणउ	कहणउ (कहना)
(३)	इवउ	अण-मारिवउ (न मारना)

(४) शीलवाचक-कृदन्त—

(१)	अण	वाहणी (बहने वाली)
(२)	अण+हार	जाणण हार (जानने वाले)

(५) वर्तमान विशेषण कृदन्त—

(१)	अत	सभळत (सुनते हुए)
(२)	अतउ	वणतउ (वनता हुआ) पीडतउ (सताता हुआ) लाजती (लजाती हुई) धसति (प्रवेश करती हुई) तुळता (तुलते हुए)
(३)	अन्तउ	त्रूटति (टूटती हुई) रमती (रमती हुई) पसरता (फैलते हुए)

(६) वर्तमान क्रियाविशेषण कृदन्त—

(१)	अतइ, अति	वीछुडतइ (विछुड़ते हुए) पसरतइ (फैलते हुए) वरसतइ (वरसते हुए)

		वरखति (वरसते हुए) वछति (चाहते हुए)
(२)	अतइ, अति	पहरतइ (प्रहार करते हुए) वाजति (वजते हुए)
(३)	अता	क्रीडता (खेलते हुए) देखता (देखते हुए)
(४)	अंता	जपंतां (जपते हुए) करंता (करते हुए)

(७) भूत विशेषण कृदन्त—

(१)	इयउ, यउ, इउ, अउ	भारियउ (भारयुक्त हुआ), लागउ (लगा हुआ)
	आ, इया, या	मोखिया (खुले हुए) लाया (जनाये हुए)
		धोया (धोये हुए) खाड्या (गाडे हुए)
	ई	लागी (लगी हुई) मांगी (मागी हुई)
		लाधी (पायी हुई) लगि=लगी (लगी हुई),
		परणी (ब्याही हुई) नीळाणी (नीली वनी हुई)

(८) भूत क्रियाविशेषण कृदन्त—

(१)	अइ, अे	लागइ (लगे=लगने पर) हुवइ (हुए=होने पर)
		छूटइ (छूटे=छूटने पर) वूठइ (वरसे=वरसने पर)
		आयइ (आये) अकीधे (न किये हुए)
(२)	इयइ	मजियइ (माजे)
(३)	आ	कीधा (किये)
		आया (आये=आने पर)।

७. सयुक्त क्रिया

(१) पूर्वकालिक-कृदन्त+क्रिया—
कहि सकइ (कह सकता है) वीणि लियउ (वीन लिया) ले आवी (ले आयी)
लखे सकइ (लख सकते है) लिखि राखेउ (लिख रखा)

(२) भाववाचक कृदन्त+क्रिया—
कहणउ आवइ (कहने मे आवे, कहा जाय)

(३) हेतुकृदन्त+क्रिया—
चीत्रण लागी (चित्रने लगी)
चुवण लागउ (चूने लगा)

(४) भूतविशेषणकृदन्त+क्रिया—
जाणिया जाइ (जाने जाते है, जाने जा सकते है)।

८. अव्यय

१. क्रियाविशेषण—नह, नहु (नहीं) म (मत) नीठि (कठिनता से) पुणि (फिर) पुनहपुनह (बारबार) वळे, वळी (फिर) हेका (एक ओर) आरात (निकट) नेडउ (निकट) संप्रति (प्रत्यक्ष) साम्हा (सामने) आमुह-सामहइ (आमने-सामने)।

२. सबध-सूचक—परि (समान) वरि (समान) वरि (ऊपर) ऊपरइ (ऊपर) सिरि (ऊपर) मधि (वीच मे, मे) महि (मे) चाहि (ओर) प्रति (से) प्रति (ओर) प्रति (प्रत्येक) लगि (तक) लगी (तक) लगइ (तक) रेस (लिए) कित (लिए) काजि (लिए) कजि (लिए) करि (द्वारा) हूँती, हूँतउ, हूँता (से) सरि (समान) सरिस. सरीख (समान) तणउ (का) रुख (समान)।

३. संयोजक—किरि (मानो) कि (कि) कि (या, क्या) जाण (मानो) जाणि (मानो) किना (क्या, या, अथवा) अनइ (और) नइ (और) अउर (और) जु (जो, यदि) तउ (तो) जेहड़ी (जैसी ही, ज्योंही) ते (इसलिए) तिणि (इसलिए) अजु (और जो)।

४. प्रकीर्णक—ई, इ (ही) जि (ही) रे (अरे)।

९. सार्वनामिक अव्यय और विशेषण

(क) रीतिवाचक—

१	इम	तिम	जिम	किम	(ऐसे इ०)
२	अेम	तेम	जेम	केम	(ऐसे इ०)

(ख) स्थानवाचक—

३	इहा	तिहा	....	....	(यहा इ०)
४	....	तां	जा	....	(वहा इ०)
५	अत्र	तत्र	जत्र	कुत्र	(यहा इ०)
६	....	...	....	कहुं	(कही इ०)

(ग) कालवाचक—

७	....	तई	जई	कई	(तव इ०)

८	....	तदि	....	कदि	(तब इ०)
९	इतरइ	तितरइ	....	....	(इतने में इ०)

(घ) गुणवाचक—

१०	इसउ	तिसउ	जिसउ	किसउ	(ऐसा इ०)
११	अेरिसउ	....	....	....	(ऐसा इ०)
१२	अेहव्रउ	तेहव्रउ	जेहवउ जेहउ	केहवउ	(ऐसा इ०)

(ङ) परिणामवाचक—

१३	इव्रड़उ	....	जिवडउ	....	(इतना इ०)
	अेतळउ	....	....	केतळउ	(इतना इ०)
१५	इतरउ	तितरउ	....	....	(इतना इ०)
१६	इतउ	....	....	...	(इतना इ०)

परिशिष्ट

सहायक पाठ्य-सामग्री

१ क्रिसन-रुकमणीरी वेलि — तैंसीतोरी द्वारा संपादित (अंग्रेजी में)
२ वही — टीकाकार जगमालसिंह, रामसिह और सूर्यकरण पारीक द्वारा संपादित
३ वही — आनन्दप्रकाश दीक्षित द्वारा संपादित
४ वही — कृष्णशंकर शुक्ल द्वारा संपादित
५ वही — इच्छाराम देसाई द्वारा सपादित (गुजराती मे)
६ **राजस्थानभारती का महाराज पृथ्वीराज राठोड़ जयन्ती विशेषांक**
७ **राजस्थानभारती का महाराज पृथ्वीराज राठोड़ जयन्ती परिशिष्टांक**
८ नाभाजी कृत भक्तमाल — प्रियादास-कृत भक्ति-रस-बोधिनी टीका
९ वही — हरि-प्रकाशिका टीका
१० दोसौ वावन वैष्णवन की वारता
११ दळपत विलास — सपादक रावतमल सारस्वत
१२ दयालदास-कृत वीकानेर-रै राठौडा-री ख्यात—सपादक दशरथ शर्मा, दीनानाथ खत्री और जसवंतसिह
१३ वीकानेर के वीर — नरोत्तमदास स्वामी
१४ राजरसनामृत — मुसिफ देवीप्रसाद
१५ **वेलि-साहित्य** — **डा. नरेन्द्र भाणावत द्वारा लिखित शोध-प्रबन्ध**

क्रिसन-रुकमणी-री वेलि

मूळ-पाठ

व्रजभाषा-पद्यानुवाद, शब्दार्थ, पाठान्तर,
अलंकार-निर्देश सहित

मंगलाचरण

१

परमेसर प्रणवि, प्रणवि सरसति, पुणि
सद-गुरु प्रणवि, त्रिण्हे तत-सार
मंगळ-रूप गाइजइ माहव,
चार सु अे ही मंगळचार

१. सद-गुरु सरसुति ईसवर सुभ चरननि सिर नाइ
मगल-निधि माधव-गुननि गावत मंगल भाइ

१—परमेश्वर (को)। प्रणाम करके (प्र+नम् धातु से)। प्रणाम करके। सरस्वती (को) । पुनः, फिर। सद्गुरु (को)। प्रणाम करके। तीनो। तत्त्व के सार, सार-तत्त्व। मंगल के रूप, मंगलमय। गाये जाते है। माधव, श्रीकृष्ण। चार। सुन्दर। ये ही। मगलाचरण।

१—वयणसगाई। अनुप्रास। यमक (चार)। शब्दार्थावृत्ति-दीपक (प्रणवि)।

प्रस्तावना

२

आरँभ मइँ कीयउ, जेणि उपायउ,
गावण गुण-निधि, हूँ निगुण
किरि कठ-चीत्र-पूतळी निय करि
चीत्रारइ लागी चित्रण

३

कमळा-पति तणी कहेवा कीरति
आदर करे जु आदरी
जाणे वाद माँडियउ जीपण
वाग–हीणि वागेसरी

२. जग-करता के गुन करन मैं मन कीनो थापु
जैसे पुतरी रँगत है कमनीगर कों आपु
३ लखमी-पति के गुन करन मैं हठु कीनो नेक
गूँगो सरसुति सो लरत विना सँभारे 'वेक

२—प्रारम्भ। मैंने। किया। जिसने। उत्पन्न किया (उत्पादित, उप्पाइय)। गाने को, गाना। गुणो के निधान (को)। मैं। गुण-हीन। मानो (सं. किल)। काष्ठ मे (काष्ठफलक पर) चित्रित मूर्ति। अपने (निज)। हाथ से। चित्रकार को। लगी। चित्रित करने।
३—लक्ष्मी के पति अर्थात् कृष्ण की। कहने को, कहना। कीर्ति। समान करके, आदर-पूर्वक। जो। स्वीकार की। मानो। हठ (या विवाद, शास्त्रार्थ)। आरम्भ किया, ठाना। जीतने को (जित्तण-जिप्पण)। वाणी-हीन अर्थात् गूँगे ने। वागीश्वरी, वाणी की स्वामिनी, सरस्वती (को)।

२—(२) हू=होकर भी। (३) निज।
३—(१) करेवा।

२—वयणसगाई। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। उत्प्रेक्षा।
३—वयणसगाई। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। उत्प्रेक्षा।

४

सरसती न सूझइ, ताइ तूँ सोझइ,
वग्उआ ! हुअउ कि वाउळउ ?
मन सरिसउ धाव्रतउ मूढ मन !
पहि किम पूजइ पॉगुळउ ?

५

जिणि सेस सहस फण, फणि-फणि बि-बि जिह,
जीह-जीह नव्र-नव्रउ जस
तिणि-ही पार न पायउ त्रीकम !
वयण डेडरॉ किसउ वस ?

४. मन-वचननि को गमु नही, तूॅ वरनन चित देत
मन जव हय दौरत, कहो, क्यों खोरो गहि लेत
५. सेस सहस फन रसन वि-वि, रसन-रसन जस और
पार न पायो तिन, कितो मो बुधि-मेंडुक दौर ?

४—सरस्वती (को) । नही । दीख पड़ता है (अप सुज्झ, सं. शुध्य्) । उसे । तू । खोजता है, जानना चाहता है । हे वाचाल । हुआ, हो गया है । क्या । वावला (वातुल) । मन (के) । वरावर (सदृश) । दौड़ता हुआ । हे मूर्ख मन । पथिक । कैसे । पहुँचता है, निभता है । लँगड़ा ।

५—जिस । शेष (के) । हजार । फन । प्रत्येक फन मे । दो-दो । जिह्वाए । प्रत्येक जिह्वा मे । नया-नया । यश । उसने भी । अंत । नही । पाया । त्रि-क्रम, तीन पगो वाला, त्रिविक्रम, विष्णु, कृष्ण । वचनों का । मेंढको के (दर्दुर) । कैसा, कौन-सा (कीदृग) । वश ।

४—(२) वाउअउ ।
५—(३) लाभउ >पायउ ।

४—वयणसगाई । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । यमक । दृष्टान्त ।
५—वयणसगाई । अनुप्रास । छेकानुप्रास । पुनरुक्तिप्रकाश । अेकावली । अर्थापत्ति । विशेषोक्ति ।

६

स्रीपति ! कुण सुमति, तूझ गुण जु तव्रति?
तारू कव्रण, जु समुद्र तरइ ?
पंखी कव्रण, गयण लगि पहुचइ ?
कव्रण रंक, करि मेरु करइ ?

७

जिणि दीध जनम जगि मुखि दे जीहा,
क्रिसन जु पोखण-भरण करइ
कहण तणउ तिण तणउ कीरतन
स्रम कीधाँ विण केम सरइ ?

६. प्रभु-गुन कहै सु को सु-मति, पार जलधि को लेइ
पखी सुरगहि जात को, मेरु रक कर देइ ?
७ दे सु जनम दीधी रसन, भरन करत इक भाइ
ताही के गुन गाइयै, मो मन इहै सुहाइ

६—हे लक्ष्मी के पति। कौन (अप कव्रणु)। श्रेष्ठ बुद्धि वाला। तेरा (अप. तुज्झ)। यश। जो। स्तवन करता है, गा सकता है। तैराक। कौन। जो। सागर (को)। तैर कर पार करता है। पक्षी। कौन। गगन। तक। पहुँचता है (स प्रभू, अप. पहुच्च)। कौन। दरिद्र। हाथ मे। सुमेरु पर्वत (को)। करता है।

७—जिसने। दिया। जन्म। ससार मे। मुँह मे। देकर। जिह्वा। कृष्ण। जो। पालन-पोषण। करता है। कहने का, गाने का। उसका। कीर्तन, गुण-गान। परिश्रम। किये। विना। कैसे। काम चले।

७—(२) **संपोखण > जु पोखण।**

६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। शब्दार्थावृत्ति दीपक। दृष्टान्तमाला।
७—व स। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। काव्यलिंग।

८

सुखदेव़ व्यास जैदेव़ सारिखा
सु-कवि अनेक, र्त अेक-सॅथ
त्री-वरणण पहिलउँ कीजइ तिणि,
गुॅथियइ जेणि सिॅगार-ग्रॅथ

९

दस मास उअरि धरि, वळे वरस दस
जो इहाँ परिपाळइ जिव़डी
पूत-हेत पेखताॅ पिता प्रति
वळी विसेखइ मात वडी

८. द्वीपायन जयदेव सुक, वड़ कवि रच्यो सिगार
प्रथम तहाॅ कामिनि कही जानि सिॅगार-अधार
९ जगत माॅह सुत के अरथ पिता परम हित आहि
गरभ धरन, पोखन करन, इहि विधि मा सरसाहि

८—शुक, व्यास के पुत्र। वेदव्यास। जयदेव, गीतगोविंदकार। सरीखे (सदृक्ष)। श्रेष्ठ कवि। बहुत-से। वे। एकसंस्थ, एकनिष्ठ, एकमत। स्त्री या नायिका का वर्णन। पहले, सर्वप्रथम। किया जाय। उससे। गूथा जाय, रचा जाय। जिससे। श्रृंगार का ग्रंथ।

९—दस। महीने। उदर मे, गर्भ मे। धारण करती है। फिर। वर्ष। दस। जो, क्योकि। यहाँ, ससार मे। पालती है। जीवन (को), जीव (को)। पुत्र के प्रति प्रेम (को)। देखते हुए। पिता की अपेक्षा। फिर (सं. वलित्वा, अप. वलिअ)। विशेष रूप से। माता। वड़ी (वृद्ध, वड्ड)।

८—व. स। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।
९—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। काव्यलिग।

कथारंभ

१०

दक्खिण दिसि देस विद्रभ अति दीपत,
पुर दीपत अति कुँदणपुर
राजत अेक भीखमक राजा,
सिरहर अहि - नर - असुर - सुर

११

पंच पुत्र ताइ, छठी सु पुत्री,
कुँव्रर रुकम कहि विमळ-कथ
रुकम-बाहु अनइ रुकमाळी,
रुकमकेस नइ रुकमरथ

१० विदरभ - धर दच्छिन दिसा कुदनपुर सु विवेक
नाग सु-नर सुर-असुर मधि सिरे भीम नृप अेक
११. पाँच पुत्र, अेकै सधू, ताको रुकमिनि नाँउ
लखत नेक जाकी छटा मोहि रहत सव गाँउ
प्रथम कुँवर रुकमी वडो, रुकमबाहु अवरेखि
रथ, माली, अरु केस के आदि रुकम दे देखि

१०—दक्षिण । दिशा मे । देश । विदर्भ । वहुत । शोभित हे । नगर । शोभा देता है । बहुत । कुडिनपुर । विराजता है । एक । भीष्मक नाम वाला । राजा । शिरोधार्य, शिरोमणि । नागो, मनुष्यो, दैत्यो और देवताओ (का) ।
११—पाच । पुत्र । उसके । छठी । सुदर पुत्री । रुक्मकुमार । कहते है । उज्ज्वल कीर्तिवाला । रुक्मवाहु । और (अन्यत्) । रुक्ममाली । रुक्मकेश । और (अनइ) । रुक्मरथ । (रुक्म=सोना) ।

१०—(१) विदरभति ।
१०—व. स. । अनुप्रास । छेकानुप्रास । शब्दार्थावृत्ति दीपक । लाटानुप्रास ।
११—व. स. । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास ।

रुक्मिणी की बाल्यावस्था

१२

रामा-अवतार, नाम तण्इ रुकमणि,
मानसरोवरि मेरु - गिरि
बाळक-गति किरि हॅस-चउ बाळक,
कनक-वेलि बिहुँ पान किरि

१३

अनि वरस वधइ, तण्इ मास वधइ अे,
वधइ मास, तण्इ पहर वधंति
लखण बत्रीस बाळ - लीला - मइ
राज-कुँवरि ढूलड़ी रमंति

१२. लछमी को अवतार, मानस-मेरु समान तन
हस चाल आचार, कनक - वेल दु-पती वरन
१३. और वरस वाधै जितौ, तितौ वधै वह मास
और मास त्यो वह पहर, जा विधि कामी-आस
पूरे लछन वतीस, बालपनै लखियै सु अँग
सब सखियन मे ईस ह्वै गुड़ियाँ खेलन लगी

१२—लक्ष्मी (या सीता) की अवतार । नाम । उसका । रुक्मिणी । मानसरोवर मे । सुमेरु-पर्वत पर । बालक-दशा या वाल्यावस्था (मे) । मानो । हस का । वच्चा । सोने की लता । दो पत्तो वाली (पर्ण) । मानो ।
१३—दूसरा (वालक) । वर्ष मे । वढता है । उतना । महीने मे । वढती है । यह । (वह) बढ़ता है । महीने मे । उतना यह । पहर मे । वढती है । लक्षण । वत्तीस । वाल-क्रीडा-मयी । राजकुमारी । गुडिया । खेलती है ।

१२—(३) वाळ-गति, वाळ-क्रति (=बाल-कृति, बाल-क्रीड़ा में), बाळक्रति ।

१२—व. स. । अनुप्रास । लाटानुप्रास । उत्प्रेक्षा । यथासख्य ।
१३—व. स । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । शब्दार्थावृत्ति दीपक । अतिशयोक्ति । स्वभावोक्ति (चतुर्थ चरण) ।

१४

सँगि सखी सीळि कुळि वैसि समाणी,
पेखि कळी पदमणी परि
राजति राज-कुँवरि राय-अंगणि
उडियण वीरज अंबहरि

वयःसंधि और यौवन का वर्णन

१५

सइसव तनि सुसुपति, जोवण न जाग्रति,
वैस-संधि सुहिणा सु वरि
हिव पळ-पळ चढतउ-जि होइस्यइ,
प्रथम ग्यान अेहवी परि

१४ कलियन प्रफुलित पदमिनी, ज्यों तारनि मधि चंद
राजागन राजति कुँवरि, तनु सु अ-तनु कछु मद
१५. सोवत सैसव जानि, जोवन जाग्यो तिय सु-तन
अबै अधिक है वानि, प्रथम ग्यान ज्यो सु-रस-मै

१४—साथ मे। सखिया। स्वभाव मे। कुल मे, कुलीनता मे। वयस् (उम्र) मे। बराबर। दिखायी पडती है। कलियाँ, कलियो के। कमलिनी (की)। समान, जैसे। शोभा देती है। राजकुमारी। राजागण (राजा के आगन) मे। उडुगण, तारे। रज मे रहित, निर्मल; या द्वितीया का चन्द्रमा। अबर (आकाश) मे।

१५—शैशव (की)। शरीर मे। सुषुप्ति (गहरी निद्रा की अवस्था)। यौवन (की)। नही (थी)। जागर्ति, आविर्भाव। वय सधि, बाल्य और यौवन के मिलने की अवस्था। स्वप्न के समान (थी)। अब। पल-पल। चढता हुआ ही। होगा (यौवन)। पहला। ज्ञान (बोध) हुआ। ऐसी। भाँति।

१४—व स। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। उपमा।
१५—व स.। अनुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। उपमा।

१६

पहिलउँ मुखि राग प्रगट थिउ, प्राची
अरुण कि अरुणोदय अँबर
पेखे किरि जागिया पयोहर
संझा-वंदण रिखेसर

१७

जँप जीव नही, आवंतउ जाणे
जोवण जावणहार जण
बहु विळखी वीछड़तइ बाळा
वाळ-सँघाती बाळपण

१६. मुख पूरव देखे अरुन, अरुन-उदय जिय जानि
जोवन-साखी कुच सु रिखि उठे नियम-छति मानि
१७. जोवन आवत जानि, चेत न पावत छिनक मन
वाल - सँघातिनि मानि वाल-दसा विछुरत झुरति

१६—पहले (प्रथ=पढ=पह+इल्लउ)। मुख-मंडल में। लालिमा। प्रकट। हुआ (स्थित थिय)। पूर्व दिशा (मे)। लालिमा। क्या। प्रात.काल के समय। आकाश मे। (उसको) देखकर। मानो। जगे। कुच रूपी। सध्यावदन (के लिए)। ऋषीश्वर।

१७—चैन, शाति, स्थिरता। जीव मे, जी मे। नही। आता। जानकर। यौवन (को)। जाने वाला, क्षणस्थायी। जन, व्यक्ति, मित्र। वहुत। विकल हुई (विलक्ष)। विछुडते हुये। वाला। वाल्यकाल के साथी। वचपन, वाल्यावस्था (के)।

१६—(२) अवर।

१६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। संदेह। उत्प्रेक्षा।

१७—व. स। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।

१८

आगळि पित-मात रमंती आँगणि
काम-विराम छिपाड़ण काज
लाजवती-अँगि अेह लाज विधि,
लाज करंती आवइ लाज

१९

सइसव सु-जु सिसिर वितीत थयउ सहु,
गुण गति मति अति अेह गिणि
आप तणउ परिग्रह ले आयउ
तरुणापउ - रितुराउ तिणि

१८. मात-पिता आगे तिया दुरवति काम - समाज
आवति लाज हिये किये अति लजेरि को लाज
१९. वीते सैसव - सिसिर के जोवन आइ वसंत
रूप-चतुरई बहु विधिनि करी वस करन कंत

१८—आगे। पिता-माता (के)। खेलती हुई। आगन मे। काम के निवास-स्थान-भूत अगो को। छिपाने के लिए। लाजवती के अंगों में। ऐसी। लज्जा। भाति। लज्जा। करती हुई को। आती है। लज्जा।

१९—बचपन। वही। शिशिर ऋतु। व्यतीत। हुआ। सब। गुण, चाल और मन की। अतिशयता, श्रेष्ठता, गुणो के, व्यवहार के, मन के सौंदर्य की वृद्धि। यह समझो। अपना। परिवार, समाज। ले। आया। यौवन-रूपी वसत। उस (शरीर) मे।

१८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। अत्युक्ति (लज्जा की)। स्वभावोक्ति।

१९—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। साग रूपक।

२०

दळ फूलि विमळ वण, नयण कमळ-दळ,
कोकिळ कंठ सुहाइ सर
पाँपणि-पंख सँव्रारि नव्री परि
भ्रूँहारे भ्रमिया भ्रमर

२१

मळयाचळ सु-तनु, मळय मन मउरे,
कळी कि काम अँकूर कुच
तणउ दखिण-दिसि दखिण त्रिगुण-मइ
ऊरध सास समीर उच

२०. कोकिल कठ सुहावनो, नैन कमल छबि देत
वरुनी पांख सँवारि नव भौंह भँवर तिहि हेत
२१. मलयानिल लागे वधत काम-कली कुच दोइ
तिनहि लखत तुरतहि त्रिविध स्वास समीरो होइ

२०—शरीर। खिल उठा। निर्मल। वन। नेत्र। कमलो के समूह। कोयल (का)। गला, स्वर। सुहावना। स्वर, बोली। वरौनी रूपी पाखे। सजाकर। नयी भाति से। भौह रूपी (राज भवारे)। मँडराने लगे। भौरे।

२१—मलय-पर्वत। सुदर शरीर। चंदन वृक्ष। मन रूपी। मुकुलित हुआ। कली। क्या, मानो। काम की। अकुरित हुए। स्तन। दक्षिण दिशा का। अनुकूल। शीतल-मद-सुगध इस प्रकार तीन गुणों वाला। तेज साँस, उच्छ्वास। पवन। ऊँचा, वेग से चलने वाला।

२०—(१) वरण चँपक दल।

२०—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। साग रूपक।
२१—व. स। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। साग रूपक। सदेह (या उत्प्रेक्षा)।

२२

आणँद सु-जु उदउ, उहास हास, अति
राजति रद रिख-पंति रुख
नयण कमोदणि, दीप नासिका,
मेन केस, राकेस मुख

२३

वधिया तनि - सरवरि वैसि वधंती
जोवण तणउ, तणउ जळ, जोर
कामणि-करग सु वाण काम-रा,
दोर सु वरुण तणा किरि दोर

२२. उदय अनंद, सु-हास नित होत चाँदनी भाँति
आनन चद समीप अै रदन रिखन की पाँति
घूँघरवारे चीकने स्याम केस निसि-काँति
नैन कमोदिनि ज्यो लसत, नासा दीपक भाँति

२३ जोवन-जल के जोर कामिनि-तन सरवर भयो
वाँह वरुन की दोर, मैन-वान कर-आँगुरी

२२—आनद । वही । चद्र का उदय । उजास, चाँदनी । हँसी । वहुत । शोभा देते है । दांत । नक्षत्रों की पातो के समान । नेत्र । कुमुदिनी । दीपक (की लौ) । नाक । अधेरी रात या अन्धकार । वाल । चंद्रमा । मुख ।

२३—वढे । शरीर मे । सरोवर मे । (रात्रि-रूपी) अवस्था के । वढते हुए । यौवन का । जल का । जोर, वेग । कामिनी की । अगुलियां (कराग) । वाण । काम के । भुजा (दोस्) । वरुण के । मानो । पाश (दोरक, डोर) ।

२२—व स । अनुप्रास । यमक । साग रूपक । उपमा (रुख=समान) ।

२३—व स. । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । यमक । साग रूपक । उत्प्रेक्षा ।

२४

कामणि-कुच कठिण कपोळ करी किरि,
वैंस नव्री विधि वाणि वखाणि
अति स्यामता विराजति ऊपरि,
जोवणि दाण दिखाळिया जाणि

२५

धर-धर-स्रिंग सधर सु-पीन पयोधर,
घणूं खीण कटि अति सु-घट
पदमणि-नाभि प्रियाग तणी परि,
त्रि-वळि त्रि-वेणी, स्रोणि तट

२४. करी-कुभ ज्यो कुच कठिन, मो पै वरनि न जाइ
कछुक स्यामता यो लसत, जोबन-गज-मद भाइ ·
२५. कुच गिरि-तट, धर कटि वनी, नाभि प्राग अवरेखि
त्रिवलि त्रिवेनी जानि जिय, स्रौनि करारे पेखि

२४—कामिनी के स्तन। कठोर। कुभस्थल। हाथी के। मानो। अवस्था, वयस्। नयी। विविध (भाति की)। वाणी से। बखानते है (कविजन)। बहुत। श्यामता। शोभा देती है। ऊपर। यौवन ने। मद (दान)। दिखलाये प्रकट किये। मानो।

२५—धरा को धारण करने वाले (पर्वत) के शिखर। सुदृढ, कठोर। अतीव पुष्ट। कुच। बहुत। क्षीण, कृश। कमर। बहुत। सुगठित। पद्मिनी की नाभि। प्रयाग। की। भांति। त्रिवली, उदर पर पडने वाले तीन वल। त्रिवेणी, गगा, यमुना और सरस्वती की धाराए। नितंब। किनारे, करारे।

२४—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उत्प्रेक्षा।
२५—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। रूपक। उपमा।

२६

नीतंवणि-जंघ सु करभ निरुपम,
रंभ-खंभ विपरीत-रुख
जुअळि नाळि तसु गरभ जेहवी,
वयणे वाखाणइ विदुख

२७

ऊपरि पद-पलव पुनरभव ओपंति,
त्रिमळ कमळ-दळ ऊपरि नीर
तेज कि रतन कि तार कि तारा,
हरि हँस-सावक ससि-हर हीर ?

२६. जघ नितविनि की सु-भर कदली विमुखे मानि
पिडुरी रंभा-गरभ ज्यो कवि-जन कहै वखानि
२७ नख राजत पद-पदुम पर ज्यो सतपत-छद नीर
मनहुँ रतन, रूपो, नखत, सूरज-सुत, ससि हीर

२६—नितविनी (कामिनी) की जघाए। सुन्दर। कलभ, हाथी का बच्चा (कलभ की सूंड)। अनुपम। केले के खभे। उलटे रुख वाले। दोनो। पिडलिया। उसके (केले के)। भीतरी भाग जैसी (कोमल)। वचनो से। वर्णन करते हैं। विद्वान (विद्वस्)।
२७—ऊपर। पल्लवो के समान चरणो के। नख (पुनर्भव)। शोभा देते है। स्वच्छ। कमलो के पत्तो के। ऊपर। जल (के बिंदु)। तेज। या। रत्न। या। मोती। या। तारे। सूर्य। हस के बच्चे। चन्द्रमा (शशधर)। हीरे।

२६—व. स। अनुप्रास। रूपक। उपमा।
२७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। सदेह।

विद्या-पठन

२८

व्याकरण, पुराण, सम्रिति, सासत्र विधि,
वेद च्यारि, खट अंग विचार
जाणि चतुरदस चउसठि जाणी,
अनॅत-अनॅत तसु मधि अधिकार

प्रेम का उदय

२९

साँभळि अनुराग थयउ मनि, स्यामा
वर-प्रापति वंछती वर
हरि-गुण भणि ऊपनी जिका हरि,
हरि तिणि वंदइ गव्रि-हर

२८. आठ व्याकरण, दस-असट समृति, समान पुरान
वेद चारि, खट अंग फुनि विद्या चतुरदस जान
चौसठि कला प्रवीन मीन-नैन रुकमिनि सुबुधि
भयी अधिक आधीन करि विचार वहु विधि सु मन

२९. गोरी गुन सुनि स्याम के चाह धरी वर काज
पूजति राग भये हिये गौरी-हर वर काज

२८—व्याकरण। पुराण। स्मृतियाँ, धर्मशास्त्र। शास्त्र, दर्शन-शास्त्र। विविध। वेद। चार। छह। वेदाग। आलोचन। जानकर। चौदह विद्याए। चौसठ कलाएं। जानी। वहुत-वहुत, वहुत अधिक। उनमे। प्रवीणता।

२९—(गुणो को) सुनकर। प्रेम। हुआ। मन मे। रुक्मिणी। वर की प्राप्ति। चाहती है। सुन्दर। कृष्ण के गुणो के। प्रति (भणित्वा, भणिअ)। उत्पन्न हुई। जो। इच्छा, उमग। उमंग से। उससे। वदना करती है। गौरी और महादेव (की)।

२८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। दीपक।

२९—व. स। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। मुक्तपदग्राह्य यमक।

विवाह-मंत्रणा

३०

ईखे पित-मात अेरिसा अङ्गयङ्
विमळ विचार करइ वीङ्गाह
सुंदर, सूर, सीळ-कुळ करि सुध
नाह क्रिसन सरि सूझइ नाह

३१

प्रभणंति पुत्र इम मात-पिता प्रति,
अम्हाँ वासना इसी वसी
ग्याति किसी राजङ्गियाँ ग्ङ्गाळाँ,
किसी जाति, कुळ - पाँति किसी ?

३०. मात-पिता देखे सुअँग करि विवाह की चीत
क्रिसनचद्र ठहराइ वर दीन-लोक को मीत
३१. सुनि रुकमी वोल्यो सतरि, मो मन यहै सुहाति
ग्वाल-राजवी सो, कहो, कहाँ सगाई - पांति ?

३०—देखकर (ईक्ष्) । पिता-माता । ऐसे (ईदृश, अेरिस), विवाह के योग्य । अग । निर्मल । विचार, मंत्रणा । करते है । विवाह (का) । रूपशाली । शूरवीर । शील और कुल मे शुद्ध । वर, पति (नाथ) । कृष्ण के । समान (सदृश, सरिस) । दिखायी पड़ता है । नही ।

३१—कहता है । वेटा । यो । माता-पिता से । हमारे (स. अस्माकं, अप. अम्ह) । भावना, विचार । ऐसी (ईदृशी) । वसी है । संबंध, नाता (ज्ञाति) । कैसी । राजवंशियो की (राजपति) । ग्वालो की (गोपालक) । कैसी । (कृष्ण की) जाति । कुल और पाँति rank । कैसी (कीदृशी) ।

३०—व. स. । यमक । असम ।

३१—व. स. । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास ।

३२

सु जु करइ अहीरॉ सरिस सगाई
ओळाँडे राज-कुळ इता
व्रिद्ध-पणइ मति कोइ वेसासउ,
पॉतरिया माता - पिता

३३

पित-मात पयंपइ, पूत ! म पाँतरि,
सुर नर नाग करइ जसु सेव्र
लिखमी समी रुकमणी लाडी,
वासुदेव्र सम सुत-वसुदेव्र

३२. छॉड़ि राज-कुल ग्वाल सों करत ब्याह की बात
जरा भये भूलत सबै, कहा मात, कहा तात ?
३३. मत भूलहि रुकमी कुँवर !, कहत मात अरु तात
रुकमिनि लखमी जानि जिय, वासुदेव बल-भ्रात

३२--यह जो । करते है । अहीरो के (आभीर) । साथ । संबंध (स्व्रक=सग+आई) । उल्लंघन करके । छोडकर । राज-वश । इतने । वुढ़ापे मे । मत । कोई । विश्वास करो । बावले हो गये (प्रमत्त) । माता और पिता ।

३३—पिता और माता । कहते है (प्रजल्प्, पयप) । हे पुत्र । मत । बावलापन कर । देवता । मनुष्य । नाग, पाताल-वासी । करते है । जिसकी । सेवा । लक्ष्मी के । समान । रुक्मिणी । लाड़ली । विष्णु के । समान । वसुदेव के पुत्र, श्रीकृष्ण ।

३२—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास ।

३३—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । यमक । लाटानुप्रास । उपमा ।

३४

माव्रीत्र-म्रजाद मेटि वोलइ मुखि,
सु-वर न-को सिसुपाल सरि
अति अँबु-कोपि कुँव्नर ऊफणियउ,
वरसाळू वाहळा वरि

३५

गुरु-गेहि गयउ गुरु-चूक जाणि गुरु,
नाम लियउ दमघोख्व नर
हेक वडउ हित हुव्नइ पुरोहित !,
वरइ सुसा सिसुपाळ वर

३४. मरजादा माँ-वाप की वोलत कुँवर मिटाइ
सु जल कोप के वर वध्यो वरिखा-नारे भाइ
३५. वडी चूक गुरु-जनन की जानि गयो गुरु-गेह
वहिनि वरै सिसुपाल को, प्रोहित ! हित वर अेह

३४—माता-पिता की मर्यादा को । मिटाकर । वोलता है । मुख से । सुन्दर वर । नही कोई (न कोऽपि) । शिशुपाल के । समान । वहुत । जल के समान क्रोध से, क्रोध-रूपी जल से । रुक्मकुमार । उफना, उमड चला (उप्पण) । वरसाती । नाले के । समान ।

३५—गुरु अर्थात् पुरोहित के घर पर । गया । गुरुजनो की, माता-पिता की । चूक, भूल । जानकर । वडी । नाम । लिया । दमघोष (का) । वीर । अेक । वडा । हित, लाभकारी वात । हे पुरोहित । वरण करे, व्याहे । स्वसा, वहन । शिशुपाल वर को ।

३५—(२) नँदघोख ।

३४—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । असम । रूपक । उपमा ।

३५—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । यमक ।

३६

विप्र विलँब न कीध जेणि आइस वसि,
वात विचारि न भली-बुरी
पहिलुँ-इ जाइ लगन लेइ पहुतउ
प्रोहित चंदेवरी-पुरी

३६. बिना विचारे बात भली-बुरी हरबरि चल्यौ
लगन लिये परभात प्रोहित गयो चँदेरि पै

३६—ब्राह्मण ने । देर । नही । की । जिसने, उसने । आदेश, आज्ञा (के) । कारण । बात । सोची । नही । हित-अहित की । (कुछ विचारने के) पहले ही । जा । लग्न । लेकर । पहुँचा । पुरोहित । चदेरी नगरी (में) ।

३६—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । अतिशयोक्ति (तृतीय चरण) ।

शिशुपाल का आगमन

३७

हुइ हरखि घणइ सिसुपाळ हालियउ,
ग्रंथे गायउ जेणि गति
कुण जाणइ, सँगि हुवा केतळा
देस-देस - चा देस-पति

३८

आगमि सिसुपाळ मंडिजइ ऊछव,
नीसाणे पड़ती निहस
पट-मंडप छाइजइ कुँदणपुरि,
कुंदण-मइ बाभइ कळस

३७. ग्रथनि मे ज्योंही कह्यो, त्योही चलि सिसुपाल
आयो, नर-वर अनगिने लिये वराती हाल
३८. सिसुपालहि आवत समुझि उच्छव पटह वजाइ
कियो, कलस धरि कनक के, पुर सु-पटनि वर छाइ

३७—होकर। हर्ष मे। वहुत। शिशुपाल। चला। ग्रंथो मे, शास्त्रो मे। कहा। जिस प्रकार से। कौन जाने। साथ मे। हुअे, चले। कितने। अलग-अलग देशो के। राजा।

३८—आगमन पर। शिशुपाल के। किये जाते है। उत्सव। नगाडो पर। पडती है। चोट। कपडो के मडप। खडे किये जाते है। कुन्दनपुर मे। सोने के। वाधे जाते है (वध्यन्ते-वज्झइ)। कलस।

३७—व० स०। अनुप्रास। लाटानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश।
३८—व० स०। अनुप्रास। यमक।

३९

ग्रिह-ग्रिह प्रति भीति, सु - गारि हीगळू,
ईंट फिटक-मइ चुणी असंभ
चंदण पाट, कपाट - इ चंदण,
खुंभी पनाँ, प्रवाळी खंभ

४०

जोइ जळद पटळ - दळ साँवळ-ऊजळ,
घुरइ निसाण सोइ घण-घोर
प्रोळि-प्रोळि तोरण परठीजइ,
मंडइ किरि तंडव गिरि मोर

३९. गारो हीगरु, फटिक की ईंटै, कुभी नील
थभ प्रवाल, कपाट अरु सरदर चंदन छील
४०. वाम पॅचरॅगी चीर-जुत घटा, निसान सु गाज
पौरि बॅधे तोरण सबै करत मोर को काज

३९—प्रत्येक घर मे। भीते। अच्छे। गारे मे। ईंगुर के। ईंटे। स्फटिकमयी। चुनी। अद्‌भुत। चन्दन के। तख्ते। किवाड़। भी। चन्दन के। कुंभी, खभों के आधार या नीचे के भाग। पन्नो की। मूगो के। खभे (स्कंभ)।
४०—देखो, जानो। बादल। मडपो के समूह। श्याम और श्वेत। बजते है। नगाडे। वही। बादल की गर्जना। पौर-पौर पर (प्रतोली)। तोरण। स्थापित किये जाते है (परिस्थित)। करते है। मानो। तांडव, नृत्य। पहाडों पर। मोर।

३९—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। उदात्त।
४०—व० स०। अनुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। रूपक। उत्प्रेक्षा।

४१

राजान-जान सँगि हुँता जु राजा,
कहइ सु दीध निलाटि कर
दूरा नयर कि कोरण दीसइ,
धवळागिर किना धवळहर ?

४२

गावइ करि मंगळ चढि-चढि गउखइ,
मनइ सूर सिसुपाळ-मुख
पदमणि अनि फूलइ परि पदमणि,
रुकमणि कामोदणिय रुख

४१. करि नैनन परि छाँह, राजा बोलै, करन की
धौरे घर पुर माँह, मेघ-घटा मनु धवलगिरि
४२. गोख चढी गावैं सबै पदमिनि पदमिनि-भाइ
सूरज लखि सिसुपाल-मुख रुकमिनि कुमुदिनि छाइ

४१—राजा की बरात के (यज्ञ-जण्ण-जान)। साथ मे। थे। जो। राजा। कहते है। वे। दिये हुअे। ललाट पर। हाथ। दूर पर। नगर। या। घटा। दिखायी पडता है। (हिमाच्छादित) धवलाचल। अथवा। धवलगृह, महल।

४२—गाती हैं। करके। मगल। चढ-चढ कर। झरोखो मे। मानकर, या मानती है। सूर्य। सिसुपाल के मुख को। स्त्रिया। दूसरी। खिल रही है। समान। कमलिनी (के)। रुक्मिणी। कुमुदिनी (के)। समान (म्लान हो रही है)।

४१—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। स्वभावोक्ति। सदेह।

४२—व० स०। अनुप्रास। यमक। पुनरुक्ति-प्रकाश। उपमा। परिकराकुर [पदमणि (स्त्री, कमलिनी) और कामोदणी (कुमुदिनी, कुत्सित मोद वाली=दुखी) शब्द साभिप्राय है।]

संदेश-प्रेषण

४३

जाळी-मगि चढि-चढि पंथी जोवइ,
भुवणि सु तणु, मन हरि भिळित
लिखि राखे कागळ नख-लेखणि,
मसि काजळ आँसू-मिळित

४४

तितरइ अंक देखि पवित्र गळि-त्रागउ,
करि प्रणपति लागी कहण
देहि सँदेसउ लगी द्वारिका,
वीर वटाऊ ब्राहमण !

४३. काजर मसि, लेखनि सु नख, मिलि अँसुवा-जल-पूर
लिखि पाती, जाली-मगनि देखति पंथी दूर
४४. करि प्रनाम, गर लखि तगा, देव जानि जिय माँह
वीर वटाऊ विप्र ! सुनि, तुरत द्वारिका जाह

४३—जाली के मार्ग से। चढ-चढ कर। पथिक। देखती है। घर मे। शरीर। मन। कृष्ण मे। मिला हुआ। लिखकर। रख लिया। पत्र। नख-रूपी कलम से। स्याही (से)। काजल (की)। अश्रुजल से मिश्रित।
४४—उतने मे, इतने मे। एक। देखकर। पवित्र। गले मे तागा अर्थात् जनेऊ वाला, ब्राह्मण। करके। प्रणाम (प्रणिपात)। लगी। कहने। दे। संदेश। तक। द्वारका। हे भाई। हे पथिक। हे ब्राह्मण।

४३—(१) मन तसु। मिलित।
४४—(१) हेक। दीठ।

४३—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। रूपक।
४४—व० स०। अनुप्रास। स्वभावोक्ति (चतुर्थ चरण)।

४५

म-म करिसि ढील, हिव्र हुअे हेक-मन
जाइ जादव्राँ इँद्र जत्र
मग्हरइ मुख हूँतॉ तग्हरइ मुखि
पग-वंदण करि देहि पत्र

४६

गइ रवि-किरण, ग्रिहे थइ गहमह,
रह-रह कोइ वहि रहे रह
सु - जु दुज, पुरा नीसरे सूतउ,
निसा पडी, चालियउ नह

४५. ढील करे जिन, ले यहै पाती तन-मन साथ
कहि प्रनाम दीजो तुरत जादव-पति के हाथ
४६. निसा पडी, रवि आँथयो, गह निकसे गहराइ
नगर छाँडि वाहर रह्यो, वाँभन चित वहराइ

४५—मत, मत । कर । देर । अव । होकर । अेकनिष्ठ । जा । यादवो के अधि-पति, कृष्ण । जहा (यत्र) है । मेरे मुख । से । तेरे, अपने । मुँह द्वारा । चरण-वदना । करके । दे । पत्र ।

४६—चली गयी । सूर्य की किरण । घरो मे । हुई । गहगहाट, हलचल । रह-रह कर, थोडी-थोडी देर के वाद । कोई (अेकाध व्यक्ति) । चल रहे है । राह पर । वह जो । व्राह्मण । नगरी से । निकल कर । सो गया । रात । पडी । चला । नही ।

४५—(४) कहि>करि
४६—(२) कोइ वह रही रह । हुइ वह रही रह । वह हय रही रह ।

४५—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । पुनरुक्तिप्रकाश । यमक ।
४६—व० स० । अनुप्रास । पुनरुक्तिप्रकाश । यमक ।

४७

दिन-लगन सु नेडउ, दूरि द्वारिका,
भउ पहुँचेस्याँ किसी भति
साँझि सोचि कुंदणपुरि सूतउ,
जागिउ परभाते जगति

द्वारिका-वर्णन

४८

धुनि वेद सुणति कहुँ, सुणति संख-धुनि,
नद-झल्लरि, नीसाण-नद
हेका कह, हेका हीळोहळ,
सायर - नयर सरीख सद

४७. द्वारावति है दूर अति, लगन-दिननि की भीर
सोचि पर्यो पुर-सविधि मे, जाग्यो गोमति-तीर
४८. कहूँ वेद, कहुँ संख-धुनि, कहुँ झालरि-नीसान
कहूँ सु नर-रव अेकठो, नगर सिंधु परमान

४७—लग्न का दिन । निकट । दूर । द्वारका । भय । पहुँचेंगे । किस भाति । सध्या समय । सोच कर । कुन्दनपुर मे । सोया । जागा । प्रात.काल । द्वारका मे ।

४८—वेद-पाठ की ध्वनि । सुनायी पडती है । कही । सुनायी पड़ती है । शंख वजने की ध्वनि । झालरो का शब्द । नगाड़ो का शब्द । एक ओर । (नागरिकों का) शोर । एक ओर । लहरों का शोर । सागर और नगर में । समान, एक-सा । शब्द ।

४७—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास ।

४८—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । यमक ।

४९

पणिहारि-पटळ-दळ वरण चँपक-दळ
कळस सीसि करि करि कमळ
तीरथि-तीरथि जंगम तीरथ
विमळ ब्राह्मण जळ विमळ

५०

जोवइ जाँ ग्रहि-ग्रहि जगन जागवइ,
जगनि-जगनि कीजइ तप-जाप
मारगि-मारगि अंब मव्वरिया,
अंबि-अंबि कोकिल - आलाप

४९ सीस घरा हाथनि कमल, चंपक-रँग पनिहारि
खेत-खेत जोगेसुवर सु-जल गोमती पारि
५० सोयो अगनि जगाइ कै करत जगनि तप-जाप
पथ माँह मौरे सुरभि, तहाँ सु पिक-आलाप

४९—पनिहारियो के झूलरों के समूह, अनेक झूलरे। रग। चपे के दलो के समान। कलस। सिर पर। करके। हाथ मे कमल। प्रत्येक घाट पर। चलने वाले। तीर्थ, तीर्थ के समान पवित्र तपस्वी। निर्मल। ब्राह्मण। जल। निर्मल।

५०—देखता है। जहा। घर-घर मे। यज्ञ। करते है (याजय्)। यज्ञ-यज्ञ मे। किये जाते है। तप और जप। प्रत्येक मार्ग मे। आम के पेड़। बौरे हुए है। प्रत्येक आम के पेड पर। कोयल का। गान।

४९—(२) कल>करि।

४९—व० स०। अनुप्रास। लाटानुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। यमक। उपमा (वरण चंपक-दळ)।

५०—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। एकावली।

५१

संप्रति अे किना, किना अे मुहिणउ ?
आयउ हूँ अमरावती ?
जाइ पूछियउ, तिणि इम जँपियउ.
देव ! सु आ द्वारामती

ब्राह्मण और कृष्ण

५२

सुणि स्रवणि वयण मन माँहि थयउ सुख,
क्रमियउ तासु प्रणाम करि
पूछत-पूछत गयउ अँतहपुरि,
हुअउ सु-दरसण तणउ हरि

५१. साँच किधौ यह सपन है, आयो सुर-पुर मांह
पूछं एकनु यो कह्यो, देव ! द्वारका ठॉह
५२. सुने स्रवन आनँद भयो, करि प्रनाम वहु वार
चलि पूछत-पूछत गयो, जहाँ कृष्ण को द्वार

५१—प्रत्यक्ष (साप्रत) । यह । अथवा (किं नु) । स्वप्न (अप० सुविणउ) । आया । मैं । देवपुरी मे । जिससे (या, जाकर) पूछा । उसने । यों । कहा (जल्प-जप) । हे ब्राह्मण देवता । वह । यह । द्वारका ।

५२—सुनकर । कानों से । वचन । मन मे । हुआ । सुख । चला (क्रम्) । उसको । नमस्कार । करके । पूछता-पूछता । गया । अन्त.पुर में । हुआ । सुन्दर दर्शन । कृष्ण का ।

५१—व० स० । लाटानुप्रास । यमक । अनुप्रास ।
५२—व० स० । पुनरुक्तिप्रकाश । अनुप्रास ।

५३

वदनारविंद गोविद वीखियइ
आळोचइ अप - आप - सूँ
हिव रुकमणी क्रितारथ हुइस्यइ,
हुवउ क्रितारथ पहिल हूँ

५४

ऊठिया जगति-पति अंतरजामी
दूरंतरी आवतउ देखि
करि वंदण आतिथ-ध्रम कीधउ,
वेदे कहियउ तेणि विसेखि

५३. देखि वदन गोविद को सोचि कहत मन माँहि
रुकमिनि ह्वै है भागिनी, भाग मोहि गहि बाँहि
५४. उठे जगत-पति तुरत ही दूरि बास द्विज जानि
त्यो कीनी पहुनाइती, ज्यों स्रुति कही बखानि

५३—मुख-कमल। कृष्ण का (गोपेन्द्र, गोविंद)। देखकर (वीक्ष्)। विचार करता है। अपने आप से, मन-ही-मन। अब। रुक्मिणी। कृतार्थ, धन्य। होगी। हुआ। कृतार्थ। पहले। मैं।

५४—उठे (उत्था)। जगत् के स्वामी। हृदय के भीतर रहने वाले; हृदय की बात जानने वाले। (अतर्=अन्तः-करण को, यामिन्=नियत्रण करने वाले)। दूर से। आता हुआ। देखकर। करके। वदना। आतिथ्य-धर्म, अतिथि के प्रति कर्तव्य, अतिथि-सत्कार। किया। वेदो मे, शास्त्रो मे। कहा। उससे। बढकर।

५३—व० स०। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। यमक। रूपक।
५४—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास।

५५

कस्मात् ? कस्मिन् ? किल मित्र ! किमर्थं ?
केन कार्यं ? परियासि कुत्र
ब्रूहि जनेन येन भो ब्राह्मण !
पुरतो मे प्रेषितं पत्र

५६

कुँदणपुरि हूँताँ, वसाँ कुँदणपुरि,
कागळ दीधउ अेम कहि
राजि लगइ मेल्हियउ रुकमणी,
समाचार इण माहि सहि

५५. कहाँ वसत ? जैंहौ कहाँ ? कौन काज ? केहि पास ?
मो आगे पांड़े ! कहो, पाती दीनी जास

५६. कुदनपुर में हौ वसौ, आयो हौ तुम पास
समाचार या भाँति है, पाती रुकमिनि आस

५५—किस (देश) से, कहां से, (आये हो) । किस (देश) मे, कहाँ, (रहते हो) । निश्चय ही । हे मित्र । किस लिए (आये हो) । किस से । काम है । जाते हो । कहाँ । कहो, बताओ । जन ने, व्यक्ति ने । जिसने । हे ब्राह्मण । सामने । मेरे । भेजा है । पत्र ।

५६—कुन्दनपुर से (आये है) । रहते है । कुन्दनपुर मे । पत्र । दिया । यो । कहकर । आप तक, आपके पास । भेजा । रुक्मिणी ने । खबर, सदेश । इस मे । सब ।

५५—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास ।
५६—व० स० । अनुप्रास । लाटानुप्रास ।

५७

आणंद-लखण रोमंचित आँसू,
वाँचत गदगद कँठ न वणइ
कागळ करि दीधउ करुणाकरि
तिणि तिणि-हि-ज ब्राह्मण तणइ

५८

देव़ाधिदेव़-चइ लाधइ दूव़इ
वाचण लागउ ब्राह्मण
विधि-पूरबक कहे वीनव़ियउ,
सरण तूझ असरण-सरण !

५७ आनँद रोम बढाय कै, गदगद गल, द्रिग नीर
विनु वाँचे कागद दयो द्विज-कर करुनाधीर
५८. आयसु लहि वाँचन लग्यो वाँभन पाती-गाथ
सब विधि यह विनती करी, सरन तुम्हारे नाथ !

५७—आनन्द के सूचक चिह्न । रोमाच । अश्रु । पढते । गद्गद्, भरा हुआ । गला । नही । वनता । पत्र । हाथ मे । दिया । दयानिधान ने । इस लिए । उसी । ब्राह्मण के ।

५८—देवताओ के स्वामी के । मिलने पर । आदेश के । पढने लगा । ब्राह्मण । विधि के साथ लिखी हुई शिष्टाचार की शव्दावली; या, विधि के साथ सब वाते । कहकर । निवेदन किया । शरण मे । तेरी । हे शरणहीनो के आश्रय ।

५७—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । यमक ।

५८—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास ।

रुक्मिणी का पत्र

५९

बळि-बंधण ! मूझ, सियाळ सिघ-बळि
प्रासइ, जउ बीजउ परणइ
कपिळ धेनु दिन पात्र कसाई,
तुळसी करि चंडाळ तणइ

६०

अम्ह कजि तुम्ह छंडि अव्वर वर आणइ,
अइठति किरि होमइ अगनि
साळिगराम सूद्र ग्रहि संग्रहि,
वेद-मंत्र मेछाँ वदनि

५९ वलि के बंधनहार ! सुनु, तो ते और जु मोहि
ब्याहै, तो जानो यहै स्यार सिघ-भख जोहि
विनु जाने जिय वधिक कों देइ गाइ द्विज जानि
तुलसी ज्यों चडाल-घरि, तोहि वरे विनु मानि
६०. तुमहि छाँड़ि औरहि वरौ, ज्यों जूठे करि होय
सिला गल्लकी सूद के, वेद-मंत्र बिय कोय

५९—हे वलि को वाधनेवाले । मुझे । शृगाल । सिह का भाग । खावे । यदि । दूसरा (द्वितीय) । ब्याहे (परि+णी) । कपिला गाय । दी गयी (दत्त-दिण्ण-दिन्न-दीन) । पात्र को, जिसको कोई वस्तु दी जाय । कसाई । तुलसी । हाथ मे । चाडाल के ।

६०—हमारे । लिए । तुमको । छोडकर । दूसरा । वर । लावे । जूठन (उच्छिष्ट) । मानो । होमे । अग्नि मे । शालिग्राम की शिला को । शूद्र के । घर मे । रखे । वेदों के मत्र । म्लेच्छों के । मुख मे ।

५९—व० स० । अनुप्रास । यमक । निदर्शना ।
३०—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । यमक । उत्प्रेक्षा । निदर्शना ।

६१

हरि ! हुअे वराह हअे हरिणाकुस,
हूँ ऊधरी पताळ-हूँ
कहउ, तई करुणा-मइ केसव्र !
सीख दीध किणि तुम्ह-सूँ ?

६२

आणे सुर-असुर, नाग - नेत्रे नहि
राखिय जइ मंदर - रई
महण मथे हूँ लीध मह-महण !
तुम्हाँ किणइ सीखव्या तई ?

६१. ह्वै वराह धर-रूप मोहि, हिरणाकुस कों मारि
तारी जब पाताल ते, कौनै सीख मुरारि !
६२. नेती करिकै नाग, मदिर-गिरि करिकै रई
सुर-असुरनि में भाग हौ लीनी मथि जलधि को

६१—हे हरि । होकर । वराह, शूकर । मारकर । हिरण्याक्ष को । मुझे । बचाया । पाताल से । कहो । तब । करुणामय । केशव । सीख, उपदेश । दी । किसने । तुमको ।

६२—लाकर । देवताओ और दानवो को । सर्प (वासुकि) रूपी नेती (रस्सी) से । नाथकर, बाधकर । रखी । जब । मदराचल-रूपी मथानी (मथनदड, झेरणा) । समुद्र को (महार्णव) । मथकर । मुझे । ली । हे । मधुमथन, मधुदैत्य को मारने वाले । तुमको । किसने । सिखाया, सीख दी । तब ।

६१—(४) तुम्हाँ सूँ ।
६२—(३) मूँ=हूँ ।

६१—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । यमक ।
६२—व० स० । अनुप्रास । यमक । लाटानुप्रास । रूपक ।

६३

रामा-अवतारि वहे रणि रावण
किसी सीख करुणा-करण !
हूं ऊबरी त्रिकुट-गढ हूंती
हरि ! बंधे वेळाहरण

६४

चौथिआ वारि वाहरि करि चत्र-भुज !.
संख चक्र धरि गदा सरोज
मुख करि किसूं कहीजइ माहव !
अंतरजामी - सूं आळोज ?

६३. समुद बांधि रावन हन्यो पुरी लंक सब जारि
हौ तारी पिय ! राम ह्वै, किननु कही, सु विचारि
६४. अन्तरयामी सो कहा मुख सो कहौं बनाइ
ले हथियारनि चतुरभुज ! दौरि कुमक करि आइ

६३—राम के या रामा (सीता) के। जन्म में। मारा (वध)। युद्ध में। रावण को। किसकी। सीख से। हे करुणा करने वाले। मुझे। बचाया। त्रिकूट गढ़, लंका। से। हे हरि। बांधकर। वेलाधरण, समुद्र।
६४—चौथी। बार। रक्षा के लिये बाहर आओ। हे चतुर्भुज। शंख। चक्र। धारण करके। गदा। कमल। मुंह से। क्या (कीदृश)। कहा जाय। हे माधव। अंतर्यामी से, हृदय की बात जाननेवाले से। हृदय का विचार (आलोच)।

६३—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक।
६४—व. स.। अनुप्रास।

६५

तथापि रहे न हूँ सकूँ, वकूँ तिणि,
त्रिया अनइ प्रेमातुरी
राज दूरि द्वारिका विराजउ,
दिन नेड़उ आयउ दुरी

६६

त्रिणि दीह लगन-वेळा आडा तइ,
घणूँ किसूँ कहिजइ आ घात ?
पूजा - मिसि आविसि पुरसोतम !
अँबिकाळये नयर आरात

६५. तउ वक बकति, न रहि सकति, त्रिया प्रेम-भरपूरि
दिन नेरो आयो बुरो, तुम प्रीतम ! अति दूर
६६. लगन वीच है तीनि दिन, मेरी तुम तन आस
देवी के पूजा मिसनु अैहौ नगरी पास

६५—तो भी । रह । नही । मै । सकती हूँ । बकती हूँ । इसलिए । स्त्री । और । प्रेम से आतुर । आप । दूर । द्वारिका मे । विराजते हो, रहते हो । दिन । निकट । आया । दुरित, बुरा ।

६६—तीन । दिन (दिवस, दिअह) । लग्न की वेला के वीच में । उस । अधिक । क्या । कही जाय । यह । घात, षड्यंत्र । पूजा (के) । वहाने । आऊगी । हे पुरुषो मे श्रेष्ठ । अबिकालय मे, देवी के मदिर मे । नगर के । निकट ।

६५—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । समुच्चय ।
६६—व० स० । अनुप्रास ।

कृष्ण का कुंदनपुर आना

६७

सारंग सिळीमुख साथि सारथी
प्रोहित जाणणहार पथ
कागळ-चउ ततकाळ क्रिपा-निधि
रथि बइठा साँभळि अरथ

६८

सुग्रीव़सेन नइ मेघ-पुहप सम-
वेग बळाहक इसइ वहंति
खॅति लागउ त्रिभुव़ण-पति खेड़इ,
धर गिर तर साम्हा धाव़ंति

६७. धनुख-बान लै हाथ, सारथि रथ वैसारि कै
अरथ सुन्यो जदुनाथ, द्विज-वर भेदू पंथ को
६८. सेन बलाहक मेघ सुभ, सुभ सुग्रीव हरि हेतु
दौरत साम्हे ये, मनो दौरत गिरि-पुर-खेत

६७—शार्ङ्ग, सीग का बना, विष्णु का धनुष जो सीग से बनाया गया था। वाण। साथ मे। रथ को चलानेवाला। पुरोहित। जाननेवाला। मार्ग को कागद, पत्र, का। तुरत। कृपानिधान। रथ पर। वैठे। सुनकर। अर्थ।

६८—सुग्रीवसेन। और। मेघपुष्प। समवेग। बलाहक। ऐसे। चलते है। लगन। लगा हुआ। तीनो लोको का स्वामी, कृष्ण। हाँकता है। पृथ्वी। पहाड़। पेड़। सामने। दौडते है, दौड़ते हुए आते है।

६८—(४) पुर>तर।

६७—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास।

६८—व० स०। अनुप्रास। स्वभावोक्ति।

६९

रथ थंभि सारथी, विप्र छंडि रथ,
अउ पुर, हरि बोलिया इम
आयउ कहि कहि नाम अम्हीणउ
जा सुख दंइ स्याम-नइ जिम

७०

रहिया हरि सही, जाणियउ रुकमणि,
कीध न इतरी ढील कई
चिंतातुर चिति इम चिंतव्रती
थयी छीक, तिम धीर थयी

६९. रथ थँभाइ बोले क्रिसन, यह कुंदनपुर पास
देव ! बधाई देहु तुम, पूरहु रुकमिनि-आस
७०. सोचु करत मन रुकमिनी, रहे, न आये ईस
छीक भये धीरज थयो, रही नवाये सीस

६९—रथ को। ठहराया। सारथी ने। ब्राह्मण ने। छोडा। रथ को। यह। नगर (आ गया)। कृष्ण। बोले। इस प्रकार। आया हुआ। कहो। कहकर, लेकर। नाम। हमारा। जाओ। सुख। दो। श्यामा को, रुक्मिणी को। ज्यो।

७०—रह गये, नही आये। कृष्ण। अवश्य ही। जाना, समझा। रुक्मिणी ने। की। नही। इतनी। देरी। कभी। चिंता से विकल। चित्त मे। यो। सोच रही थी। हुई। छीक। त्यो। धीरज। हुई।

७०–(२) इवड़ी।

६९—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।
७०—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। अनुमान।

७१

चळ-पत्र-पत्र थिउ दुज देखे चित,
सकति न रहइ, न पूछि सकंति
अउ आवइ जिम-जिम आसन्नउ,
तिम-तिम मुख-धारणा तकंति

७२

सँगि संति सखी-जण गुरु-जण स्यामा,
मनह विचारि अ कही महंति
कुससथळी हूँताँ कुदणपुरि
क्रिसन पधारचा, लोक कहंति

७१. पूछि सकै नहि रहि सकै, चलदल मन द्विज पेखि
ज्यो नेरो आयो, रही त्यो आनन तन देखि
७२. सखि गुरु-जन लखि वाम सँग द्विज-वर कही विचारि
लोग कहत, हरि पुरिय ते आये कुदन द्वारि

७१—पीपल का पत्ता, चचल। हुआ। ब्राह्मण को। देखकर। मन। सकती। नही। रह। नही। पूछ। सकती। यह। आता है। ज्यो-ज्यो। निकट। त्यों-त्यो। मुख की मुद्रा को। ताकती है, देखती है।

७२—साथ मे। है। सखी-जन। बड़े लोग। रुक्मिणी के। मन मे। विचार कर। यह। कही। खबर। कुशस्थली, द्वारका। से। कुदनपुर मे। कृष्ण। आये है। लोग। कहते है।

७१—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। लाटानुप्रास। रूपक। विरोधाभास।

७२—व० स०। अनुप्रास। लाटानुप्रास।

७३

बंभण मिसि वंदे, हेतु सु बीजउ,
कही स्रवणि संभळी कथ
लिखमी आप नमे पाइ लागी,
अचरिज को लाधइ अरथ ?

७४

चढिया हरि सुणि संकरखण चढिया,
कटक-बंध नह घणउ किध
अेक उजाघर कळहि अेहवा,
साथी सहु आखाढ-सिध

७३. बभन-मिसु हरि-पग लगी सुनि द्विज-मुख की बात
लखमी रुकमिनि, वसु लह्यो, कहा अचंभो घात ?
७४. क्रिसन चले सुनि बल चढ़े, फौज करी नहि सग
धीर-वीर तेई लये, जे रन में अनभग

७३—ब्राह्मण के वहाने । प्रणाम किया । कारण । वह । दूसरा । कही हुई । कानो से सुनकर । वात । लक्ष्मी (रुक्मिणी) । स्वय । झुककर । पैरो मे । लगी । आश्चर्य । कौन, क्या । प्राप्त हो (लब्ध) । मनोरथ, मनवाछित वस्तु (या, धन) ।

७४—चढ़े । कृष्ण । सुनकर । सकर्षण, वलराम । चढ़े । सेना का सामान । नही । वहुत । किया । एक तो (पहला कारण तो यह कि) । उजागर, प्रसिद्ध । कलह मे, युद्ध मे । ऐसे । साथ के लोग । सव । अखाडे मे सिद्धहस्त, युद्ध मे प्रवीण ।

७३—(४) लाधउ ।

७३—व० स० । अनुप्रास ।
७४—व० स० । अनुप्रास । लाटानुप्रास । समुच्चय ।

७५

पिण पंथि वीर जूजुआ पधार्‌या,
पुरि भेळा मिळि कियउ प्रवेस
जण-दूजण सहि जोव्रण लागा,
नर-नारी नागरिक - नरेस

७६

कामिणि कहि काम, काळ कहि केव्री,
नाराइण कहि अव्रर नर
वेदारथ इमि कहइ वेदव्रंत,
जोग-तत्त जोगेसव्रर

७५. भाई द्वै आये जुदे, मिले नगर में आइ
नर-नारी नागरिक सब निरखत है चित लाइ
७६. काम, नराइन, काल, फुनि जोग, और वेदात
कामिनि, निज जन, पर, जटी, वेद-जान आनंत

७५—यद्यपि (अपि नो)। मार्ग मे। भाई। जुदा-जुदा, अलग-अलग (सं युत-युत अप जुअंजुअ)। चले (पग धरना)। नगर मे। इकट्ठे। मिलकर। किया। पैंसार। सज्जन और दुर्जन, मित्र और शत्रु। सब। देखने लगे। पुरुष और स्त्री। नगर-निवासी (साधारण जन) और राजा।

७६—स्त्रिया। कहती है। कामदेव। काल, मृत्यु। कहते है। शत्रु (केऽपि)। नारायण, विष्णु। कहते है। दूसरे लोग। वेदार्थ। यो। कहते है। वेदज्ञ। योग-तत्त्व। योगीश्वर।

७५—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। दीपक।

७६—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। शब्दार्थवृत्ति दीपक। उल्लेख।

७७

वसुदेव-कुमार तणउ मुख वीखे
पुणइ-सुणइ जण आप-पर
अउ रुकमणी तणउ वर आयउ,
हिव म करउ अनि राइ हर

७८

आवासि उतारि जोड़ि कर ऊभा
जण-जण आगइ जगउ-जणउ
राम-क्रिसन आया राजा-रइ,
को अचिरज मनुहार तणउ ?

७७ वासुदेव को वदन लखि कहत सबै पख खोइ
रुकमिनि को वरु यह सही, होरु करो जिनि कोइ
७८ उतरि अवासनि मे रहे जन आगे कर जोड़ि
राम-क्रिसन जहँ पाहुने, कहा पहुनई कोड़ि

७७—वासुदेव के पुत्र कृष्ण का । मुख । देखकर (वीक्ष्) । कहते-सुनते है । लोग । एक-दूसरे से, आपस मे, परस्पर । यह । रुक्मिणी का । वर । आ गया । अब । मत । करो । दूसरे । राजा । इच्छा ।

७८—डेरो मे । उतारकर, ठहराकर । जोडकर । हाथ । खडे हुए । एक-एक जन के आगे । एक-एक जन । वलराम और कृष्ण । आये । राजा के (यहा) । तो । कौन, क्या । आश्चर्य । मनुहारो का ।

७७—(४) हर म करउ अनि राइ-हर (अन्य राजधारी, राजा, इच्छा न करें) ।

७७—व० स० । अनुप्रास । यमक ।
७८—व० स० । अनुप्रास । पुनरुक्तिप्रकाश । लाटानुप्रास ।

रुक्मिणी के शृङ्गार का वर्णन

७९

सीखाव्रि सखी राखी, आखइ सु-जि,
राणी ! पूछइ रूकमणी
आप, कहउ तउ, आ॒ज जा॒इ आव्रउँ
अंव ! जात्र अंबिका-तणी

८०

राणी तदि दूव्रउ दीध रुकमणी,
पति-सुत पूछि, पूछि परिव्रार
पूजा-व्याजि काजि प्री-परसण
स्यामा आरँभिया सिणगार

७९. सखि सिखाइ माता-सविध पठयी आयसु काज
अंव ! अंविका-अरचना, कहि, करि आऊँ आज
८०. पूछि पूत-परिवार रानी आग्या दे चुकी
सुदरि किये सिगार पूजा-मिसु प्रिय मिलन को

७९—सिखाकर । सखी । रखी थी । कहती है (आ+ख्या) । वही । हे रानी ! पूछती है । रुक्मिणी । आप । कहे, आज्ञा दे । तो । आज । जा आऊँ । हे माता । जात (यात्रा) । अंविका की ।
८०—रानी (ने) । तव । आज्ञा । दी । रुक्मिणी (को) । पति (को) । पुत्र (को) । पूछकर । पूछकर । परिवार (के लोगो को) । पूजा के वहाने । लिए । प्रिय के दर्शन या मिलन के । रुक्मिणी (ने) । आरंभ किये । शृंगार ।

७९—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास ।
८०—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । शब्दार्थावृत्ति दीपक । अपह्नुति ।

८१

कुमकुमइ मँजण करि, धउत वसत्र धरि,
चिहुरे जळ लागउ चुव्रण
छीणे जाणि छछोहा छूटा
गुण-मोती मखतूल-गुण

८२

लागी बिहुँ करे धूपणइ लीधइ
केस-पास मुगता करण
मन-म्रिग-चइ कारणइ मदन-ची
वागुरि जाणे विसतरण

८१ केसर-सु-जलनि न्हाइ कै डँडिया पहिर्यो सेत
चुवत नीर, मुकता मनो गुन मखतूल असेत
८२ कच मुकराये दुहुँ करनि धूप देति है वाम
मन-मृग को बाँधन मनो वागुरि डारी काम

८१—गुलाब से सुगंधित जल से । स्नान । किया । धुला हुआ । वस्त्र । पहना । बालो से (चिकुर) । जल (जल-बिंदु) । लगा । चूने, टपकने । टूटने पर । मानो । उतावले (स-क्षोभ) । छूटे, नीचे गिरे । बडे-बडे मोती । काले रेशम के डोरे से ।

८२—लगी । दोनो । हाथो से । धूप (सुगंधित धूप की वासना) देने के । लिए । केशो के समूह को । मुक्त, खुले । करने । मन-रूपी मृग के । लिए । काम की जाल । मानो । फैलाने, लगाने (लगी) ।

८१—व० स० । अरधमेळ व स (प्रथम चरण) । अनुप्रास । यमक । उत्प्रेक्षा ।
८२—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । रूपक-गर्भित उत्प्रेक्षा ।

८३

वाजउटा ऊतरि गादी वइठी
राजकुँवारि सिँगार-रस
इतरइ अंक आली ले आवी
आनन आगळि आदरस

८४

कँठि पोत, कपोत, कि कहूँ नीळकँठ,
वड-गिरि काळिद्री वळी
समे भाग करि संख संख-धरि
अेकणि ग्रहियउ अंगुळी

८३. चौकी तें उतरी कुँवरि, गादी वैठी आइ
आली ले दरपन रही, करति सिगार हियाइ
८४. मेरु माँझ जमुना किधौं, किधौ परेवा-मोर
कंठ पोति, मनु हरि गह्यो संख अंगुरिन जोर

८३—काठ की चौकी (से)। उतरकर (उत्तर्)। गद्दी (पर)। वैठी (उपविष्ट)। राजकुमारी। शृंगार के। चाव, इच्छा (से)। इतने मे। एक। सखी। ले आयी। मुख (के)। आगे। आदर्श, दर्पण।

८४—गले मे। पवित्री; रेशम का काला डोरा, या चौढो की कठी। कबूतर जिसके गले मे काली रेखा है। या। कहूँ। नीलकठ पक्षी (या, मोर)। वड़ा पर्वत, सुमेरु या हिमालय। कालिदी, यमुना। घिरी हुई (वलित)। वरावर विभाग करके, वीचोवीच। शख (को)। विष्णु ने। एक मे। पकड़ा। अंगुलि से।

८३—व० स०। अनुप्रास। पर्याय (पूर्वार्द्ध)।
८४—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। सदेह।

८५

कवरी किरि ग्रंथित कुसुम-करंवित
जमुन-फेण पावन्न जग
उतमँगि किरि अंवरि आधोअधि
मॉग समारि कुमार-मग

८६

अणियाळा नयण वाण अणियाळा
सजि कुंडळ-खुरसाण सिरि
वळे वाढ दे सिळी - सिळी वरि
काजळ-जळ वाळियउ किरि

८५. वेनी सित पुहपनि गुँथी जमुना गगा फेन
मॉग भरी मुकतनि मनो सरद चली पिय लेन
८६. नैन वान तीखे सरस वीर सान परि लाइ
सुरमा सिली लगाइ कै कज्जल जल औनाइ

८५—वेणी । मानो । गुंथी हुई । फूलो से भरी हुई । यमुना का फेन । जगत को पवित्र करने वाला । उत्तमाग मे, सिर मे । मानो । आकाश मे । वीचों वीच । माग (मार्ग) । सवारी । शिशुमार चक्र,आकाश-गगा (कुमार-मार्ग)।
८६—अनीवाले, नोकदार, तीखे । नेत्र । वाण । तीखे । सजकर, सजाकर । कुंडल-रूपी । सान के पत्थर के। ऊपर (सिर पर) । फिर । कटाव देने को, काटनेवाले वनाने को, तीखे वनाने को । सलाई-रूपी सिल्ली पर । काजल-रूपी जल । डाला । मानो ।

८५—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । उत्प्रेक्षा ।
८६—व० ग० । अनुप्रास । लाटानुप्रास । यमक । रूपक । उत्प्रेक्षा ।

८७

कमनीय करे कूँकूँ-चड़ निज करि,
कळँक-धूम काढे बे काट
संप्रति कियउ आप मुखि स्यामा
नेत्र तिलक, हर-तिलक निलाट

८८

मुख-सिख-सँधि तिलक रतन-मइ मंडित,
गयउ जु हूँतउ पूठि गळि
आयइ क्रिसन माँग-मगि आयउ
भाग कि जाणे भाळयळि

८७. वाम-भाल केसर-तिलक कियो तनक कछु वंक
नैन तिलक दोऊ किये मनु हर के निकलंक
८८. गयो हुतो पाछे, लसत तिलक रतन-मय लाल
आयो भाग मनो क्रिसन आये सुदर भाल

८७—सुन्दर। किया। कुकुम का। अपने। हाथ से। (चन्द्रमा का) कलंक। (अग्नि का) धुँआ। निकाले, दूर किये। दो। दोष (काट=जग)। अब। किया। अपने। मुख मे। रुक्मिणी (ने)। महादेव का अग्नि-रूप तृतीय नेत्र। तिलक को। महादेव का तिलक अर्थात् चन्द्रमा। (अपने) ललाट को।
८८—मुखमंडल और शिखा के सधिस्थल पर, ललाट के ऊपरी भाग पर। तिलक या टीका नामक गहना। रत्नो से जडा हुआ। शोभित। चला गया। जो। था। पीठ पर, पीछे की ओर। गिरकर, चलकर। आने पर। कृष्ण (के)। मांग के रास्ते से। आ गया। भाग्य। क्या जाने, मानो। भाल-तल पर, ललाट पर।

८७—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। रूपक। व्यतिरेक।
८८—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। उत्प्रेक्षा।

८९

जूँसहरी भ्रूँह, नयण म्रिग जूता,
  विसहर-रासि कि अलक वक्र
वाळी किरि वाँकिया विराजइ,
  चंद रथी, ताटंक चक्र

९०

इभ-कुंभ अँधारी, कुच सु कंचुकी,
  कवच संभु काम कि कळह
मनु हरि-आगमि मंडप मडे,
  वंधण दीध कि वारिगह

८९. जुवा भौंह, चख-मृग जुते, नाग अलक धरि धीर
  रासि वांकुवारी वनी, चंद रथी, चक्र वीर
९०. कुच ऊपर कंचुकि लसति अँधियारी गज-सीस
  काम-कलह मन मे धरे कवच किये मनु ईस
  पाउ धारिहै हरि, इहै जानि तिया निज हीय
  पट-मंडप माँडे वहुत जानि सुघर पिय-जीय

८९—जुवा, भूँसर। भौंहें। नेत्र रूपी मृग। जुते है (युक्त)। विषधरो अर्थात् साँपो की वनी। लगाम, रस्सी (रश्मि)। क्या, मानो। केश-पाश। कुटिल वालियाँ। मानो। वाँकिये, रथ के पहियो के ऊपर के अर्धचद्राकार भाग। शोभा देते है। चद्रक या शीशफूल। सवार। ताटंक, कर्णफूल। पहिये।
९०—हाथी के कुभस्थलो पर। आखो पर डाली जानेवाली जाली। कुचो पर। सुदर आगी। कवच। महादेव का। काम के। क्या, अथवा, मानो। युद्ध में। मानो। कृष्ण के। आगमन पर। छायागृह। खडे किये, वनाये। वधन दिये, वाँधे। अथवा। तवू।

८९—व० स०। अनुप्रास। सदेह और उत्प्रेक्षा मे गर्भित सांग रूपक।
९०—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। सदेह। उत्प्रेक्षा। उल्लेख।

९१

हरिणाखी-कंठ-अंतरिख हूँती
बिंब-रूप प्रगटी बहिरि
कळ मोतियाँ सु-सरि हरि-कीरति,
कंठ - सिरी सरसती किरि

९२

बाजूबँध बाँधे गउर बाहु बिहुँ,
स्याम पाट सोहंति स्री
मणि-मइ हीडि हींडलइ मणि-धर
किरि साखा स्रीखंड-की

९१. हरि-कीरति मोती-लरैं, कठ-सिरी तिहि तीर
सरसुति गुपत सुनी जगत, प्रगट लखी तिय भीर
९२. बाजूबंद बधे भुजनि, जड़े रतन वर लाख
मनहुँ नाग झूलत परे मनिधर चंदन-साख

९१—हरिणाक्षी (मृगनयनी) के कठ रूपी। अन्तरीक्ष, भीतर के अदृश्य स्थान से। वस्तु, मूर्ति, दृश्य पदार्थ; दृश्य वस्तु के रूप में, साकार रूप धारण करके। प्रकट हुई। वाहर (बहिर्)। सुदर। मोतियो की। सुदर लड़ी। हरि-कीर्त्ति, हरि के गुणो की माला। कंठश्री, सोने की कंठी। सरस्वती नदी। मानो।

९२—वाजूवंद नाम के भुजा के गहने। वांधे। गौर-वर्ण। भुजाओ मे। दोनो। काला। रेशम। शोभा देती है। शोभा। मणियों से युक्त। झूले पर। झूलते है। मणियो वाले सांप। मानो। डालियो मे। चंदन की।

९१—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। रूपक। अपह्नुति (द्वितीय चरण)। उत्प्रेक्षा।

९२—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। उत्प्रेक्षा।

९३

गजरा नव-ग्रही प्रोंचिया प्रोंचइ,
वळे वळय विधि-विधि वळित
हसत नखित्र वेधियउ हिमकर,
अरध कमळ अळि - आवरित

९४

आरोपित हार घणउ थ्यउ अंतर
ऊर-स्थळि कुंभ-स्थळि आज
सु - जु मोती लहि न लहइ सोभा,
रज तिणि सिरि नाखइ गज-राज

९३. गजरा मोती के लसत, हसत नखत ज्यों चंद
नव-ग्रह पहुँची पाट सित, अरध कंज अलि-वृन्द
९४. मॉहि नॉहि मोती तऊ वाहिर कुच सरसात
मॉहि रहत सोभत न, यों गज रज डारत जात

९३—गजरे । नव रत्नो की बनी । पहुँचियां । पहुँचियों में, कलाइयो मे । फिर । कगन । भाति-भाति के । पहने । हस्त नामक नक्षत्र ने । वेधा । चन्द्रमा को । आधा, अधखिला । कमल । भौरों से घिरा हुआ ।
९४—स्थापित किया, पहना । हार नाम का गहना । वहुत । हुआ । फर्क । उरस्थल (छाती मे) । हाथी के कुभ-स्थल मे । आज । वह जो । मोतियों को । पाकर (लभ्) । नही । पाता है । शोभा । धूल । इससे, इस कारण । सिर पर, अपने ऊपर । डालता है (निक्षिप्) । हाथी ।

९३-- व० स० । छेकानुप्रास । पुनरुक्तिप्रकाश । उत्प्रेक्षा ।
९४—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । व्यतिरेक । हेतूत्प्रेक्षा ।

९५

धरिया सु उतारे, नव्र तन धारे,
कवि तइ वाखाणण किमत्र
भूखण पुहप, पयोहर फळ भति,
वेलि गात्र, तउ पत्र वसत्र

९६

स्यामा कटि कटि-मेखळा समरपित,
क्रिसा अंग मापित करळ
भावी-सूचक थिया कि भेळा
सिंघ - रासि ग्रह - गण सकळ

९५. पूरब तजि नूतन धरे, कवि वरनत तन मात
कुच फल, भूखन पुहप है, वेलि गात, पट पात
९६. मुठी-मध्य नव-ग्रह-जटित छुद्र - घटिका पेखि
आगम जनवन सिंघ मे भये एकठे देखि

९५—(स्नान के बाद के) पहने हुए। वे। उतार दिये। नये, अन-पहने। शरीर में। पहने। कवि। उनको। वखानने को समर्थ। क्या यहां (किम् + अत्र)। गहने। पुष्प। कुच। फलो की भाति। लता। शरीर। तो। पत्ते। वस्त्र।
९६—रुक्मिणी (ने)। कमर (मे)। करधनी। अर्पित की, पहनी। कृश (पतला) अग अर्थात् कमर। मापित होने वाला, मापा जा सकने वाला। मुट्ठी से। सुन्दर भविष्य (भाग्य) को सूचित करने वाले। हुए। क्या, मानो। इकट्ठे। सिंह राशि में। ग्रहों के समूह। सारे।

९५—(२) तिणि=तइ।

९५—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उपमागर्भित सांग रूपक।
९६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। अतिशयोक्ति। उत्प्रेक्षा (अथवा, संदेह)।

९७

चरणे चामीकर तणा चँद्राणणि
सजि नूपुर घूघरा सजि
पीळा भमर किया पहराइत
कमळ तणा मकरंद कजि

९८

दधि वीण लियउ जग्इ, वणतउ दीठउ
साखियात गुण - मइ सु - सत
नासा - अग्नि मुताहळ निहुसति,
भजति कि सुक मुखि भागव्रत

९७. चामीकर के चद-मुखि सजे घूघरा पाइ
पीरे अलि किय पाहरू, कजनि जर जनि छाइ
९८. सुवत उदधि ते ले मुकत कचन-गुन अरुझाइ
धर्‌यो नाक, सुक रिखि मनो रह्यो भागवत गाइ

९७—पैरो मे। सोने के। चन्द्रमुखी ने। सजाकर। नूपुर। घुघरू। सजाये। पीले, पीली वर्दी वाले। भ्रमिर, घूमनेवाले। वनाये। पहरेदार। कमलो के, चरण-कमलो के। रस के। लिए।

९८—उदधि, समुद्र (से)। चुन लिया था। जिसे। वनता हुआ। देखा। साक्षात्, प्रत्यक्ष। गुण-मय। सचमुच। नासिका के आगे। मुक्ताफल, मोती। झूलता है। धारण करता है। क्या, मानो। शुकदेव मुनि। भागवत-पुराण को।

९७—व० स०। अनुप्रास। लाटानुप्रास। उत्प्रेक्षा।

९८—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। श्लेष (गुण)। संदेह (अथवा उत्प्रेक्षा)।

९९

मकरंद तँबोळ कोकनद-मुख मभि,
दंत किजळक-दुति दीपंत
करि अंक वीड़उ वळे वाम करि
कीर-सुत सु जाती क्रीड़ंत

९९. वदन-कोकनद मे लसत सुभ पराग-तवोर
अति सूछम दतावली भयी किंजलक ठौर
कदल-छद...............नाग-वेलि कर वाम
नासा-सुक लखि तजि रहे उपवन सुक अभिराम

९९—पुष्परस। तांबूल, पान। कमल के समान मुख मे। दात। पुष्प के केसरों के समान। शोभित है। किया, लिया। एक। पान का वीडा। फिर। बाँये हाथ मे। सुग्गे का वच्चा, छोटा सुग्गा। (१) चंमेली के फूल पर (२) अपने जाति वाले से, दूसरे सुग्गे से। खेलता है।

९९—(४) कीर सु तसु। ऊपरि>जाती।

९९—व० म०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। उपमागर्भित रूपक। गम्योत्प्रेक्षा।

रुक्मिणी का देवी की पूजा के लिए जाना

१००

सिणगार करे मन कीधउ स्यामा
देव्रि तणा देहरा दिसि
होड छंडि चरणे लागा हँस
मोती लगि पाणही मिसि

१०१

अंतरि नीळंबर अबळ आभरण
अंगि - अंगि नग - नग उदित
जाणे सदनि - सदनि संजोयी
मदनि दीप - माळा मुदित

१००. करि सिंगार पूजन गवरि चली सखिन मिलि बाल
गरव छाँड़ि पनही लगे मोती मिसनि मराल
१०१. नीलबर - अतर लसत नग - दुति इहि छवि होइ
मनहुँ दीप-माला मदन निज गृह धरी सँजोइ

१००—शृंगार। करके। मन, इच्छा, विचार। किया। रुक्मिणी (ने)। देवी के। देवगृह, मदिर (की)। दिशा मे, ओर। स्पर्धा करना। छोडकर। चरणो मे। लगे। हस पक्षी। मोती लगी हुई, मोती जडी हुई। उपानही, जूती (के)। वहाने।
१०१—भीतर। नीली साडी (के)। अवला के। गहने। प्रत्येक अग मे। एक-एक रत्न। प्रकट है, जगमगाता है। मानो। घर-घर मे। जलायी। कामदेव ने। दीपको की माला। हर्षित।

१००—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। अपह्नुति।
१०१—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। उत्प्रेक्षा।

१०२

किहि करगि कुमकुमउ, कुंकुम किहि करि,
किहि करि कुसुम कपूर करि
किहि करि पान, अरगजउ किहि करि,
धूप सखी किहि करगि धरि

१०३

चकडोळ लगइ इण भाँति सु चाली,
मति तइ वाखाणण न मूं
सखी-समूह माँहि इम स्यामा,
सीळ आव्रित लाज-सूँ

१०२. केसर सुभ जलपान सुभ अरगज और कपूर
वसन-धूप लेकै चलीं सखी पेम के पूर
१०३. सखिन माँहि मिलि कै चली चढ़न सुखासन काज
मो मति कहा वखानिहै, रूप धरे मनु लाज

१०२—किसी ने। हाथ मे। गुलावजल। कूकू। किसी ने। किया, लिया। किसी ने। किया। फूल। कपूर। हाथ में। किसी ने। किया। तांबूल। अरगजा, एक सुगधित पदार्थ। किसी ने। किया। धूप। सखी ने। किसी ने। हाथ मे। धारण किया, लिया।
१०३—पालकी। तक। इस प्रकार से। वह। चली। वुद्धि। उसको वखानने को (समर्थ)। नही। मेरी। सखियों के वृंद मे। ऐसी। रुक्मिणी। शील। घिरा हुआ। लज्जा से।

१०२—(४) धोति धूप।

१०२—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।
१०३—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उपमा।

१०४

आइस जग्इ साथि सु चढि-चढि आया
तुरी लाग ले ताकि तिम
सिलह मॉहि गरकाव सँपेखिइ
जोध मुकुर प्रतिबिंब जिम

१०५

पदमणि - रखपाळ पाइदळ पाइक
हिळवळिया, हळिया हसति
गमे - गमे मद - गळित गुड़ंता
गात्र गिरोव्रर, नाग गति

१०४. दरपन लौं चमकत सिलह पहरि चले भट साथ
चढ़ि तुरंग लागे करन मनुसाई की गाथ
१०५. पाइक - दल हरवरि मिले पदमिनि - रच्छा हेतु
मद - माते गिरि - से वढ़े गज - गति की गति लेतु

१०४—आज्ञा, आदेश। जिनको (था)। साथ मे। वे। घोडो पर चढ-चढ़ कर। आये। घोडा। लगाम। लेकर। तग। वैसे ही, और। कवच। में। डूबे हुए। देखे जाते है। योद्धा। दर्पण मे। प्रतिबिंब, परछाई। जैसे।

१०५—पद्मिनी (रुक्मिणी) के रखवाले। पैदल। सेवक, सैनिक। चचल हुए, जल्दी से चले। चले। हाथी। इधर-उधर, दॉये-बॉये, जगह-जगह। मद-जल गिराते हुए। मस्तानी चाल से चलते हुए। गात, शरीर। पर्वत (के समान)। साप (के समान)। चाल।

१०४—(१) आइसइ; आविस्यइ।
१०५—(२) हिलिया। (३) गुडित>गलित।

१०४—व० स०। अनुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। उपमा।
१०५—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। यमक। उपमा।

१०६

असि वेगि वहइ, रथ वहइ अंतरिख,
चालियग चंदाणणि - मग चाहि
किरि वइकुठ अजोध्या-वासी
मंजण करि सरजू नदि माँहि

१०७

पारस प्रासाद सेन संपेखिइ,
जाणि मयंक कि जळहरी
मेरु पाखती नखित्र - माळा,
ध्रू - माळा संकरि धरी

१०६ रथी चलत अति वेग सों चद - वदनि - मगु चाहि
न्हाइ चले घर राम के नागर सरजू मॉहि
१०७. इदु पास ज्यों जलहरी, नखत मेरु - गिरि तीर
रुड - माल ज्यों हर-गरे, त्यो प्रसाद भट-भीर

१०६—अश्व । वेग से । चलते है । रथ । चलते है । आकाश मे । चले । चद्रानना, चंद्रमुखी (के) । मार्ग (को) । देखकर, लक्ष्य कर । मानो । विष्णु-लोक (को) । अयोध्या के निवासी । स्नान । करके । सरयू । नदी । मे ।

१०७—पार्श्व मे, पास, चारो ओर (या, पारस पत्थर के वने) । मदिर (के) । सेना । देखी जाती है । मानो । मृगाक, चंद्रमा (के) । जलधरी, चंद्रमा के चारो ओर वनी प्रकाश-कुडली । सुमेरु (के) । चारो ओर । तारो का समूह । मुडो की माला । महादेव (ने) । धारण की ।

१०६—(१) अस । (४) दधि >नदि ।
१०७—(३) पाखली ।

१०६—व० स० । अनुप्रास । लाटानुप्रास । उत्प्रेक्षा ।
१०७—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । उत्प्रेक्षा । उल्लेख ।

१०८

देव़ाळइ पइसि अंबिका दरसे
घणइ भाव़ हित प्रीति घणी
हाथे पूजि कियउ हाथा-लगि
मन - वांछित फळ रुकमणी

१०८. पैठि देहरा मॉझि लखी अबिका प्रेम-जुत
पूजा के मिसि सॉझि हाथ कियौ हर को मिलन

१०८—मदिर मे। प्रवेश करके। देवी (को)। देखा, दर्शन किया। वहुत। भक्ति-भाव से। प्रेम (से)। प्रसन्नता (से)। वहुत। हाथो से। पूजा करके। किया। हस्त-गत। मन का चाहा। फल। रुक्मिणी (ने)।

१०८—व० स० अनुप्रास। छेकानुप्रास।

रुक्मिणी-हरण

१०९

आकरखण वसीकरण उनमादक
परठि द्रविण सोखण सर पंच
चितवणि हसणि लसणि तणि सँकुचणि
सुदरि द्वारि देहुरा संच

११०

मन पंगु थियउ, सहु सेन मूरछित,
तह नह रही सँपेखतइ
किरि नीपायउ तदि निकुटी अे
मठ पूतळी पखाण-मइ

१०९. आकरखन अरु वसकरन उनमादन को संच
द्रावन सोखन जगत मे कहे काम-सर पंच
चितवनि विहसनि लसनि फुनि तन निरखनि सकुचानि
अब-द्वार जे भट लखे, तेई मारे तानि

११०. भयो पगु मन, मूरछी सेना रुकमिनि देखि
मनहुँ देहरे कै समै करी पूतरी देखि

१०९—आकर्षण । वशीकरण । उन्मादन । परिस्थित (स्थापित, धारण) करके । द्रावण । शोषण । वाण । पाच । देखना । हँसना । अंग मोडना (लास्य) । तानना, फैलाना । सिकोड़ना । सुदरी, रुक्मिणी (ने) । द्वार पर । देवगृह के । सचार किया (या सचय किया, प्रपच किया) ।

११०—मन । गति-हीन, जड़ । हुआ । सारी । सेना । वेहोश । चेतना । नही । रह गयी । देखते ही । मानो । बनाया, तामीर किया । तव । गढी । ये । मंदिर मे । मूर्त्तिया । पत्थर की ।

१०९—(२) गति>तणि ।

१०९—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । यमक । यथासख्य ।
११०—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । उत्प्रेक्षा ।

१११

आयउ असि खड़ि अरि-सेन अंतरइ
प्रिथमी-गति कि अकास-पथ
त्रिभुव्रण-नाथ तणउ तिणि वेळा
रव्र संभळे कि दीठ रथ

११२

बळि-बँधि समरथि रथि लइ बइसाणी
स्यामा कर साहे सु - करि
वाहरि रे वाहरि ! छइ कोइ वर,
हरि हरिणाखी जाइ हरि

१११. धर-पथ कै आकास-पथ आयो मधि अरि-साथ
स्त्रवननि रथ सुनि कै लख्यो सु-रथ त्रिलोकी-नाथ
११२. कर करि कर-वर रुकमिनी बैठारी रथ मॉह
दोरौ रे दौरो, कह्यो, हरे जात हरि नाह

१११—आया। अश्व को। हांककर। शत्रु-सेना के। भीतर। पृथ्वी पर चल कर। या। आकाश के मार्ग से। तीनो लोको के स्वामी, कृष्ण का। उस। समय। शब्द, । सुनायी दिया । कि, तुरन्त ही। दिखायी पड़ा । रथ ।
११२—वलि के वाधने वाले। समर्थ ने। रथ मे। लेकर। विठायी। रुक्मिणी (को) । हाथ। पकडकर। अपने हाथ से। छुडाने को दौडो। अरे। छुडाने को दौडो। है। कोई। दूल्हा, विवाहार्थी। कृष्ण। मृगनयनी (को)। जाता है। हरकर।

१११—(४) संभळी।
११२—(१) बइसारी (४) गयौ >जाइ।

१११—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। अतिशयोक्ति।
११२—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। पुनरुक्तिप्रकाश। परिकरांकुर (हरि)।

११३

संभळत धवळ सर साहुळि संभळि
आलूदा ठाकुर अलल
पिंड, बहुरूप कि भेख पाळटे,
केसरिया ठाहे क्रिगळ

११४

लारोवरि अस, चित्राम कि लिखिया,
निहखरता नरवरइ नर
माखण-चोरी न हुवइ माहव !
महियारी न हुवइ महर !

११३. मंगल - गीतनु सुनत हे, तहाँ सुनी सु पुकारि
करि सनाह उरझे कुँवर पट केसरी उतारि

११४. चलत हयनि की वधि गयी लीक लिखी ज्यो चित्र
अंग सबनि के यो धसत, नही गिनत अरि-मित्र
माधव ! माखन नाँहि, यह चोरी है तरुनि की
रुकमिनि गूजरि नाँहि, गूजर ! पायो है पकरि

११३—सुनते हुए । मंगल-गीत । स्वर, शब्द । पुकार (का) । सुनकर । सज्जित हुये । सरदार । उतावले । शरीर मे । वहुरूपिये (ने) । क्या, मानो । वेश । वदले । केशरी वस्त्र (के) । स्थान पर । जिरह-वख्तर ।

११४—पीछे-पीछे, श्रेणीवध पीछा करते हुए । घोडे । चित्र । क्या, मानो । लिखे हुए । ललकारते है । नरश्रेष्ठ कृष्ण को । वीर । माखन की चोरी । नही है । हे माधव । गोपी । नही । है । हे गोप ।

११३—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । यमक । उत्प्रेक्षा (अथवा सदेह) ।

११४—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । शब्दार्थवृत्तिदीपक । उत्प्रेक्षा (अथवा संदेह) ।

११५

ऊपड़ी रजी मझि अरक अेहव्रउ
　　वात-चक्र सिरि पत्र वसंति
निव्रइ सहस नीसाण न सुणिजइ
　　वरहासाँ नासाँ वाजंति

११६

अळगी ही, नेड़ी की ऊखव्रतइ,
　　देठाळउ थयउ दळां दुह
वागाँ ढेरव्रियाँ वाहरुअे,
　　मारकुअे फेरिया मुह

११५. उठी रजी मे सूर यो, वात-चक्र मधि पात
　　नवे सहस नीसान यो सुनै न हय-आघात
११६. दूरि हुते, आये निकट, भयो दीठ को लाग
　　मुँह फेर्‌यो जादव, करी कुँवर स ढीली वाग

११५—उठी (उत्पतित)। रज, धूलि। (उसके) मध्य। सूर्य। ऐसा। बगूले (के)। ऊपर। पत्ता। वसता हो, रखा हो, हो। नव्वे। हजार। नगाड़े। नही सुनायी पड़ते। घोड़ो के। नथुनो के। वजते हुए।
११६—दूर। थी। निकट। की। दौडाकर। देखादेखी, परस्पर देखना। हुआ। सेनाओ का। दोनो। लगामे। ढीली की। पीछा करने वालो ने। मारने वालो ने, आक्रमण करने वालो ने, लुटेरो ने (पाठान्तर—मारगुअे=मार्ग पर चलने वालो ने, आगे भागने वालो ने)। मोडे। मुख।

११५—(२) सद नीहस नीसाण=(नगारो के वजने का शब्द)।
११६—(१) उद्रमते (२) हुवौ (३) ढेवरियां (३) मारगुअे।

११५—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उपमा। अतिशयोक्ति।
११६—व० स०। अनुप्रास।

युद्ध-वर्णन : युद्ध-वर्षा-रूपक

११७

कठठी बे घटा करे काळाहणि
समुहं आमुह-सामुहइ
जोगणि आव़ी आड़ॅग जाणे
वरसइ रत, बे-पुड़ी वहइ

११८

हथनाळि हव़ाई कुहुक-बाण हुवि
होइ वीर-हक गय-गहण
सिलह-लोह ऊपरइ लोह-सर
मेह-बूँद माहे महण

११७. मेघ-घटा यों दोउ कटक भये सामुहे आइ
रुधिर-नदी बहिहै, समुझि जोगिनि आयी धाइ

११८. छुटे बान, हथिनालि बहु, वीर-हाक बहु होत
सर बगतर पर लगत यो, मेह समुद के सोत

११७—कठोर हुई, गहरी हुई । दो । सेनाओ की पाते रूपी बादलो की घटाएं। करके । कलायण, काले बादल । सजकर । आमने-सामने । योगिनी । आयी । आसार । जानकर, देखकर । वरसने को उद्यत । दुहरी (द्वि-पुटी, वेवड़ी) । चलती है ।

११८—हाथी पर चलने वाली तोप । बारूद का अस्त्र-विशेप । एक अस्त्र । उछलना; या, आघात या शोर । होता है । वीरो का हल्ला, या ललकार । हाथियो की भीड, (या आकाश को ग्रहण करने वाला, घहराने वाला) । कवचों के लोहे के । ऊपर । लोहे के बाण । मेघ की वूदे । भीतर, मे । समुद्र ।

११७—(१) कठठी करि आणी घटा काळाहणि । (२) सामही । (३) आवै ।
११८—(३) सिलहां ऊपरि लोह लोह सर ।

११७—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । श्लेपगर्भित रूपक । उत्प्रेक्षा ।
११८—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । रूपक ।

११९

कळकळिया कुंत किरण, कळि ऊकळि,
वरजित विसिख, विवरजित वाउ
धड़-धड धड़कि धार धारूजळ
सिहर-सिहर समरवइ सिळाउ

१२०

कँपिया उर काइराँ असुभ-कारियाँ
गाजँति नीसाणे गड़ड़इ
ऊजळियाँ धाराँ ऊवड़ियउ
परनाळे जळ रुहिर पड़इ

११९. कुन्त-किरन झलमल करत, रजी दवी, थँभि वाउ
मडे जुध लोगनि लख्यो सरस मेघ को आउ
धड़धड़ लगि धारा विमल, छुटी रुहिर की धार
समर घटा यो देखियत खड़ग वीजुरी तार

१२०. कंप्यो काडर को हियो, वजे सु वर नीसानु
रुहिर-धार यो वहि चली, प्रवल पनारे मानु

११९—चमचमा उठीं। भाले रूपी किरणें। रण-भूमि रूपी भूमि। जल उठी। नहीं चलते है। वाण। वद हो गयी। हवा। अनेक वडो पर। आधात करने लगी। धारा। तलवार की। शिखर-शिखर पर। चमकती है। शलाका, विजली की रेखा।

१२०—काप उठे। हृदय। कायरो के। अशुभ-चिन्तक व्यापारियो (के)। गरजते हुए। नगाडो के वजते हुए। उजली। धाराओ से। उमडा हुआ। (१) पनाल्लों से (२) नाडियों से। जल। रुधिर। गिरता है।

११९—(२) वरसत (वरसते हुए वाण विवर्जित हो गये)। (३) धवकि, कळकि। (४) संवरवि।

१२०—(१) असुभकारियउ (=अशुभसूचक मेघ तथा युद्धवाद्य)।

११९—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। यमक। श्लेष। रूपक।
१२०—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। रूपक।

१२१

चौटियाळी कूदइ चउसठि चाचरि,
धू ढळियइ, ऊकसइ धड़
अनँत अनइ सिसुपाळ अउभ्फड़इ
भ्फड़ मातउ माँडियउ भ्फड़

१२२

रिण-अंगणि तेणि रुहिर रळतळिया
घणा हाथ-हूँ पड़इ घणा
ऊँधा पत्र, बुदबुद जळ आक्रिति
तरि चालइ जोगणी तणा

१२१. नाचै चौसठि जोगिनी, उठि-उठि तरत कबंध
चेदि-कृष्ण दोउ मेघ ज्यों मँडे भ्फरनि सर बंध

१२२. वहुत करनि तें परि बहुत, चल्यो रुहिर जल-माइ
बुदबुद-खप्पर जोगिनी ऊँधे दिये बहाइ

१२१—चोटी वाली, योगिनियाँ। कूदती है। चौसठ। युद्ध-भूमि मे। मुड, माथे। गिरते है। उठते है। रुड। कृष्ण। और। शिशुपाल। लगातार वाण चला कर। बाणों की भ्फड़ी। मोटा, गहरा। लगा दिया। वर्षा की भ्फड़ी रूपी।

१२२—रण की भूमि मे। उससे। रुधिर। फैल गया, वह चला। वहुत। हाथों से। गिरते है। बहुत। उलटे। रुधिर-पात्र, खप्पर। जल के बुलबुले के आकार (वाले)। तैर कर। चलते है। योगिनियों के।

१२१—(३) औभ्फड़ा। लागौ>मातउ।

१२१—व० स०। अनुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। रूपक।

१२२—व० स०। अनुप्रास। लाटानुप्रास। उपमा (तृतीय चरण)।

१२३

बेली तदि बळिभद्र बापूकारइ,
सत्र साबतउ अजे लगि साथ
वूठइ वाहव्रियइ आ वेळा,
हिव्र जीपिस्यइ जु वग्हिस्यइ हाथ

१२४

बि-सरियाँ बिसरि जस-बीज बीजिजइ,
खारी हळाहळाँ खळाँ
त्रूटइ कंध-मूळ, जड़ त्रूटइ
हळधर - का वहताँ हळाँ

१२३. बवकार्‌यो वलभद्र जब सही देखि अरि-साथ
वीज वपत रन मे लरत जीति चलाये हाथ
१२४. बल के हल चलतहि लख्यो तूटत अरि-सिर-मूल
हल चलाइ जड़ तोड़ि कै कियौ जस वपन सूल

१२३—साथियो को । तब । बलराम । ललकार कर कहते है, प्रोत्साहित करते है । शत्रु का । सावित, अखडित, अपराजित । अब तक । साथ, सैनिक-समूह । बरसने पर । हल चलाने की । यह । वेला, उपयुक्त समय । अब । जीतेगा । जो । चलावेगा । हाथ ।

१२४—दूसरी वार हल चलाकर । यश-रूपी बीज । बोया जाता है, बोइये । खारा, कडवा । हलाहल से । शत्रुओ को । टूटते है । कधो की जड़े । (पौधो की) जड़े । टूटती है । बलराम के, किसान के । चलते हुए । हल (के) ।

१२३—(४) हळ>हिव ।

१२४—(१) बिसरियां बीज जस-बीज बीजिस्यैं । विसरि वार जस बीज बीजिजै ।

१२३—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । श्लेष ।

१२४—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । शब्दार्थवृत्ति दीपक । यमक । श्लेष । रूपक ।

१२५

घटि-घटि घण घाउ, घाइ-घाइ रत घण,
ऊँच छिछ ऊछळइ अति
पिड़ि नीपनउ कि खेत्र प्रवाळी,
सिरा हंस नीसरइ सति

१२५ (क)

[वळदेव महा-वळ तासु भुजा-वळि
पिड़ि पहरंतइ नवी परि
बिजड़ाँ मुहे बेड़तइ बळिभद्रि
सिरॉ पुंज कीधा समरि]

१२५. घाइल-देहनि ते छुटी रुहिर-धार छबि देत
हस सँगति दोउ जन तजे मनहु प्रवाली खेत
१२५(क)हाली मधि खेतहि गयो सरस भुजा-वल बाँटि
खल-सिर को कीयो खलो खड़ग-दात करि काटि

१२५—शरीर-शरीर मे। बहुत। घाव। घाव-घाव मे। रक्त। बहुत। ऊँचे। फव्वारे। उछलते है। बहुत। युद्ध-भूमि मे। फला। क्या, मानो। खेत। मूँगो का। सिट्टे, अनाज की बाले। हंस, प्राण। निकलते है। सत्य ही, सचमुच।

[१२५(क)वलराम। महाबली। उसके, अपने। भुजा के बल से। युद्ध-भूमि में। प्रहार करते हुए। नयी भाँति से। तलवारो के मुखो से। काटते हुए। वलराम ने। (१) सिरो के (२) सिट्टो के, वालो के। ढेर। किये, लगा दिये। युद्धभूमि मे।]

१२५—(३) पिंड=शरीर में।
१२५(क)(२) पिंड। टिप्पणी—प्राचीन प्रतियों में यह पद्य नहीं है।

१२५—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। लाटानुप्रास। श्लेष। उत्प्रेक्षा। रूपक। एकावली।
१२५(क)व० स०। अनुप्रास। लाटानुप्रास। श्लेष। भेदकातिशयोक्ति। रूपक।

१२५ (ख)

[रिण गाहटतइ रामि खळाँ, रिण
थिर निज चरण सु मेढि थिया
फिरि चड़ियइ संघार फेरताँ
केकाणाँ पाइ सुगह किया]

१२६

कण अेक लिया, कीया अेक कण-कण,
भर खंचे भंजियउ भिड़ि
बळिभद्र-खळइ खळाँ सिरि वैठी
चारउ पळ, ग्रीधणी चिड़ि

१२५(ख)निज पग मेढि विराम करि हय-चरननि खुंद वहु
कियो गाहटो राम वैरी-वल करिकैं खलो
१२६. भार खैंचि तोरचो सुभर कन-कन दयो वखेरि
खल-खल सिर वैठी गिरध पल सु चोर वलि हेरि

१२५(ख)रण-भूमि (मे) । गाहटते हुए, कुचलते हुए । वलराम के । शत्रु-रूपी खलिहान (को) । युद्धभूमि-रूपी खेत मे । स्थिर । दृढ । अपने । पैर । मेढी, खलिहान का स्तंभ । हुए । फिर । (घोड़ो पर) चढकर । संहार । फिराते हुए । घोडो के । पैरो से । अच्छी तरह कुचले हुए । किये ।
१२६—अन्न-कण । कुछ । लिये, खाये । किये । कुछ । टुकडे-टुकड़े । ढेर को, शत्रु-समूह को । खीचकर । वखेर दिया । भिड़कर । वलराम के खलिहान मे । शत्रुओ के । सिर पर । वैठी । चारा । मास । गीधनी । चिडिया ।

१२५(ख)(२) निश्चलण>निज चरण ।
टिप्पणी—प्राचीन प्रतियों में यह पद्य नहीं है ।
१२६—(१) कण लीधा अेक । (२) भंजिया । भड़ ।

१२५(ख)व० स० । अनुप्रास । लाटानुप्रास । रूपक ।
१२६—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । पुनरुक्तिप्रकाश । रूपक ।

१२७

सरिखाँ-सूं वळिभद्र लोह साहियउ
वडफरि ऊछजतइ विरुधि
'भला-भली' सति तो-जि भंजिया
जरासेन-सिसुपाळ जुधि

१२७. वल विरच्यो सग्राम मधि दे हथवाँसे ढाल
'भलाभली धरती' कही, जीति लियो सिसुपाल

१२७—वरावरी वालो से, वरावर के शत्रुओं के सामने। वलराम (ने)। शस्त्र उठाया, युद्ध किया। ढाल। उठाते हुए। मुकावले मे, सामने। 'धरती भलाभली है' (पृथ्वी मे एक से वढ़कर एक है—यह कहावत)। सत्य है। तभी। पराजित किये। जरासध। शिशुपाल। युद्ध मे।

१२७—(१) सधरां सूं। साहियौ (२) उछजिअे। (३) सत्र। भागा>भंजिया।

१२७—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लोकोक्ति।

रुक्म-कुमार का युद्ध

१२८

आडउ-अडि अेकइ-अेक आपड़े
वाग्यउ अेम रुकमणी-वीर
अबळा लेइ घणी भुंइ आयउ,
आयउ हूँ, पग मॉडि अहीर !

१२९

विळकुळियउ वदन जेम वाकार्यउ
संग्रहि धनुख पुणच सर संधि
क्रिसन रुकम-आउध छेदण कजि
वेळखि-अणी मूठि-द्रिठ वंधि

१२८. आडो ह्वै गोविद को रुकमी वोल्यो धीर
तिय ले आयो वहुत धर, तूँ पग मॉड़ि अहीर !
१.२९ भालि-मूठि द्रिग वॉधि रुकमी-आयुध काटिवे
धनुख-पणच सर सॉधि हरि वाकारे रिस करी

१२८—आड़े-आडे, तिरछा होकर, तिरछे मार्ग से । अकेला । अचानक आकर । बजा, गरजा । ऐसे । रुक्मिणी का भाई, रुक्मकुमार । अवला (को) । लेकर । वहुत । फासला, दूरी (भूमि); वहुत दूर । चला आया । आ पहुंचा । मै । पैर स्थिर कर, ठहर, खडा रह । हे ग्वाले ।

१२९—तमतमा उठा । मुख । जैसे, ज्योंही । ललकारा । लेकर, उठाकर । धनुष को । प्रत्यचा पर । वाण । चढाया । कृष्ण ने । रुक्मकुमार के । हथियारो (को) । काटने के लिए । वाण के पुख भाग पर और नोक पर । मुट्ठी और दृष्टि को । वाधा, जमा दिया ।

१२८—(१) अेका-अेक । (४) ऊभउ रहि>आयउ हूँ ।
१२९—(१) वाकारे । (२) पिणछ । (४) द्रिढ (=दृढ़ता से) ।

१२८—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास ।
१२९—व० स० । अनुप्रास । यथासख्य । दीपक ।

१३०

रुकमइयउ पेखि तपत आरणि रणि,
पेखि रुकमणी-जळ प्रसन
तणु लोहार वाम कर निय तणु,
माहव्रि किउ साँडसी मन

१३१

सगपण-ची सनस, रुकमणी-सानिधि,
अण-मारिबा तणइ आळोजि
अे अखियात, जु आउधि आउध
सजे रुकम, हरि छेदे सो-जि

१३०. रन तप रुक्मिनि-वीर लखि वरि सिरात इक वार
मन सँड़सी कीयउ क्रिसन, जैसे करतु लुहार
१३१. एक सगाई-लाज, अरु रुकमिनि बैठी निकट
अन-मारन के काज आयुध रथ काटे क्रिसन

१३०—रुक्मकुमार को (ऊनवाचक रूप)। देखकर। जल उठता है। अहरन पर। युद्ध-भूमि रूपी। देखकर (प्रेक्ष्)। रुक्मिणी-रूपी जल। प्रसन्न, शीतल (होता है)। लुहार का। बाया। हाथ। अपने। शरीर (को)। माधव (ने)। किया। सँड़सी। मन (को)।
१३१—नाते की, संबध की। लिहाज। रुक्मणी की उपस्थिति। नही मारने के। विचार से। यह। अद्‌भुत कार्य (किया)। जो। आयुध से। आयुध। लिये। रुक्मकुमार (ने)। हरि (ने)। काट डाले। वही।

१३०—व० स० अनुप्रास। यमक। शब्दार्थावृत्ति दीपक। रूपक।
१३१—व० स० अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। समुच्चय।

१३२

निर-आउध किउ तदि सोना-नामी,
केस उतारि विरूप कियउ
छिणियइ जीव़ जु जीव़ छाँडियउ
हरि हरिणाखी पेखि हियउ

१३३

अनुज ! अे उचित, अग्रज इम आखइ,
दुसट सासना भली दयी !
वहिनि जासु पासे वइसाणी,
भलउ काम किउ, भला भई !

१३२. काटि सवै हथियार रथ मूँड़ि सीस मुँह मूँछि
करि विरूप रुकमी तज्यो जीवत, प्यारी पूँछि
१३३. हँसत क्रिसन सों वल कह्यो, वहिनि लयी गहि वाँहि
दुष्ट कियो सोई लह्यो, तुम्है भलाई नाँहि

१३२—आयुध-रहित। किया। तव। सोने के नाम वाले को, रुक्मकुमार को (रुक्म=सोना)। केश। काटकर। विद्रूप, रूपहीन। किया। छीनकर। जीवन, शक्ति। प्राण। छोडा। कृष्ण ने। मृगनयनी रुक्मिणी (का)। देखकर, जानकर। हृदय, हृदय की इच्छा।
१३३—हे छोटे भाई। यह। उपयुक्त। वडा भाई (वलराम)। यों। कहता है। दुष्ट को। सजा, दड। अच्छी। दी। वहन। जिसको। पास मे। विठायी। भला। काम। किया। हे भले भाई।

१३३—(१) अनंत (=हे कृष्ण) >अनुज। अग्रज ईख कहइ अे अनुचित।
(२) तास >भली। (३) वैसारी। (४) भलउ >भला।

१३२—व० स० अनुप्रास। लाटानुप्रास। यमक।
१३३—व० स० अनुप्रास। छेकानुप्रास।

१३४

सु-समित सु-नमित निज वदनि सु-व्रीड़ित
पुँडरीकाइख थिय प्रसन
प्रथम अग्रज-आदेस पाळिवा,
म्रिग-नयणी राखिवा मन

१३५

क्रित करण अकरण अन्नथा-करणं
सगळे - ही थोके समथ
हालिया जाइ लगाया हूँता
हरि साळइ सिरि थापि हथ

१३४. सुनि अग्रज के वचन हँसि कछु लजाइ हरि जान
बोल राखि बलभद्र को राखि रुकमिनी-मान

१३५. अकरन-करन समाथ और-और विधि करन को
दे सालक-सिर हाथ कृपा करी हरि केस दे

१३४—मुस्कराते हुए। मुह नीचा किये हुए। अपने। मुख मे। लजाये हुए। कमलनयन (पुण्डरीकाक्ष)। हुए। प्रसन्न। पहले तो। बडे भाई की आज्ञा को। पालने को। (दूसरे)। मृगनयनी का। रखने को। मन।

१३५—कार्य को। करने। नाश करने। अन्यथा करने। सारी ही। बातो मे। समर्थ। चले, रवाना हुए। जो। लगाये। थे। कृष्ण। साले के। सिर पर। रखकर। हाथ।

१३४—(४) मिरगाखी।

१३५—(१) क्रितकरणमकरणमन्यथाकरणं (२) ससमथ (=समर्थ।)
(३) हालियौ, हा लिया। जिके>जाइ। जा इलगाया>जाइ लगाया।

१३४—व० स०। अनुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। उपमा। समुच्चय।

१३५—व० स०। अनुप्रास। लाटानुप्रास। विरोधाभास। व्याघात।

द्वारका में स्वागत

१३६

पर-दळ पिणि जीपि पदमणी परणे,
आणँद उभय हुआ अेकार
वहतइ कटक माँहि वादोवदि
वाधण लगा वधाईहार

१३७

ग्रह-काज भूलि गया, ग्रह-गति ग्रहि-ग्रहि
पूछीजइ, चिंता पडी
मन अरपण कीधइ हरि-मारगि
चाहइ प्रज ओटइ चडी

१३६. पदमिनि व्याही जीत दल, आनँद भयो अपार
वदावदी चलतै कटक वधे वधाईहार
१३७. गृह-कारज भूले सरव, ग्रह पूछत नर-वाम
चिंतातुर मन, नैन दे निरखत पथ जित स्याम

१३६—शत्रु की सेना (को)। भी। जीता। पद्मिनी (को)। व्याहा (परिणी)। आनद। दोनो। हुए। एक साथ। चलते हुए। सेना मे। होडाहोड, होड करते हुए। वढने लगे, आगे चले (वृध्-वद्ध)। वधाईदार, वधाई ले जाने वाले।
१३७—घर के काम। भूल गये। घर-घर मे। ग्रहो की चाल। पूछी जाती है। चिंता। खडी हो गयी। मन को। दिये हुए, लगाये हुए। कृष्ण के मार्ग पर। देखती है। प्रजा। ऊचे स्थानो पर चढी हुई।

१३६—(१) जीति। (२) आणंद रोस थया अेकार; सत्र सिरि अधिक वावरे सार (शत्रु के सिर पर खूब शस्त्र चलाकर)।

१३६—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक।
१३७—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। यमक। स्वभावोक्ति।

१३८

देखताँ पथिक ऊतग्मळा दीठा,
झाँखाणाँ उरि उठी झळ
नीळ डाळ करि देखि निळाणा
कुसस्थळी - वासी कमळ

१३९

सुणि आगम नयर सहू साऊजम
रुकमणि-क्रिसण वधावण रेस
लहरी लियइ जाणि लहरी-रव
राका-दिनि दरसणि राकेस

१३८. पथी देखि उतावलो मुरझाये सब लोग
हरी डार हेरे हँसे, हरे भये तजि सोग
१३९. सुनि आगम हरखित भये जन हरि-दरसन काज
ज्यो पूनो के दिन समुद लेत लहर करि गाज

१३८—देखते हुए। वटाऊ। जल्दी आते हुए। देखे (दृष्ट)। देखने वालो के। हृदय मे। उठी। ज्वाला, वेदना। हरी। डाली। हाथ मे। देखकर। हरे हुए। द्वारका के निवासी रूपी। कमल।
१३९—सुनकर। आगमन। पुर। सारा। स-उद्यम, क्रियाशील, हलचल-मय। रुक्मिणी और कृष्ण (को)। वधाने के। लिए। लहरे। लेता है। मानो। लहरो के शोर वाला, समुद्र। पूर्णिमा के। दिन। पूर्ण चंद्रमा के दर्शन से।

१३८—व० रा०। छेकानुप्रास। रूपक।
१३९—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। उत्प्रेक्षा।

१४०

वाधग्उआँ ग्रिहे-ग्रिहे पुर-वासिअँ
दळिद्र तणउ दीन्हउ दळिद्र
ऊछव हुआ, अखित ऊछळिया,
हरी द्रोब, केसर, हळिद्र

१४१

नर मारगि अेकि, अेकि मगि नारी,
क्रमिया अति ऊछाह करेउ
अंक-माळ हरि नयर आपिवा
वाहाँ ति किरि पसारी वेउ

१४०. थापे केसर-हरद के दिये दूव सिर राखि
दारिद को दारिद दियो जन सुनि सूचक भाखि
१४१. करि उछाह नर एकधा, चली एकधा नारि
पुरी चली हरि-मिलन को मानहुँ वाँह पसारि

१४०—वधाईदारों को । घर-घर मे । नगरवासियो ने । दरिद्र का । दिया । दरिद्र, अभाव । उत्सव । हुए । अक्षत, चावल के दाने । उछले, फेके गये । हरी । दूव । केशर । हलदी ।

१४१—पुरुप । मार्ग से । एक । एक । मार्ग से । नारियां । चले (क्रम्) । वहुत । उत्साह । करके । अकवार, भुजा भर कर मिलना । हरि को । नगर, द्वारकापुरी (ने) । देने को (आप्) । भुजाएँ । वे । मानो । फैलायी (प्र+सृ) । दोनो ।

१४०—व० स० । अनुप्रास । लाटानुप्रास । यमक । दीपक ।

१४१—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । उत्प्रेक्षा ।

१४२

वीजुळि दुति - दंड, मोतिअे वरिखा
झालरिअे लागा झड़ण
छत्रे अकास अेम अव्रछायउ,
घण आयउ किरि वरण घण

१४३

मूकुर-मइ प्रोळि, प्रोळि-मइ मारग,
मारग सु-रँग अबीर-मइ
पुरि - हरि सेन अेम पइसार्यउ,
नीरोव्रवरि प्रव्रिसंति नइ

१४२. रतन-दंड विजुरी वनी, झालरि मोती-बूँदि
घन अकास छत्रहि लिये हरिहि मिल्यो मुँह मूँदि

१४३. मग-द्वारनि वाँधे मुकुर, अरु फैलाइ गुलाल
ज्यों सरसुति पैठति समुद, नगर सेन-गोपाल

१४२—विजली (की चमक) । सोने के दडो की चमक । मोती । वर्षा (की वूदो की भांति) । झालरो से । लगे । टूटकर गिरने । छत्रो ने । आकाश को । यो । छा दिया । वादलो का समूह । आया । मानो । अनेक रंगों का ।

१४३—दर्पणो से युक्त । पौरिया (प्रतोली) । पौरियो से युक्त । रास्ते । रास्ते । सुरगे, सुदर । गुलाल-मय । नगर में । हरि ने । सेना को । यो । प्रवेश कराया । समुद्र में । (जैसे) प्रवेश करती है । नदी ।

१४२—व० स० । अनुप्रास । यमक । रूपक । उत्प्रेक्षा ।

१४३—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । उपमा । एकावली ।

१४४

धव़ळहरे धव़ळ दियइ जस-धव़ळित
धण नागर देखे स-धण
स-कुसळ सबळ सदळ सिरि सामळ
पुहप-वूंद लागी पड़ण

१४५

जीपे सिसुपाळ, जरासॅध जीपे
आयउ ग्रहि, आरती उतारि
देखे मुख वसुदेव़-देव़की
वार-वार वारइ पय वारि

१४५. गावति सव चढि धौलहर प्रज-गीतारि मु-चंग
पुहप-वूँद डारन लगी रुकमिनि-स्यामल अग
१४४. जरासिधु सिसुपाल को जीति लयी वह नारि
मात-पिता करि आरती वार-वार पय वारि

१४४—ऊँचे महलो मे। मगल-गीत। देती है, गाती है। यश से उज्ज्वल। स्त्रिया। चतुर कृष्ण (को)। देखकर। वधू-सहित। कुशल वाले। वलराम के सहित। सेना सहित। सिर पर, ऊपर। कृष्ण के। पुष्प रूपी वूद। लगी। पडने।

१४५—जीतकर। शिशुपाल (को) जरासध (को)। जीतकर। आया। घर। आरती। उतारते है। देखकर। मुह। वसुदेव और देवकी, कृष्ण के माता-पिता। वारवार। निछावर करते हे (अपने को)। जल। अँवार कर।

१४४—(३) स–किसळ।

१४४—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। रूपक।
१४५—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। यमक।

१४६

विधि-सहित वधाव्रे, वाजित्र वाव्रे,
भिन-भिन अभिन वाणि मुखि भाखि
करइ भगति राजान क्रिसन-ची
राज-रमणि रुकमणि ग्रहि राखि

१४६. विधि सो लये वधाइ के वाजे वहुत वजाइ
रानी रुकमिनि को हरिहि लीने नरनु जिमाइ

१४६—विधि-पूर्वक। वधाकर। वाजे (वादित्र)। वजाकर (वादय्)। भिन्न-भिन्न। अभिन्न, एक-सी। वचन। मुखो से। वोलकर। करती है। भक्ति, आराधना। राजा कृष्ण की। राज-रानिया। रुक्मिणी (को)। घर मे, महल में। रखकर, ठहराकर।

१४६—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। लाटानुप्रास। यमक।

कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह

१४७

दइव्वग्य तेड़ि वसुदेव्व - देव्वकी
पहिलूँई पूछइ प्रसन
दियउ लगन जोतिख-ग्रँथ देखे,
कइ परणइ रुकमणि क्रिसन ?

१४८

वेदोगत धरम विचारि वेद-विद
कंपित-चित लागा कहण
हेकणि सु-त्री सरिस किम होव्वइ
पुनह-पुनह पाणि-ग्रहण ?

१४७. द्विज बुलाइ माता-पिता पूछ्यो अधिक उमाह
लगन कहो, हम कब करै हरि-रुकमिनि को व्याह

१४८. स्रुति-सुमरिति देखे कह्यो डरपत द्विजवर नेक
व्याह दूसरो क्यो कहो, रुकमिनि दुलहिनि एक

१४७—दैवज्ञ, ज्योतिषी। बुलाकर। वसुदेव और देवकी। पहला ही, सर्वप्रथम। पूछते है। प्रश्न। दो,बताओ। मुहूर्त। ज्योतिष के ग्रन्थ। देखकर। कव (कदि)। व्याहे। रुकमिणी (को)। कृष्ण।

१४८—वेदोक्त, शास्त्रो मे कथित। धर्म (को)। विचार कर। वेदज्ञ, शास्त्रज्ञ। कापते हुए चित्त वाले, भयभीत हुए-से। लगे। कहने। एक ही। वधू के। साथ। कैसे। हो। बार-बार। विवाह।

१४७—व० स०। अनुप्रास। यमक।

१४८—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश।

१४९

निरखे ततकाळ त्रि-काळ-निदरसी
करि निरणय लागा कहण
सगळे दोख विव़रजित साव़उ
हूँतउ जई हुव़उ हरण

१५०

वसुदेव़-देव़की-सूँ ब्राह्मणे
कही परसपर अेम कहि
हुअइ हरणि हथलेव़उ हूव़उ,
सेस संसकार करउ सहि

१४९. जनवैया तिहुँ काल के सोचि कह्यो ततकाल
विनु दोखनि वह काल हो, हरन भयो जिहि काल

१५०. बांभन लखि वसुदेव को, मातु-वदन कों देखि
कर-ग्रह हरन-समै भयो, वाकी करहु विसेखि

१४९—देखकर (निरीक्ष्) । तत्काल, तुरत । भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीनों कालो को देखनेवाले । करके । निर्णय । लगे । कहने । सकल दोषो से रहित । विवाह-मुहूर्त्त । था । जब । हुआ । हरण ।

१५०—वसुदेव और देवकी से । ब्राह्मणो ने । बात कही । आपस में । यो । कहकर, सलाह करके । होने पर । हरण के । हाथ का पकडना, पाणि-ग्रहण । हुआ । बाकी । संस्कार, रीतिया । करो । सब (या; अवश्य) ।

१५०—(४) हुइ सहि, हुवइ सहि ।

१४७—व० स० । अनुप्रास । लाटानुप्रास ।

१५०—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । यमक ।

१५१

विप्र मूरति वेद, रतन-मइ वेदी,
वंस आद्र, अरिजण-मइ वेह
अरणी अगनि, अगर-मइ इंधण,
आहुति ध्रित-घणसार अछेह

१५२

पछिम दिसि पूठि, पूरव मुख परठित,
परठित ऊपरि आतपत्र
मधु-परिकादि संसकार-मंडित
स्त्री-वर वे वइसाणि तत्र

१५१. विप्र वेद, वेदी रतन, वाँस हरे, घट हेम
अरनि आगि, इंधन अगर, घृत-कपूर हुति नेम
१५२. पीठि पछिम, पूरव सु मुख, करी छत्र की छाँह
वर-वधूनि मधुपरक दे वैठारे गहि वाँह

१५१—ब्राह्मण। मूर्ति। वेद की। रत्नमयी। वेदिका, चँवरी। वास। गीले। स्वर्णमयी। वेह, कलस। अरणी की। अग्नि। अगर का। इंधन। आहुति। घी और कपूर (की)। अत-रहित, निरंतर।
१५२—पश्चिम दिशा में। पीठ। पूर्व दिशा मे। मुख। परिस्थित किया; स्थापित किया। ऊपर। छत्र (आतप+त्र)। मधुपर्क आदि। सस्कारों से। शोभित। वधू और दूल्हा। दोनों को। विठाया। वहाँ।

१५१—व० स०। अनुप्रास। लाटानुप्रास। यमक।
१५२—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।

१५३

आरोपित आँखि सहू हरि-आणणि,
गरभ उदधि ससि मछे ग्रहीत
चाहइ मुख अंगणि ओटइ चढि
गावइ मुखि मंगळ करि गीत

१५४

आगळइ प्रिया, प्री चउथइ आरँभि,
फेरा त्रिणि इणि भाँति फिरि
कर सांगुसट ग्रहण कर-सूँ करि,
करी कमळ चाँपियउ किरि

१५३. हरि-आननि नैननि दिये निरखति त्रिया प्रवीन
मनहुँ उदधि मधि ससि गह्यो चहूँ ओर तें मीन

१५४. भाँवरि चौथी फिर करी तिय आगे गहि बाँहि
मनहुँ करी प्रफुलित कमल लिये सु निज कर माँहि

१५३—रखी हुई, लगी हुई, जमी हुई। आखे। सभी। कृष्ण के मुख पर। समुद्र के भीतर। चंद्र (के प्रतिबिंब को)। मछलियो ने घेर लिया। देखती है। मुख को। आगन मे। ऊँचे स्थानों पर। चढ़कर। गाती है। मुख से। मंगल। करके। गीत।

१५४—आगे वधू। पर वर आगे चौथे के आरंभ मे। भावरे। तीन। इस प्रकार। फिरे। हाथ (को)। अंगूठे सहित (सागुष्ठ)। ग्रहण किया। हाथ से। हाथी ने। कमल (को)। दवाया, पकडा। मानो।

१५४—(१) त्रिया।

१५३—व० स० अनुप्रास। छेकानुप्रास। गम्योत्प्रेक्षा।

१५४—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। उत्प्रेक्षा।

१५५

पधराविऌ त्रिया वामइ प्रभणावे
वाच परसपर जथा-विधि
लाधी वेळा माँगी, लाधी
निगम-पाठकइ नवइ निधि

१५५. व्याहि वाम अँग राखि तिय विप्रन देइ असीस
मँगलन की वेला लखे दीनी निधि नव ईस

१५५—बिठाकर । वधू (को) । बाँयी ओर । बुलवाये, कहलवाये । वचन, प्रतिज्ञाएं । आपस मे । नियमानुसार । पायी, प्राप्त हुई (लब्ध, लद्ध) । वेला । मागी हुई, प्रार्थित, चाही हुई । पायी । वेद पढने वालो ने । नवो । निधिया ।

१५५—व० स० । अनुप्रास । लाटानुप्रास ।

रुक्मिणी और कृष्ण का मिलन

१५६

दूलह हुइ आगइ, पाछइ दुलहणि,
दीना क्रम सूण-हर दिसि
छँडि चउँरी हथलेवइ छूटइ
मन बंधे अंचळाँ मिसि

१५७

आगइ जाइ आलि केळि-ग्रिह अंतरि
करि अंगण - मारजण करेण
सेज-वियाजि खीर-सागर सजि
फूल-वियाजि सजे तसु फेण

१५६ वर आगे, पीछे चलीं वहू सुवन हरि साथ
आँचर के मिस दुहुँनि को बाँध्यौ ले मनु हाथ
१५७. सखी झाड़ि घर, पुहुप-जुत सेज बनायी ऐन
चादरि सेत-समुद्र मनु फूल सु ता पर फेन

१५६—दूल्हा, वर। होकर। आगे। पीछे (पश्च)। दुलहिन, वधू। दिये, रखे। पैर, कदम। स्वप्नगृह, शयनागार, चित्रसारी (की)। दिशा मे। छोड़ी। विवाह-वेदी (चत्वरिका)। पाणिग्रहण के। छूटने पर। मन। वाँधे। अंचलों, वस्त्र-छोरों (के)। वहाने।

१५७—आगे, पहले से। जाकर। सखियो ने। क्रीडाभवन (के)। भीतर। किया। आगन का मार्जन, सफाई। हाथ से। शय्या के वहाने (व्याज)। क्षीरसागर। सजाकर। फूलो के वहाने। सजाये। उस पर। फेन।

१५६—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। दीपक। अपह्नुति।
१५७—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। शब्दार्थावृत्ति दीपक। अपह्नुति।

१५८

आभा चित्र रचित तेणि रँग अनि-अनि
मणि-दीपक करि सूध - मणि
मंडि रहे चंद्रव्वा तणइ मिसि
फण सहसे - ही सहस - फणि

१५९

मँदिरंतरि किया खिणंतरि मिळिवा
विचित्रे सखिअे समाव्रित
कीधइ तिणि वीव्वाह-संसक्रिति
करण सु तिणि रति-संसक्रित

१५८. महल विचित्र सु चित्र-जुत, मनि-दीपक तिहि ठौर
सेस चँदौवा मिसि करी छाँह करन की दौर
१५९. पलिका को आचार करि रुकमिनि अनत लिवाइ
गयी सखी, रति करन के भूखन रही बनाइ

१५८—शोभा। विचित्र, निराली। बनी। उनसे। रगो की। नाना, अनेक, विविध। मणियों के दीपक। किये, सजाये। श्रेष्ठ महल में (सौध)। फैल रहे हैं। चादनी, चद्रातप। के। बहाने। फण। हजारो ही। शेष नाग के।

१५९—दूसरे महल मे। किये। क्षणातर मे, थोडी देर के वाद। मिलने के लिए। विविध। सखियों ने। एकत्रित, जो घेरे हुए थी। किये जाने पर, समाप्त होने पर। उनके। विवाह-सस्कार के। करने को। उनका रति-सस्कार।

१५८—(२) गिणि > करि।
१५९—(४) सुतणु।

१५८—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। पुनरुक्तिप्रकाश। अपह्नुति।
१५९—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।

१६०

संकुड़ित समसमा संध्या समयइ
रति वंछति रुकमणि - रमणि
पथिक-वधू-द्रिठि, पंख पंखियाँ,
कमळ-पत्र, सूरिज-किरणि

१६१

पति अति आतुर त्रीया-मुख-पेखण,
निसा-तणउ मुख दीठ निठि
चंद्र-किरण, कुळटा, सु निसाचरि,
द्रव्रड़ित अभिसारिका-द्रिठि

१६०. सकुचन ही सकुचे इते साँझ रुकमिनी सेज
पथिक-वधू-द्रिग, पख दुज, कमल-पत्र, रवि-तेज
१६१. हरि होतहि आतुर भये सबै निसा के काज
कुलटा, निसिचर, चोर, ससि, अभिसारिका—समाज

१६०—संकुचित हुए, सिकुडे। एक साथ। सांझ के समय मे। रति। चाहते हुए। रुक्मिणी के पति कृष्ण के। (प्रवासी) यात्रियो की स्त्रियो के नेत्र (दृष्टि)। पक्षियो की पाखे। कमलो के पत्ते। सूर्य की किरणे।
१६१—पति। वहुत। उत्कठित। वधू के मुख (को)। देखने के लिए। रात्रि का। मुख, आरभ। देखा, दिखायी पडा (दृष्ट)। कठिनता से (अनिष्टेन)। चद्रमा की किरणे। व्यभिचारिणी स्त्रियां। राक्षसियाँ। प्रसृत हुई, फैली। अभिसारिका की आखे।

१६०—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। सहोक्ति।
१६१—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। दीपक।

१६२

अनि पंखि बँधे, चक्रवाक असंधे,
निसि संधे इमि अहो-निसि
कामिणि-कामि तणा कामागनि
मन लाया दीपकाँ मिसि

१६३

ऊभी सहु सखिअे प्रसंसिता अति
क्रितारथी प्री मिलण क्रित
अटत सेज-द्वारे विचि, आहुटि
स्त्रुति दे, हरि घरि समास्रित

•

१६२. पख बँधे अनि दुजनि के, चक्रवाक के नाँह
निसा-द्यौस दोऊँ मिले, हँसत देत गल-बाँह
कामी की कामा-अगनि निकसी दीपक-जोत
मन लागो दीपक-मिसनि, यह मेरे मन होत
१६३. सखि सब रुकमिनि सो कहै, प्यारी ! भयी निहाल
देहरि ते अहुटत अटत वचन स्त्रौन धरि वाल

१६२—अन्य । पक्षी । मिले । चकवे । अलग हुए । रात्रि मे, सध्यासमय । मिले । यो । रात और दिन । कामिनी और कामी जन । के । कामाग्नि ने । मन । जलाये । दीपको के । बहाने ।
१६३—खडी है (ऊर्ध्व, उब्भ) । सब । सखियो से । सराही जाती हुई । बहुत । कृतार्थ हुई । प्रिय के मिलन के लिए । फिरते है । शय्या और द्वार के बीच मे । आहट पर । कान । देकर । कृष्ण । महल मे । विद्यमान ।

१६२—(३) तणी (४) लीया ।

१६२—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । यमक । अपह्नुति ।
१६३—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । स्वभावोक्ति ।

१६४

हंसा-गति तणउ अग्तुर थ्या हरि-सू
वधाउआ जेही वहे
सूँधावासि अनइ नेउर-सदि
क्रमि आगइ आगम कहे

१६५

अवलंबि सखी-कर पगि-पगि ऊभी
रहती, मद वहती रमणि
लाज-लोह-लंगरे लगायइ
गय जिम आणी गय-गमणि

१६४. प्रिया-मिलन आतुर हरिहि नूपुर और अवास
कहत वधाई रव मिसनि आगलि चलि स-हुलास
१६५. पग-पग ठ्ठकति कर दिये सखी करे ये बाल
लँगर लाज कुल की चरन, मानहुँ गज छछाल

१६४—हंस के समान चाल वाली । का । उत्कंठित । हुए । कृष्ण से । वधाई-दारों । जैसे । चलकर । सुगंधि ने । और । नूपुर के शब्द ने । आकर । आगे, पहले से । आना । कह दिया, बता दिया, सूचित कर दिया ।

१६५—पकडकर । सखी का हाथ । पैर-पैर पर । खड़ी । रहती हुई । मद को बहाती हुई । रमणी । लज्जा-रूपी लोह का लंगर । लगाये हुए । हाथी । जैसे । लायी गयी । गज-गामिनी ।

१६४—व० स० । अनुप्रास । यमक । उपमा ।

१६५—व० स० । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । यमक । रूपक । उपमा ।

१६६

देहली धसति हरि जेंहडी दीठी,
आणँद को ऊपनउ अ-माप
तिणि आप-ही करायउ आदर
ऊभा करि रोमाँ-सूं आप

१६७

वहि मिळी घडी, जाइ घणूँ वाँछता
घण दीहाँ अंतरइ घरि
अंकमाळ आपे हरि आपणि
पधराव्री त्री सेज परि

१६६. देहरि मे जेहरि लखी हरि जाही छिन माँहि
रोम-असु आनद तब भये नैन को चाहि
१६७. चाहत हे त्योही भयी, अंतर हो बहु काल
अक लये परजंक पर बैठारी ढिग बाल

१६६—देहरी मे। प्रवेश करती हुई। कृष्ण ने। ज्योही। देखी। आनन्द, हर्ष। कोई, अनिर्वचनीय। उत्पन्न हुआ। माप-रहित, अपार। उसने। स्वत ही। करवाया। समान। खडे। करके। रोमो द्वारा। स्वत।
१६७—वह। प्राप्त हुई। घडी, वेला। जिसे। बहुत। चाहते थे। बहुत। दिनों के। बाद। घर मे। अंकवार। देकर। कृष्ण (ने)। स्वयं। बिठलायी। स्त्री, वधू। शय्या पर।

१६६—(१) जेहरि (=पैर का एक गहना)।

१६६—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। अतिशयोक्ति।
१६७—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास।

१६८

अति प्रेरित रूप आँखियाँ अ-त्रिपत
माहव्र जद्यपि त्रिपत - मन
वार-वार तिम करइ विलोकण
धण-मुख, जेही रंक धन

१६९

आजाति जाति पट-घूघट अंतरि
मेळण अेक करण अमिळी
मन दंपती कटाछि दूति-मय,
निय मन सूत्र, कटाछि नळी

१६८. नैन भरे के चोर रुकमिनि लखि हरि के भये
ज्यों निरधन मन दौर अगनित धन पाये बढ़ति

१६९. आवत जात कटाछ वर ओढि घुँघट की ओट
दूती मन जोरन चली देखि दुहुँन की जोट
पति को मन वानो भयो, तानो रुकमिनि-चेत
नली फिरति दुहुँ ओर ते रति कटाछ पट हेत

१६८—बहुत। (रूप के दर्शन के निमित्त) प्रेरित। रूप के द्वारा। आखे। अ-तृप्त। माधव, कृष्ण। यद्यपि। तृप्तमना, मन मे सतुष्ट। वारवार। वैसे। करते है। अवलोकन। प्रिया के मुख को। जैसे। दरिद्र। धन को।

१६९—आते और जाते है। घूघट-पट के। भीतर। मिलाने वाले। एक करने वाले। अनमिले, नही मिले हुओ को। दंपति के मनो को। कटाक्ष। दूती रूपी। अपने। मन। धागे। कटाक्ष। (बुनने की) नलिका।

१६९—(२) मिलिअे।

१६८—व० स०। अनुप्रास। लाटानुप्रास। उपमा।

१६९—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास लाटानुप्रास। रूपक।

१७०

वर नारि नेत्र निज वदन विळासा
जाणिय अंतहकरग जई
हसि-हसि भ्रू हे, हेक-हेक हुइ,
ग्रिह वाहिरि सहचरी गयी

१७१

अेकंति उचित क्रीड़ा-चउ आरँभ
दीठउ सु न किहि देव–द्रुजि
अ–दिठ अ-स्रुत किम कहणउ आवइ
सुख तइ जाणणहार सु–जि

१७० नारि नैन निज तन निरखि विहँसि मिली जव भौंह
वाँह गहत हिव लाइकै सखी गयी दे सौंह
१७१. गुपत उचित आरभ नहि सुन्यो लह्यो द्विज-देव
विनु देख्यो क्योंकरि कहै, जाननहारो देव

१७०—वर और वधू के। नेत्र के। अपने, उनके। मुख के। विलासो से, मुद्राओ से, चेष्टाओ से। जाना, समझा। हृदय (का भाव)। जव। हँस-हँसकर। भौहो मे। एक-एक करके। घर के। वाहर। सखिया। चली गयी।

१७१—एकान्त मे। उचित, करने योग्य। केलि का। विधान। देखा। वह। नही। किसी। देव या द्विज ने। न देखा हुआ। न सुना हुआ। कैसे। कहने मे आवे। सुख। वह। जानने वाले। वे ही (दपति)।

१७०—(१) विलासी।
१७१—(४) ते।

१७०—व० स०। अनुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश।
१७१—व० स०। अनुप्रास। हेतु।

१७२

पति पव़न प्रारथित, त्री तत्र निपतित,
सुरति अंति अेहव़ी सिरी
गजेंद्र क्रीड़ताँ सु वियाकुळ-गति
नीरासइ परि कमळिणी

१७३

कीधइ मधि माणिक हीरा कुंदणि
मिळिया कारीगर मयण
स्यामा तणइ लिलाटि सोहिया
कुंकम-बिदु प्रसेद-कण

१७२. सुरत-अंत तिय सेज लखि विहँसि करत पिय पौन
मनहुँ कमलिनी मसलि गज धरी सरोवर-कोन
१७३. कूँकूँ की बेंदी लसत, मधि प्रसेद तिय-भाल
मनहु काम कुदन जरचो हीर-कननि मे लाल

१७२—पति। पवन। चाहता है। स्त्री। वहा। पड़ी हुई। रति के। अन्त मे। ऐसी। शोभा। हाथी (के)। क्रीड़ा करने से। अति। व्याकुल दशा वाली। नीराशय मे, सरोवर में। जैसे। कमलिनी, कमल की लता।

१७३—करके, रख कर। बीच मे। लाल मणि (को)। हीरे। खरे सोने मे। मिलाये, जड़ दिये। कारीगर, कलाकार। मदन, कामदेव (ने)। रुक्मिणी। के। ललाट पर। शोभित हुए। कुंकुम का (लाल) विंदु। पसीने की बूंदे।

१७२—(१) पारथित। (३) क विगलित गति।
१७३—(२) मिळियउ।

१७२—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। उपमा।
१७३—व० स०। अनुप्रास। गम्योत्प्रेक्षा।

१७३ (क)

[त्री-वदनि पीतता, चिति व्याकुळता,
हियइ ध्रगध्रगी खेद हुह
धरि चखि लाज, पगे नेउर-धुनि,
करे निव्वारण कंठ-कुह]

१७४

तिणि ताळि सखी-गळि स्यामा तेही,
मिळी भमर-भारा जु महि
वळि ऊभी थइ घणा घाति वळ
लता केळि - अवलंब लहि

१७३(क)वदन पीत, चित विलकुलित, हिय धरधर, अँग खेद
लाज द्रिगनि, मंजीर धुनि, रह्यो कंठ पिक भेद
१७४. काल तिही सु उताल ह्वै वाल सखी-गल लागि
मनहुँ वेलि वेली चढी भँवर-भार अनुरागि
आली-गल लपटाइ, तन मरोरि ठाढ़ी भयी
लता केलि पर छाइ रहति लिपटि ज्यों कनक की

१७३(क)वधू के मुख पर। पीलापन, फीकापन। चित्त मे। विकलता। हृदय मे। धुकधुकी। खेद, खिन्नता। हुआ। रखकर। आखो पर (चक्षु)। घूघट। पैरो मे। नूपुरो की ध्वनि। किये। वर्जित, दूर। कठ का कूकना, मधुर शब्द।

१७४—उस समय मे। सखी के गले मे। रुक्मिणी। वैसी। मिली, पडी हुई। भ्रमर के भार से। पृथ्वी पर। फिर। खडी हुई। बहुत। डालकर। मोड, लपेटे। वेल। केले के झाड का। सहारा। लेकर।

१७३(क)—प्राचीन प्रतियो में यह पद्य नही है।
१७४—(२) वारा जु।

१७३(क)—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास।
१७४—व० स०। लाटानुप्रास। उपमा।

१७५

पुनरपि पधरावी कन्हइ प्राण-पति
सहित लाज भय प्रीति सा
मुगत केस, त्रूटी मुगतावळि,
कस छूटी छुद्र-घंटिका

१७६

सुखि लाधइ केळि स्याम स्यामा सँगि
सखिअे मन-रखिअे सँघट
चउकि-चउकि ऊपरि चित्र-साळी
हुइ रहियउ कहकहाहट

१७५. छुटी बेनि, छूटी कसै, टूटी मुकता-माल
नीवी-ग्रँथि वेगी छुटी बैठारत ढिग लाल
१७६. सुख पायो अति स्याम स्यामा सँग, आली लखति
कुहकुहाट करि वाम मिलति प्रसाद-प्रसाद जा

१७५—फिर से। विठायी। पास। प्राणो के पति के, प्रियतम के। युक्त। लज्जा (से)। डर (से)। प्रेम (से)। वह। छूटे। वाल। टूटी मुक्तावली, मोतियों की माला। कसनी, कंचुकी का वधन। खुल गयी। करधनी।

१७६—सुख। प्राप्त होने पर। क्रीड़ा का। कृष्ण को। रुक्मिणी के साथ। सखियो के। मन रखने वाली। समूह मे। प्रत्येक सहन के। ऊपर। चित्रशाला के, रंगमहल के। होने लगा। कहकहाहट (हास्यविनोद की वातें)।

१७५—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक।
१७६—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। पुनरुक्तिप्रकाश।

१७७
राता तत-चिंता, रत-चिंता - रत,
गिरि-कंदरि घरि बिन्हे गण
निद्रा-वसि जगि अेहु महा-निसि
जामिअे कामिअे जागरण

१७८
लिखमी-वर हरख-निगरभर लागी
आयु रयणि त्रूटंति इम
क्रीडा-प्रिय पोकार किरीटी,
जीवित-प्रिय घडियाळ जिम

१७७. ब्रह्म रचे, रत में रचे, गिरि-महलनि के वास
सोवत जन, जोगी जगत कामि निसा परकास
१७८. हरि हरखे, निसि यों छिही, कामी की ज्यो आउ
घटिबे की घड़ियाल ज्यों तमचुर-वैन न भाउ

१७७—अनुरक्त, लीन। तत्त्व-चिंतन मे। रति के चिंतन मे लीन। पहाड़ों की गुफाओ मे। घरो मे। दोनो। वर्ग। निद्रा के वशीभूत होने पर। जगत के। इस। महा-रात्रि मे, अर्ध-रात्रि के समय। योगी जनों का (यामिन्)। कामी जनो का। जागना।
१७८—लक्ष्मी के पति (को)। हर्ष-निर्भर, हर्ष मे डूबे हुए। लगी। आयु। रजनी, रात्रि। खूटती हुई, समाप्त होती हुई। यो। क्रीड़ा-प्रिय को। कुक्कुट की पुकार। जीवन है प्रिय जिसे उस व्यक्ति को। घड़ी का घटा। जैसे।

१७७—(३) थयउ >अेह।

१७७—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। यथासंख्य।
१७८—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। उपमा।

प्रभात-वर्णन

१७९

गत-प्रभा थियउ ससि रयणि गळंती,
वर मंदा सइ-वदन वरि
दीपक परजळतउ-इ न दीपइ,
नासफरिम सूरतन नरि

१८०

मेली तदि साध्र सु रमण कोक मनि,
रमण कोक मनि साध्र रही
फूले छंडी वास प्रफूले,
ग्रहणे सीतळताइ ग्रही

१७९. घटी रैनि, ससि-तेज ग्यो, पिय-गद तिया-गरूर
दीप-जोति फीकी लगत, ज्यो रन भाग्यो सूर
१८०. दपति विछुरत, कोक-जुग मिलत रैन के गैन
पुहप-गध फैल्यो, लही सीतलता गहनैन

१७९—तेज से हीन। हुआ। चंद्रमा। रजनी। बीतते हुए। पति। मांदा, रुग्ण। सती का मुख। समान। दिया। जलता हुआ भी। नही। शोभा देता है। आज्ञा-भग (या, अनुदारता, अदातृत्व) होने पर। शूरातन, वीरता। मनुष्य में।
१८०—डाली, रखी, की। तव। इच्छा। क्रीड़ा (की)। चक्रवाक (ने)। मन मे। क्रीडा करने (की)। कामशास्त्र (के अनुसार)। मन मे। इच्छा। निवृत्त हुई। फूलो ने। छोडी। सुगधि। खिलकर। गहनो ने। शीतलता। ग्रहण की।

१७९—(२) मांदां।

१७९—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। उपमा। विरोधाभास।
१८०—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। व्याघात।

१८१

धुनि उठी अनाहत संख-भेरि-धुनि,
अरुणोदय थिय जोग-अभ्यास
माया पटळ निसा-मय भंजे,
प्राणायामे जोति-प्रकास

१८२

संजोगिणि - चीर, रई, कंरव-स्री,
घर हट-ताळ, भमर, गउ-घोख
दिणयरि ऊगि अेतळां दीधउ
मोखियां बंध, बंधियां मोख

१८१. अनहद नाद उठ्यो तबै, जब प्रगट्यो रवि सूर
माया-तिमिर मिटे, भयो प्रगट ब्रह्म-तप पूर
१८२. सजोगिनि को चीर, रई कुमुदिनी-छद सकल
प्रगटे सूरज धीर गुनहगार ज्यों ये बँधे
ताले अरु घर हाट, भमर कमल के कोस में
गो-सालन की बाट, खुले सूर प्रगटे तुरत

१८१—ध्वनि । उत्थित हुई, उत्पन्न हुई । अनाहत (बजाने बिना ही हुई), अनहद नाद, ईश्वरीय ध्वनि जिसे योगी ध्यान में सुनते हैं । शंखों और नगाड़ों का शब्द । सूर्योदय । हुआ । योगाभ्यास (रूपी) । माया के । पर्दे । रात्रि-रूपी, अंधकार-रूपी । टूट गये । प्राणायाम के द्वारा । (१) ईश्वरीय ज्योति का, (२) सूर्य की ज्योति का । प्रकाश ।
१८२—संयोगिनी (प्रिय से संयुक्त नारी) का वस्त्र । मथानी (फेरणा) । कुमुदिनी की शोभा । घर । हाट या बाजार (हट्ट) के ताले । भौंरे । गायों के बाड़े । दिनकर ने, सूर्य ने । उदय होकर (उद्गम, उग्ग) । इतनों को (अप० एत्तुल) । दिया । खुले हुओं को । बंधन । बँधे हुओं को । बंधन से मुक्ति, उद्घाटन ।

१८१—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । सांग रूपक ।
१८२—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । दीपक । यथासंख्य । व्याघात ।

१८३

वाणिजू–वधू, गउ-वाछ, असइ-विट,
चोर, चकव, विप्र-तीरथवेळ
सूरि प्रगटि अे तळाँ समपियउ
मिळियाँ विरह, विरहियाँ मेळ

१८३. वनिक-वधू, गो वच्छ सों, असती लोदर संग
अरु चोरन कों रवि-उदै भयो मेल में भंग
द्विजवर तीरथ समुद जल तरल तरंगनि मांह
रवि ऊगे विरही इते मिलि वैठे इक ठाँह

१८३—व्यापारियों और उनकी स्त्रियो को। गायों और बछड़ों को। कुलटाओं (अ-सती) और कामुको को। चोरों और उनकी पत्नियो को। चक्रवाकों को। ब्राह्मणो और घाट के जनों को। सूर्य ने। उदय होकर। इतनों को। दिया (समर्प्)। मिले हुओ को। वियोग। बिछड़े हुओ को। मिलन।

१८३—व० स०। छेकानुप्रास। दीपक। यथासंख्य। व्याघात।

ऋतु-वर्णन : ग्रीष्म-वर्णन

१८४

नदि दीह वधे, सर-नीर घटे निसि,
गाढ धरा, द्रव्व हेम-गिरि
सु-तरु छाँह तदि दीध जगत-सिरि,
सूर राह किय जगत-सिरि

१८५

आकुळ थ्या लोक, केहव्वउ अचिरज ?,
वंछित छाया, अे विहित
सरण हेम-दिसि लीधउ सूरिज,
सूरिज - ही व्रिख-आसरित

१८४. घटे सरोवर-जल निसा, वधे नदी अरु दद्यौसु
धरा भयी कछुयक कठिन, हिमगिरि द्रव्यो कह्यौ सु
सु-तरु छांह द्वारावती दीनी है जगदीस
सूर-चद सिर राहु ज्यो त्यो सूरज जग सीस
१८५. कहा अचरिज, जेठहि तपे लोग चहत गृह छांह
वृख वैठो रवि हू चल्यो उत्तर दिसि के माह

१८४—नदी। दिन (दिवस, दिअह)। वढे (वृध्)। सरोवर का जल। घटे। रात्रि। कठोर, कडी। पृथ्वी। द्रवित। हिमालय। सुन्दर वृक्षो ने। छाया। तव (तदा)। दी (दत्त, दिद्ध)। जगत के (लोगो के) सिर पर। सूर्य ने। रास्ता। किया (कृत, किय)। जगत के सिर पर।

१८५—व्याकुल। हुए (स्थित, थिआ)। लोग। कैसा। आश्चर्य। अभीष्ट, वाछित। छाया। यह। उचित, विधि-विहित। शरण। हिमालय की दिशा का। लिया। सूर्य ने। सूर्य भी। (१) वृक्ष का (२) वृष राशि का। आश्रित (हुआ)

१८४—(१) वधइ। घटइ। (३) जगत्र।
१८५—(१) केवि हुअ।

१८४—व० स०। अनुप्रास। लाटानुप्रास। व्याघात।
१८५—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। श्लेष। काव्यलिंग।

१८६

स्रीखंड-पंक कुमकुमउ सलिल सरि
दळि मुगता - आहरण - दुति
जळ-क्रीड़ा क्रीड़ंति जगत-पति
जेठ मासि अेही जुगति

१८७

मिळि माह तणी माहुटि-सूँ मसि-व्रन,
तपि आसाढ तणउ तपन
जण न्रीजण-पण अधिक जाणियउ
मध्य - रात्रि प्रति मध्याहन

१८६. चंदन केसरि लाइ अँग, भूखन मुगता-पांति
जेठ मास सर विमल जल हरि खेलत इहि भांति
१८७. माह निसा माहोठि मिलि ह्वै कज्जल उनिहारि
ताही विधि औरौ कहत, सोऊ लेहु विचारि
तपन तपे आसाढ़ की दुपहर ऐसी होइ
जन निरजन यो लखत ज्यों माह निसा मधि होइ

१८६—चंदन का कीच। गुलाबजल (कुकुमक) का जल। सरोवर मे। शरीर मे। मुक्ताओ के। गहनो की। द्युति, शोभा। जल का विहार। खेलते है, करते है। जगत् के पति (कृष्ण)। ज्येष्ठ महीने मे। ऐसी (या, इसी)। युक्ति से।

१८७—मिलकर। माघ मास की। माघ-वृट्, माह मे होने वाली वर्षा से। काले वर्ण की, अधेरी। तपता है। आषाढ का। सूर्य। जन, लोगो ने। निर्जन-पन, सन्नाटा। ज्यादा। जाना। (माघ की) आधी रात की अपेक्षा। (आषाढ के) मध्याह्न मे।

१८६—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास।
१८७—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। व्यतिरेक।

१८८

नैरंति प्रसरि, निरधण गिरि-नीझर,
धणी भजइ धण-पयोहर
झोले वाइ किया तरु झंखर,
लव़ली दहन कि लू - लहर

१८९

कसतूरी गारि, कपूर ईंट करि,
नव़इ विहाणइ नव़ी परि
कुसुम कमळ - दळ माळ अळंक्रित
हरि क्रीड़इ तिणि धव़ळहरि

१८८. निरधन कदर निरझरनि, धनी पयोहर वाम
ढाख सु तरु झाखर किये लू लगि लता-विराम
१८९. गारो म्रिगमद, ईट सब सुभ कपूर-मय मेलि
पुहप कमल दल माल सजि ता पर हरि को खेल

१८८—नैर्ऋत दिशा का पवन। फैलता है, चलता है। धण (धन्या, प्रिया) से रहित। पहाडो और झरनो को। प्रिया वाले। सेवन करते है। प्रिया के कुचो को। झकोरे ने। चलकर (वाद्य, वज्ज)। किये। पेड़। झखाड, पत्रहीन। लता को। दहन की। लू की लहर (झकोरे ने)।
१८९—कस्तूरी (का)। गारा। कपूर की। ईंटे। करके। नये। प्रात.काल (विभान), सूर्योदय, दिन। नयी। भाति। पुष्पो और कमल-दलो की। मालाओ से। अलकृत, सजे हुए, शोभित। कृष्ण। विहार करते है। उस। महल मे।

१८८—(४) लवलां, लवना, नवली (=नयी)।

१८८—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। सदेह।
१८९—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। उदात्त।

१९०

ऊपडी धुड़ी, रवि लागी अंबरि,
खेतिअँ ऊजम, भरिया खाद्र
म्रिगसिरि वाजि किया किकर म्रिग,
आद्रे वरसि कीध धर आद्र

वर्षा-वर्णन

१९१

बग रिखि राजान सु पाव्रसि बइठा,
सुर सूता, थिउ मोर-सर
चातिग रटइ, बळाहक्कि चंचळ,
हरि सिणगारइ अंबहर

१९०. रजी चली अंबर उड़त, जगि किसान, भरि खाद्र
मृगसिर मृग-वैरी भयो, धरा आद्र की आद्र

१९१. वग रिखि पावस सुर सकल सोवत, बोलत मोर
सरस पपीहा सर सने करत बलाकी जोर
मेघ सिगार्‌यो नभ किधौ इन्द्र सिगार्‌यो आहि
आगम यह वरखानि को वरनत हौ अब ताहि

१९०—उठी (उत्पतित)। धूलि। सूर्य से। जा लगी। आकाश मे। खेतिहरोमे। उद्यम, क्रियाशीलता। भरे। खड्डे (खात)। मृगशिर नक्षत्र (के पवन) ने। चलकर। किये। किंकर्त्तव्यविमूढ (या, दुर्बल)। मृग। आर्द्रा नक्षत्र (के मेघो) ने। वरस कर। की (किद्ध)। धरा को। गीली (आर्द्र)।

१९१—वक, बगुले। ऋषि, साधु। राजा। वर्षा (प्रावृष्) मे। बैठ गये (उपविष्ट, वइट्ठ)। देवता। सो गये (सुप्त, सुत्त)। हुआ। मोरो का शब्द (स्वर)। चातक। बोलते है। वादल (बलाहक), या वलाकाएँ। दौड रहे है। इन्द्र। सजाता है (श्रृंगार)। अवर, आकाश को।

१९०—(१) धूलि, धूड़ि। रज। (३) वाइ। म्रिगसिर वाजि हुअउ वयरी म्रिग। (४) आद्रा।

१९१—(३) वळाकी=बलाका, सारस।

१९०—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक।
१९१—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास।

१९२

काळी करि कॉठळि, ऊजळि कोरण,
धारे स्रावण धरहरिया
गळि चालिया दसो दिसि जळ-ग्रभ,
थंभि न, विरहिणि-नइण थिया

१९३

वरसतइ दड़ड़ नड़ अनड वाजिया,
सघण गाजियउ गुहिर सदि
जळनिधि-ही सामाइ नहीं जळ,
जळ-बाळा न समाइ जळदि

१९२. कछुक घटा भइ स्याम, कछुक भयी इत ऊजरी
धार चुवै अठ जाम, हरी चिहूँ दिस धर भयी
दररि मेघ दूनौ भये, फहरि चल्यो जल फेन
थभै न सु दिन एक छिन, ज्यों विरहिनि के नैन

१९३. गिरिन मेह गहि महि पर्‌यो, गाजत सघन गभीर
मात नांहि जल जलधि मे, दामिनि घन विनु धीर

१९२—काली । करके । काठल, काली घटा । उजली । कोरण, सफेद घटा । धाराओ के साथ । सावन के बादल । गरजे; या बरस पडे । गल, वरस । चले । दशों दिशाओ मे । जल के गर्भ । ठहरते है (स्तभ्) । नही । विरहणी के नेत्र । हुए ।

१९३—बरसते समय । दडदड आवाज के साथ । नाले । पहाडो के । बजे, जोर से बोले । गहरा बादल । गरजा । गहरे । शब्द से । समुद्र मे । भी । समाता । नही । जल । जल की बाला, मेघ-पत्नी, विजली । नही । समाती है, ठहरती है । बादल मे ।

१९२—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । रूपक ।

१९३—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । यमक । अधिक ।

१९४

निह्से वूठउ घण, विणु नीळाणी
वसुधा थळि-थळि जळ वसइ
प्रथम समागमि वसत्र पदमणी
लीधइ किरि ग्रहणा लसइ

१९५

तरु - लता पल्लव्रित, त्रिणे अंकुरित,
नीळाणी नीळंबर न्याइ
प्रिथमी नदि-मइ हार पहिरिया,
पहिरे दादुर नूपुर पाइ

१९४. वरसे घन वन, नील अति, धरा-सरनि भयो पानि
वसन लये ज्यो नव-वधू सोहत है गहनानि
१९५. त्रिन - वेली - तरु - हरितई, वहै नील पट न्याइ
धरा हार नदि-मय धरे, दादुर - नूपुर पाइ

१९४—गरजकर (नि+घुष्, नि+घृष्), या खूब। बरसा (वृष्ट, वुट्ठ)। बादल। विना हरी हुई। पृथ्वी (पर)। स्थल-स्थल पर, जगह-जगह। पानी। वसता है, पडा है। पहले। मिलन मे। वस्त्र। पद्मिनी के, स्त्री के। ले लेनेपर, उतार डालने पर। मानो। गहने। शोभा देते है।

१९५—पेड और वेले। नये पत्तो से युक्त। तृण, घास। अंकुर-युक्त। हरी हुई, हरियाली धारण की। नीले वस्त्र के। समान (न्याय से)। पृथ्वी ने। नदी-रूपी। हार। पहने (सं० परिधा, अप० पहिर)। पहने। मेढक (दर्दुर)-रूपी। पायजेव, नेवरी। पैरो मे।

१९४—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। उत्प्रेक्षा।
१९५—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। उपमा। रूपक।

१९६

काजळ गिरि-धार रेह काजळ करि,
कटि-मेखळा पयोधि कटि
मामोलउ बिदुळउ कूँकू—मइ
प्रिथमी दीध निलाट—पटि

१९७

मिळियइ तट ऊपटि विथुरी, मिळिया
धण धर धाराधर - धणी
केस जमण गँग - कुसुम - करवित,
वेणी किरि वेणी वणी

१९६ स्याम गिरि सु काजर नयन, कटि-मेखला पयोधि
इन्द्र - वधू वेदी अरुन, धरा नवल तिय ओधि

१९७. घन-धर दपति के मिले नदी - केस गये छूटि
वेनी मिसि तीन्यो लरें लखे ताहि पहलूटि

१९६—काली। पहाड़ो की श्रेणी। रेखा। काजल की। करके, आज करके। करधनी। समुद्र (रूपी)। कमर मे। वीरवहूटी नामक कीड़ा। टीका, बिदुरी, बिंदी। कु कुम का। पृथ्वी (ने)। दिया। पट्ट के समान सपाट या चौड़े ललाट पर।

१९७—मिलाकर। किनारो को। उमडकर। बिखर गयी, फैल गयी (विस्तृत)। मिले। पत्नी। पृथ्वी-रूपी। बादल-रूपी (धारा+धर)। पति। केश। यमुना। गगा-जल रूपी फूलो से मिश्रित। वेणी, चोटी। मानो। त्रिवेणी। वनी, हुई।

१९७—(१) **मिलियउ।**

१९६—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। रूपक।

१९७—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। रूपक। उत्प्रेक्षा।

१९८

धर स्यामा सरिस, स्याम तर जळधर,
गेघूँवे गळि-बाहाँ घाति
भ्रमि तिणि संध्या-वंदण भूला,
रिखय न लखे सकइ दिन-राति

१९९

रूठा पइ लागि मनाव्रि करे रस
लाधी देह तणउ गिणि लाभ
दंपतिअे आळिंगण दीधा,
आळिंगण देखे धर-आभ

१९८. धर धन, घन पिय स्याम अति, रहे मनो लपटाइ
ताहि लखे भूले सवै संध्यावदनु चाइ
१९९. रूठे पिय प्यारी, प्रिया रूठे पीतम, देखि
पाइ लागि छिड़वत गरव धर-धन मिले सँपेखि

१९८—पृथ्वी। रुक्मिणी के। सदृश। कृष्ण के। समान। मेघ। मतवाले हो गये, एक मे मिल गये। गले मे भुजाए। डालकर। भ्रान्ति मे पड़ कर। उससे। संध्या-वदन की क्रिया। भूल गये। ऋषि, तपस्वी, साधु। नही। देख सकते है, अतर कर पाते है। दिन और रात को।
१९९—रूठे हुए (रुष्ट, रुट्ठ)। पैरो मे (पद)। लगकर। मनाकर, मान छुडा कर। करते है। आनन्द। प्राप्त (लव्ध, लद्ध)। शरीर का। गिनकर, समभकर। फायदा। दंपतियो ने। आलिंगन। दिये। आलिंगन। देखकर। धरा और आकाश का (अभ्र)।

१९८—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उपमा।
१९९—व० स०। अनुप्रास। लाटानुप्रास।

२००

जळ-जाळ स्रव्रति जळ काजळ-ऊजळ,
 पीळा हेक, राता पहल
आधोफरइ मेघ ऊघसता,
 महाराज राजइ महल

२०१

करि ईंट नीळ-मणि, कादउ कुंदण,
 थंभ लाल, पट पाच्चि थिर
मॅदिरे गउख सु पदमराग-मइ,
 सिखर सिखर-मइ मॅदिर - सिर

२००. नीर चुवत धोरे कछू कारे पीरे लाल
 मेघ महल उघसत चलत, तिहि पौढ़त नॅदलाल

२०१. कुंदन गारो, ईंट सब नीला, थाभे लाल
 पंचरग छाये अरुन अटा वज्र के जाल

२००—बादल। बहाते है, बरसाते है। पानी। काले। सफेद (उज्ज्वल)। पीले। कई (एक)। लाल (रक्त)। दूसरे (पर)। आधे आकाश मे, अधर मे, (या, छज्जो से)। बादल। रगड़ खाते है। राजाधिराज कृष्ण। विराजते है। महलो मे।

२०१—करके। ईंटे। नीलम की। कीच, गारा (कर्दम)। सोने का। स्तम्भ। लाल मणि के। शहतीर। पाचि (पच्ची) के। स्थिर, दृढ। महल मे। झरोखे (गवाक्ष, गवक्ख)। पद्मराग मणियो के। शिखर। हीरो के। महल के ऊपर।

२०१—(४) सिखर सिखि रमै (महलो की चोटियो पर मोर क्रीड़ा कर रहे हैं)।

२००—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक।

२०१—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। उदात्त।

२०२

धरिया तनि वसत्र कुमकुमइ धोया
सुंधा-प्रखोळित महल सुख
भरि स्रावण - भाद्रव भोगविजइ
रुकमणि-वरि अेहवी रुख

शरद्-वर्णन

२०३

वरिखा रितु गयी, सरद रितु वळती
वाखाणि सु वयणा - वयणि
नीखरि धर जळ रह्यउ निवाणे,
निधुवनि लज्जा स्त्री-नयणि

२०२. वसन कुसुंभी केसरी सावन-भादो माह
पहिरि, लाइ सोधे, रहत सुखी रुकमिनी-नाह
२०३. भयी सरद, वरिखा गयी, रह्यो नीर ठहराइ
जैसे रति में तियन के लाज रहति द्रिग आइ

२०२—धारण किये, पहने। शरीर मे। वस्त्र। गुलावजल से। धोये हुये। सुगधित द्रव्यो से पखारे हुए या छिड़के हुए। महल मे। सुख। सारे सावन और भादो (मे)। भोगे जाते है। रुक्मिणी के पति कृष्ण द्वारा। ऐसी। भाँति।

२०३—वर्षा ऋतु। बीत गयी। शरद ऋतु। लौटती, आती। बखानी। वह। वचन-वचन से, अनेक प्रकार के वचनो से। निखरकर, निर्मल होकर। पृथ्वी पर। पानी। रहा। नीचे स्थानो मे, नदी-सरोवर आदि मे। क्रीड़ा के समय। लाज। नारी के नेत्रो मे।

२०२—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास।

२०३—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। वाचक-लुप्ता उपमा

२०४

पीळाणी धरा, ओखधी पाकी,
सरद-काळि अेहवी सिरी
कोकिळ नि-सुर, प्रसेद ओस-कण,
सुरत-अंति मुख जिम सु-त्री

२०५

वितअे आसोज मिळे नभि वादळ,
प्रिथी पंक, जळ गुडळपण
जिम सत-गुरु कळि-कळुख तणा जण
दिपति ग्यान प्रगटे दहण

२०५. पीरी धर, ओखद पकी, पिक-सुर गो, परि ओसु
सुरत-अत ज्यो तिय-वदन, तैसे सरद उद्यो सु
२०६. नभ वादल, धर जल उजल, आये आसू मास
सदगुरु ते दीपति सु-बुधि, होत कलुख कलि नास

२०४—पीली हुई। पृथ्वी। ओषधिया, धान्यादि। पकी (पक्व)। शरत् काल मे। ऐसी। शोभा। कोयल। मौन (नि स्वर)। स्वेद-विंदु। ओस की बूदे। क्रीड़ा के अन्त मे। मुख। जैसे। नारी (का)।

२०५—वीत गये, दूर हो गये। अश्विन मास के (अ्श्वयुज्)। मिलने पर। आकाश मे। वादल। पृथ्वी मे। कीचड। जल मे। मलिनता। जैसे। सद्गुरु (के मिलने पर)। कलियुग के पाप। मनुष्य के। दीप्ति, प्रकाश। ज्ञान-रूपी। प्रकट होने पर। अग्नि (की)।

२०५—(३) मिळि > कळि।

२०४—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। रूपक। रूपक-गर्भित उपमा।
२०५—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। दीपक। रूपक-गर्भित उपमा।

२०६

गउ खीर स्रव्रति, रस धरा उदगिरति,
सर पोइणिअे थयी सु - स्री
वळी सरद स्रग - ळोक - वासिअे
पितरे - ही म्रित-लोक प्री

२०७

बोलंति मुहुरमुहु विरह गमइ वे,
तिसी सुकळ निसि सरद तणी
हँसणी ति न पासइ देखइ हँस,
हंस न देखइ हंसणी

२०६. गाइनि दूध, धरा सु-रस, सरवर पदमिनि-पांति
पितरन हू की सरद में धर मे इच्छा जाति
२०७. सुच्छ सरद की चांदनी बोलत है बहु वार
हस - हंसनी विनु लखे सहै विरह की मार

२०६—गाय । दूध (क्षीर) । बहाती है । रस । पृथ्वी । उगलती है (उद्गृ, उग्गिर) । सरोवरो में । पद्मिनी (कमलिनी) से । हुई । सुंदर शोभा । लौटी, आयी । शरद् ऋतु । स्वर्ग-लोक के वासियो को । पितरो को भी । मृत्यु-लोक, भू-लोक । प्रिय ।

२०७—बोलते है । बारबार । विरह (को) । गँवाते हैं । दोनो । वैसी (तादृश), ऐसी । शुक्ल, उज्ज्वल । रात्रि । शरद् ऋतु । की । हंसनी । उससे । नही । पास मे (पार्श्वे) । देखती है । हस को । हस । नही । देखता है । हसनी को ।

२०६—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास ।

२०७—व० स० । अनुप्रास । लाटानुप्रास । मीलित ।

२०८

ऊजळे अदरिसण निसि उजुआळी,
घणूँ किसूं वाखाण वणइ
सोळह कळा समाइ गयउ ससि
ऊजास-हि अप्प आपणइ

२०९

तुळि वइठउ तरणि, तेज-तम तुळिया,
भूप कणइ तुळता भुॅइ भाति
दिनि-दिनि तिणि लघुता प्रामइ दिन,
राति - राति तिणि गौरव्व राति

२०८. सरद-चादनी, कहि किती कलि मै कहौ वखानि
चंदा रह्यो समाइ कै निसि सोरहौ कलानि

२०९. तरनि तुला वैठो, तुले अंधकार अरु तेज
दिन दिन प्रति घटतै चल्यो, निसा वढ़ी उहि देज
भूप कनक की ज्यो करैं तुला, तिही विधि चाहि
रवि वैठो तुल-रासि मे सरद मास निरवाहि

२०८—उज्ज्वल वस्तुओ का। अ-दर्शन, लोप। रात्रि मे। उजियाली, उजली। अधिक। क्या। वखान, कथन, प्रशसा (से)। अधिक। सोलह। कलाओ (वाला)। समा गया। चद्रमा। प्रकाश मे। स्वय। अपने।

२०९—तुला राशि मे। वैठा, प्रविष्ट हुआ। सूर्य। प्रकाश और अंधकार, दिन और रात। तुले, वरावर हुए। राजा। कनक (सोने) से। तुलते हुए, तुलादान करते हुए। पृथ्वी (पर)। शोभा देते है (सं० भा)। प्रतिदिन। उससे (तेन), इस कारण से। छुटाई। पाते है। दिन। प्रति-रात्रि। उससे, इसी कारण से। वडाई। रात्रि।

२०८—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। मीलित।

२०९—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। यमक। व्याघात। द्वितीय हेतु।

२१०

दीन्हा मणि-मँदिरे कातिग दीपग,
सु-त्री समाणी माँहि सुख
भीतर थका बर्हिरि इम भासइ,
मनि लाजती सुहाग मुख

२११

छबि नव़ी-नव़ी, नव़-नव़ा महोछ्छव
मँडियइ जइ आणंद - मयी
कातिग घरि-घरि द्वारि कुमारी
थिर चित्रति चित्राम थयी

२१०. सुख कारन मनिमय घरनि कामिनि धरे सँजोइ
कातिक अंतर ते दिया बाहिर परगट होइ
राखी लाज समोइ तिय सुहाग अति ही भरी
ज्यो वा कों सुख होइ, त्यो दीपक परगट भये

२११. जन नित नव उच्छव करैं नव आनँद उनहार
चित्र-लिखी-सी लिखति है वारी कातिक वार

२१०—दिये, जलाये। मणियो से जटित महलो मे। कार्त्तिक (के)। दीपक। नारी (का)। समान अवस्थावाली सखियो मे बैठी हुई। सुख। भीतर। होते हुए (भी)। वाहर। ऐसे। दिखायी पडते है। मन मे। लजाती हुई (का)। सौभाग्य-संवधी। मुख पर।

२११—शोभा। नयी-नयी। नये-नये। वड़े उत्सव। किये जाते है (मंड्)। जव (यदा)। आनंद-मय। कार्त्तिक मे। घर-घर। द्वारों पर। कन्याएँ। स्थिर होकर। चित्र वनाती हुई। चित्र। वन गयी।

२१०—व० स०। अनुप्रास। उपमा।

२११—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश।

हेमंत-वर्णन

२१४

फिरियउ पछ्-वाइ, उतर फरहरियउ,
सहुअे सूहव़-उर सरग
भुयँग-धणी प्रिथमी-पुड़ भेदे
विव़रे पइठा बे वरग

२१५

होव़इ घटि नदी, हेम हेमाळइ
विमळ स्त्रिग लागा वधण
जोवनागमि कटि क्रिस थायइ जिम,
थायइ थूळ नितंब - थण

२१४. पच्छिम गो, उत्तर चल्यो, पैठे भुवँग पताल
निसि-द्यौसनि सोवत सबै ले छतिया मधि वाल
२१५. नदी हिमालय की घटी, स्त्रिग वधे मनु साधि
जोवन-आगम कटि छँटी, कुच-नितंब भे वाधि

२१४—फिरा, वदल गया, वद हो गया। पश्चिमी पवन (पश्च वायु)। उत्तरी पवन। चलने लगा। सभी को। सुभगा (पत्नी) का हृदय-स्थल। स्वर्ग। भुजग, साँप। पत्नी वाले पति। पृथ्वी के तल को (पुट)। फोड कर। विलो मे, तहखानो मे। प्रविष्ट हुए। दोनो। वर्ग, समूह।
२१५—होती है। घटी हुई, कृश। नदी। वर्फ (से)। हिमालय के। निर्मल। शिखर। लगे। वढ़ने। यौवन के आगमन पर। कमर। पतली। होती है। जैसे। होते है। स्थूल, मोटे। नितंव और स्तन।

२१४—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास।
२१५—व० स०। लाटानुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। उपमा। यमक। व्याघात।

२१२

सेव्रति नव्री प्रति नव्रा सवे सुख
जग-चा मिसि वासी जगति
रुकमणि-रमण तणा जु सरद - रिति
भुगति - रासि निसि दिन भगति

२१३

अेहि-ज परि थयी भीर कजि आयाॅ
धनॅजय अनइ सुयोधन
मासइ मगसिर भलउ जु मिळियउ,
जागियॅ मीटि जनारजन

२१२. तीनि-लोक-पति सरव-सुख ग्याता हरि तन पेखि
भुगति द्वारिका मे वसति सरद सेइ व देखि
२१३. अरजुन - दुरजोधन लखे ज्यो जागे बल हेत
अगहन मे त्यो - ही जगे हरि कलोल के हेत

२१२—सेवन करते है। नयी भाॅति। नये। सभी। सुखो को। जगत के सुखो के। वहाने। द्वारिका के निवासी। रुक्मिणी के पति के। शरद ऋतु मे। भोगो मे और रास-क्रीडा मे। राते। दिन। (सज्जनो की) भक्ति मे, आवभगत मे, आदर-सत्कार मे, आराधना मे।

२१३—यही, ऐसी ही। विधि या वात या भाति। हुई। सहायता के लिए। आने पर। अर्जुन। और। दुर्योधन के। मासो मे। अगहन (मृगशिरस्)। भला (भद्र, भल्ल)। मिला, प्राप्त हुआ, आया। जगे। नीद से। जनार्दन, कृष्ण।

२१२—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक।
२१३—व० स०। छेकानुप्रास।

हेमंत-वर्णन

२१४

फिरियउ पछ्र-वाइ, उतर फरहरियउ,
सहुअे सूहव़-उर सरग
भुयँग-धणी प्रिथमी-पुड़ भेदे
विव़रे पइठा बे वरग

२१५

होव़इ घटि नदी, हेम हेमाळइ
विमळ स्रिंग लागा वधण
जोवनागमि कटि क्रिस थायइ जिम,
थायइ थूळ नितंब - थण

२१४. पच्छिम गो, उत्तर चल्यो, पैठे भुवँग पताल
निसि-चौसनि सोवत सबै ले छतिया मधि बाल

२१५. नदी हिमालय की घटी, स्रिग वधे मनु साधि
जोबन-आगम कटि छँटी, कुच-नितंव भे वाधि

२१४—फिरा, वदल गया, वद हो गया। पश्चिमी पवन (पश्च वायु)। उत्तरी पवन। चलने लगा। सभी को। सुभगा (पत्नी) का हृदय-स्थल। स्वर्ग। भुजग, साँप। पत्नी वाले पति। पृथ्वी के तल को (पुट)। फोड कर। विजो मे, तहखानो मे। प्रविष्ट हुए। दोनो। वर्ग, समूह।

२१५—होती है। घटी हुई, कृश। नदी। वर्फ (से)। हिमालय के। निर्मल। शिखर। लगे। वढने। यौवन के आगमन पर। कमर। पतली। होती है। जैसे। होते है। स्थूल, मोटे। नितव और स्तन।

२१४—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास।

२१५—व० स०। लाटानुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। उपमा। यमक। व्याघात।

२१६

भजति सु-ग्रिह हेमंति सीत-भइ,
मिळि निसि त न कोइ वहइ मगि
कोइ कोमळ वसत्रे, कोइ कंवळि,
जंण भारियउ रहंति जगि

२१७

दिन, जेहा रिणी रिणाई-दरसणि,
क्रमि-क्रमि लागा संकुड़ण
नीठि छँडइ आकास पोस-निसि,
प्रउढा करखण पंगुरण

२१६. धनी आलसू अरु पथिक पोस मास मधि होत
घर-वासी मेलो चलै मारगु चितहि उदोत
कोमल वसननि मे धनी, पंथी कांवरि मांहि
दवे रहत सीतहि डरपि मृगनैनी परि छांहि
२२७ लहनाइत देखे रिनी घटत जात त्यों द्यौसु
प्रौढ़ा पट ज्यों नहि तजत अवर की निसि पौसु

२१६—सेवन करते है। सुदर घरो को। हेमंत ऋतु मे। शीत के भय से। मिली, पडी। रात। तो, तव। नही। कोई। चलते है। मार्ग मे (अप० मग्ग)। कोई। मुलायम। वस्त्रो से। कोई। कबलो से। जन-समूह। भार-युक्त, वोझ उठाये हुए। रहता है। जगत मे।

२१७—दिन। जैसे। कर्जदार। ऋणदाता (महाजन) के दर्शन से। क्रमशः। लगे। सिकुडने, छोटे होने (सकट, सकुच)। कठिनता से। छोड़ती है। आकाश को। पौष मास की (लवी) रात। प्रौढ़ा नायिका। खींचने से (कर्षण)। वस्त्र को।

२१६—(२) मलिन सु तनु केइ।
२१७—(१) जेहो। (३) छुडै।

२१६—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।
२१७—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। उपमा। वाचक-लुप्ता उपमा।

२१८

अळुझाया तन-मन आप-आप - मइँ
विहृत सीत रुकमणी-वरि
वाणि-अरथ जिम, सकति सकतिवँत,
पुहप गंध, गुण गुणी परि

शिशिर-वर्णन

२१९

मकरध्वज-वाहणि चढिउ अ—हिमकर,
उतर वाउ वाओ अतुर
कमळ बाळि विरहणी-वदन किय,
अंव पाळि संजोगि-उर

२१८. सकति पुरुख, वानी अरथ, गुनी पहुप, गुन गध
त्यों तन-मन हरि-रुकमिनी दुहुँनि पर्‌यो रस-बंध
२१९. मकर माह जब रवि भये उत्तर के अति हेत
कमल विरहिनी-मुख भये, अंव सँयोगिनि-चेत

२१८—उलझाये। तन और मन। परस्पर मे। दूर किया। शीत को। रुक्मिणी और उसके पति ने। शब्द और अर्थ। जैसे। शक्ति और शक्तिमान्। पुष्प और गंध। गुण और गुणी। समान, जैसे।
२१९—काम के वाहन (मकर) की राशि पर। चढा, प्रविष्ट हुआ। अशीतांशु, सूर्य। उत्तरी। पवन (ने)। चलकर। तेज, प्रवल (आतुर)। कमल (को)। जलाकर। वियोगिनी का मुख। किया। आम के पेड़ (को)। पालकर। सयोगिनी का हृदय।

२१९—(२) अउर > अतुर।

२१८—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। उपमा।
२१९—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। व्याघात। रूपक।

२२०

पारथियाँ क्रिपण-वयण-दिसि पवणे
 विण अंवह् नाळिया वण
लागइ माघि लोग प्रति लागउ
 जळ दाहक, सीतळ जळण

२२१

निय नाम सीत, जाळइ वण नीळा,
 जाळइ नळणी थकी जळि
पातिगि तिणि द्वारिका न पइसइ,
 मँजियइ विण् मन तणइ मळि

२२०. विना आव वारी सवै उत्तर चलि वनराइ
 माह् अनल सीरो लग्यो, जनन नीर सु वलाइ
२२१. नाउ सीत, वारत वननि, पदमिनि जल मधि जारि
 विनु मजन मन पातकी भजत न हरि को वारि

२२०—याचकों के मागने पर । कजूस के मुख से निकलने वाले वचन अर्थात् उत्तर (कोरा जवाब) की दिशा के, उत्तर दिशा के । पवन ने । विना, छोडकर । आम के । जला दिये । जगल । लगने पर । माघ के । लोगो को । लगा । पानी । जलाने वाला, सताप-कारक । ठडी । अग्नि ।

२२१—अपना (निज) । नाम । ठडा । जलाता है । वन । हरे । जलाता है । कमलिनी (को) । स्थित । जल मे । उस पाप से । द्वारिका-पुरी (मे) । नही । प्रवेश पाता है । धोये । विना । मन के । पाप के ।

२२०—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । यमक । चित्र । व्याघात । विरोधाभास ।

२२१—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । विभावना । हेतूत्प्रेक्षा ।

२२२

प्रतिहार प्रताप करइ, सी पालइ,
दंपति ऊपरि दसइ दिसि
अगिनि - अरक मिसि धूप - आरती
निय तणु वारइ अहो-निसि

शिशिर और वसंत की संधि

२२३

रवि वइठउ कळसि, थियउ पाळट रितु,
ठरे जु द्रह कीयउ हिम ठंठ
ऊडण पंख समारि रहे अळि,
कंठ समारि रहे कळ-कंठ

२२२. निज प्रताप करि पौरिया हरि-रुकमिनि दोउ गेह
अरक धूप की आरती वारत तिय निसि देह

२२३. कुभ अरक बैठो जवै, हिम ते निकस्यो सीत
पांख उड़न कों अलि सजे, कोइल कलकल गीत

२२२—प्रतीहार का कार्य । प्रताप, तेज । करता है । शीत (को) । वरजता है, पास नही आने देता है । पति-पत्नी के । ऊपर । दसो दिशाओ मे । अग्नि और सूर्य । धूप और आरती के वहाने । अपने । शरीर को । न्यौछावर करते है । दिन-रात ।

२२३—सूर्य । वैठा । कुभ राशि मे । हुआ । परिर्वातत । ऋतु । ठडे पडे, कोमल हुए, पिघलने लगे । जो । सरोवर (सं० ह्रद, अप० दह) । किये । हेमन्त ने । कठोर । उडने को । पाखे । तय्यार कर रहे है । भौरे । गले । तय्यार कर रहे है । कोकिल ।

२२२—(१) प्रतिहारि । करे । पाले । (३) अरक अगनि, उगति अरक ।
२२३—(२) ठरे हेम दह कीध ठँठ ।

२२२—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । अपह्नुति । यथासंख्य ।
२२३—व० स० । अनुप्रास । लाटानुप्रास । शब्दार्थवृत्ति दीपक ।

२२४

वीणा डफ महुअरि वंस वजाअे,
रोरी करि मुखि पंचम राग
तरुणी-तरुण विरहि - जण - दुतरणि
फागुणि घरि-घरि खेलइ फाग

२२५

अजहूं तरु पुहप न पलव्र न अंकुर,
थोड़ डाळ गादरित थिया
जिम सिणगार अ-कीधइ सोहइ
प्री-आगम जाणियइ प्रिया

२२४. मुख पंचम, री-री करत, तरुन-तरुनि को वागु
फागुन मे घर-घर फिरैं निसदिन खेलत फागु
डफ, महुवरि अरु वीन, वस वजावैं, सव हसैं
विरही को तन छीन, सजोगी हुलसैं लसैं

२२५. अंकुर पल्लव, पहुप नव, पेड़-डार गदराति
पिय-आगम ज्यों होति है विनु भूखन तिय-काँति

२२४—वीणा । डफ, चग । मधुकरी, वास का एक वाजा । वासुरी । वजाकर । रोली । हाथ गे । मुख मे । पचम राग । युवतिया और युवक । विरही जनो के लिए दुस्तर । फागुन मे । घर-घर मे । खेलते है । फाग ।

२२५—अभी तक (अद्यापि) । पेडो मे । पुष्प । नही । पल्लव । नहीं । अकुर । थोडी-थोडी । डालिया । गदरायी हुई । हुई है । जैसे । शृगार । न किये हुए । शोभा देती है । प्रिय का आगमन । जानकर । प्रियतमा ।

२२४—(२) रीरी । २२५—(१) तरि ।

२२४—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । पुनरुक्तिप्रकाश ।
२२५—व० स० । अनुप्रास । लाटानुप्रास । उपमा ।

वसंत-वर्णन

वसंत-जन्मोत्सव-रूपक

२२६

दस मास समापति गरभ दीध रिति,
मनि व्याकुळ मधुकर मुणणंति
कठिण वंइण कोकिळ मिसि कूजति,
वनसपती प्रसव्रती वसंति

२२७

पकव्रानै पानै फळे सु - पुहपे
सुरँगे वसत्रे दरब स्रव
पूजियइ कसट-भँगि वनसपती
प्रसूतिका होळिका प्रब

२२६. गरभ धर्‌यो दस मास को सुत वसंत वन-राइ
जायो, व्याकुल मधुप-रव, कोकिल मिस करिहाइ
२२७. पान मिठाई पुहुप फल वसन धरे वहुरग
पूजी होरी-सी मनो वनसपती दुख-भग
मलयानिल लागे लग्यो पतझर के मिस रोग
महुवा-फूलनि मिसि कियो सुत वसंत दुख जोग

२२६—दस। महीने। समाप्त हो गये। गर्भ मे। दिये, धारण किये। ऋतु (वसत) को। मन मे, जी मे। विकल। भ्रमर। वोलते है। विपम। वेदना से। कोयल (के)। वहाने से। वोलती है, कराहती है। वनस्पति। जन्म देती है। वसंत (को)।

२२७—पक्वान्नो से। पानो से (पर्ण)। फलो से। सुदर पुष्पों से। सुदर वस्त्रो से। द्रव्य से। सव। पूजी जाती है। कष्ट-भग होने पर। वनस्पति (का)। दाई, प्रसव कराने वाली। होली का पर्व (त्यौहार)।

२२६—(१) समा पति। रति। (२) विळळंत>मुणणंत। (३) वेण।

२२६—व० स०। अनुप्रास। अपह्नुति। रूपक।
२२७—व० स०। अनुप्रास। यमक। रूपक।

२२८

लागी दळि कळि मळयानिळ लागइ
त्रिगुणि प्रसरतइ खुधा-त्रिसि
रटति पुत्र मिस मधुप, रूँख-रग्इ
मात स्रव़ति मधु दूध मिसि

२२९

वणि नयरि घराघरि तरि-तरि सरव़रि
पुरख - नारि - नासिका पथि
वसँत जनमियउ दियण वधाई
रमइ वाइ चढि पव़न-रथि

२२८ मात वनसपति स्रवति है मधु सु-दूध नुत हेत
रोवत सुनि मधुकर मिसनि, हित करि पय मुख देत
२२९. घर-पुर वन तरु सरनि के लहि दपति पथ नास
देन वधाई वसँत की परिमल चढ़्यो अकास

२२८—लगी। शरीर मे। मलयानिल-रूपी कलियुगी पवन (के)। लगने पर। तीन गुणो के। प्रसार होने पर। भूख और प्यास। रोता है। पुत्र। वहाने, रूप मे। भ्रमर के। वृक्ष-राजि, वनस्पति। माता। वहाती हे। पुष्प-रस (के)। दूध। वहाने।

२२९—वनो मे। नगरो मे। घर-घर मे। पेड-पेड पर। सरोवरो मे। पुरुषों ओर नारियो के नाक-रूपी मार्गो मे। वसत। जनमा। देने को। वधाई। फिरता है। सुगध (रूपी वधाईदार)। चढकर। पवन-रूपी। रथ पर।

२२८—(२) अंबु>खुधा। (३)मधूक>मधुप।

२२८—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। श्लेप। अपह्नुति। रूपक।
२२९—व० स०। अनुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। रूपक।

२३०

अति अंब-मव्र तोरण, अजु अंबुज-
कळी सु मंगळ-कळस करि
वंदरवाळ वॅधाणी वल्ली
तरुव्र अेका वियइ तरि

२३१

फुट वन्नरेण कच नारिकेळ - फळ,
मज्ज ति किरि दधि मंगळिक
कुकुम - अखित पराग - किजळक,
प्रमुदित अति गाव्रंति पिक

२३०. ऑव-मौर तोरन, कली अवुज कलस विचारि
बेली वंदरमाल यों वॅधी विरख की डारि
२३१. वांदर फारे नारियर, वहै मज्ज दधि भाइ
प्रमुदित कोकिल तियनि ज्यो उठी मधुर सुर गाइ
रोरी कमल-पराग है, चंपक केसर रूप
आखत करि हरखत भये कर्‍यो उछाह अनूप

२३०—प्रचुर । आम की । मंजरी । तोरण । और जो (अ + जु) । कमल की कलिया । वे । मागलिक कलस । किये । वदनवार । वाधी गयी । वेले । एक पेड से । दूसरे पेड तक ।
२३१—स्फुट, फोडा । वानर ने । कच्चा । नारियल का फल । गरी । वह । मानो । दही । मांगलिक । कुकम और अक्षत । पराग और केशर । प्रसन्न हुई । वहुत । गाती है । कोयले ।

२३०—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । उत्प्रेक्षा । रूपक ।
२३१—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । उत्प्रेक्षा । रूपक ।

२३२

आयउ इळि वसँत, वधाव्रण आयी
पोइणि, पत्र जळ ऍणि परि
आणँदि वणे काच-मइ ऍगणि
भामिणि मोतिअँ थाळ भरि

२३३

कामा वरखंती काम-दुघा किरि,
पुत्रव्रती थइ मनि प्रसन
पुहप करणिकर - केसू पहिरे
वनसपती पीळा वसन

२३२. दयी वधाई अलिन सुनि, चलि पदमिनी उताल
पदम-पात जल-मुगत भरि लिये काच को थाल

२३३. कामधेनु ज्यो वनसपति पूत जने मन फूलि
पहिरचो केसू-फूल मिस केसरि चीर अमूलि
कणयर करणी सेवती कूजा और गुलाब
सोनजुही फूले सबै अपनी-अपनी फाव

२३२—आया। पृथ्वी पर (इला, इडा)। वसंत ऋतु। वधाने के लिए। आयी। पद्मिनी, कमलिनी-रूपी नारी। पत्ते पर। जल-कण। इस भाति। आनद से। बनकर, सजकर। काच-जटित। आगन मे। स्त्री। मोतियो से। थाल-को भर कर।

२३३—कामनाओ को। बरसाती हुई, मुँह-माँगे दान देती हुई। कामधेनु। मानो। पुत्रवाली। हुई। मन मे। प्रसन्न। पुष्प। कर्णिकार और टेसू (के)। पहने। वनस्पति ने। पीले। वस्त्र।

२३२—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उपमा।

२३३—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उत्प्रेक्षा। रूपक।

२३४

कणियर तरु करणि सेव्रॅत्री कूजा
जाती सोव्रन गुलाल जत्र
किरि परिव्रार सकल पहिरायउ
वरण-वरण विध दे वसत्र

२३५

विधि अेणि वधाव्रे वसॅत वधायउ,
भालिम दिनि-दिनि चढि भरण
हुलराव्रणे फागि हुलरायउ,
तरु गहवरिया, थिय तरुण

२३४. वनसपती जायो वसॅत, करे पुहुप-आचार
न्हाइ उठे कुसराति मिसि पहिरायो परिवार
२३५. विधि सो तरुवर तरुनि मिलि दिन-दिन चढ़ती देह
हुलरायो सु वसत-सुत फागुन में करि नेह

२३४—कनेर, कर्णिकार। वृक्ष। करना। सेवती। कूजा। जाती। सोवन-चंपा। गुल्लाला। जहा, वहाँ। मानो। कुटुम्ब। सारा। पहराया, पहरावनी दी। रग-रग के। विविध; विधिपूर्वक। देकर। वस्त्र।
२३५—प्रकार से। इस। बधावो से। वसत को। बधाया। भलापन, सौदर्य, श्रेष्ठता (भद्र, भल्ल, भला)। प्रतिदिन। चढता है, प्राप्त होता है। पूर्णता को। लोरियो से। फाग-रूपी। दुलराया। पेड। गहरे (सघन) हुए। हुआ। युवा।

२३५—(१) वधावे वसॅत वधाअे।

२३४—व० स०। अनुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। उत्प्रेक्षा।
२३५—व० स०। अनुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। उत्प्रेक्षा।

वसंत-राजा-रूपक

२३६

मंत्री तिहँ मयण, वसंत मही-पति,
सिला सिँघासण धरि सधर
माथइ अब छत्र मडाणा,
चलि वाइ मंजरि, ढळि चमर

२३७

दाड़िमी-बीज विसतरिया दीसइ,
निउँछाव्ररि नॉखिया नग
चरणे लुचित खग फळ चुबित
मधु मुचति सिंचति मग

२३६. मत्री मैन, वसत नृप, सिला सिघासन ठौर
छत्र अब डवर भयो, चल मंजरी सु चौर
२३७. न्यौछावरि करि लाल करि अनार ही के मिसनि
चरन चोच के साल किये धरा छिरकी रसनि

२३६—मत्री, सचिव । वहा । मदन, कामदेव । वसत । राजा । शिला । सिंहासन । धरा, रक्खा, स्थापित किया । दृढ । सिर पर (मस्तके, मत्थइ) । आम के पेड । राजच्छत्र । सजाये गये । चलती है । हवा से । मजरी । ढलता है । चवर ।

२३७—अनार के दाने । फैले हुए । दिखायी पडते है (दृश्यते) । न्यौछावर मे । डाले, बखेरे (निक्षिप्, निक्खिव) । रत्न । पैरो से । नुचे हुए । पक्षियो (के) । फल । चोच मारे हुए । रस । छोडते है, चुआते हैं । सीचते है, छिडकाव करते है । मार्ग ।

२३६—(२) धर ।

२३६—व० स० । अनुप्रास । यमक । रूपक ।
२३७—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । यमक । रूपक ।

२३८

राजति अति अेण पदाति, कुज रथ,
हंस-माळ बँधि ल्हासि हय
ढालि खजूर पूठि ढळकाव़इ,
गिरव़र सिणगारिया गय

२३९

तरु-ताड़ - पत्र ऊँचा तड़ि - तरळा
सरळा पसरता सरगि
वइठे पाटि वसंति बंधिया
जग - हृथ किरि ऊपरा जगि

२३८. हरिन पयादे, कुज रथ, हय हंसनि की पाति
भूलि खजूरनि की बनी, वने सु गिरिगज काति
२३९. ऊचे सरले ताल - द्रुम पात अधिक छबि देत
मनु वसत न्रिप ह्वै कर्यो जगहृथ जय के हेत

२३८—शोभा देते है। बहुत। हरिण। पैदल। तरु-कुज। रथ। हसो की कतार। बँधे है। घुडसाल (मे)। घोड़े। ढाले। खजूर-रूपी। पीठ पर। लहराती है। पर्वत। सजाये (शृगारित)। हाथी।
२३९—ताड के पेड़ के पत्ते। ऊचे। तडित के समान चचल, हिलते हुए। सीधे। फैलते हुए। स्वर्ग तक। वैठने पर। सिहासन पर (पट्ट)। वसत ने। (१) अभयदान के हाथ वाधे, फैलाये; या (२) जगद्विजय की घोषणा के पत्र वाँधे। मानो। ऊपर। जगत के।

२३८—(३) चुंचित।
२३९—(१) ताल। तड, तुड, तर।

२३८—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। रूपक।
२३९—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। अतिशयोक्ति। उत्प्रेक्षा।

वसन्त-राजा का अखाड़ा

२४०

आगळि रितु-राइ मंडियउ अव़सर,
मंडप वन, नीझरण म्रिदंग
पंच-बाण नाइक, गाइक पिक,
वसुह रग, मेळगर विहंग

२४१

कळहंस जाणगर, मोर निरत-कर,
पव़न ताळ-धर, ताळ पत्र
आरि तंति-सर, भमर उपंगी,
तीव़ट उघट चकोर तत्र

२४०. मडप वन, झरना मुरज, नायक मैन, विहंग
देखनहारे, गाइ पिक, राज स-विधि किय रग

२४१. मोर निरत-कारी, पवन ताल धरे, छद हाथ
उदघट तिवट चकोर सुभ, भौर उपंगी गाथ
आरि वीन वाजति सरस, जाननहार मराल
ये सव सिमिटि तही-तही रग मच्यो ततकाल

२४०—आगे। ऋतुराज के, वसत के। आरम्भ हुआ। अखाडा, महफिल नाटकारभ, सगीति। माडवा। वृक्षावली। निर्झरण, झरना। मृदग वाजा। कामदेव। नेता, सूत्रधार। गवैये। कोकिल। वसुधा, पृथ्वी। रगभूमि। मेला देखने वाले, दर्शक या श्रोता। पक्षी।

२४१—कलहस पक्षी। जानकार, कद्रदान, वाह्-वाह् करने वाले। मोर पक्षी। नृत्यकर, नाचने वाला। वायु। ताल देने वाला। करताल। पत्ते। आडी नामक पक्षी की बोली। तत्री का स्वर। भ्रमर। नस-तरग। त्रिवट नामक ताल। उघटता है, उद्घाटन करता है। चकोर। वहा।

२४०—व० स०। अनुप्रास। यमक। रूपक।

२४१—व० स०। अनुप्रास। यमक। रूपक।

२४२

विधि-पाठक सुक, सारस रस-वंछक,
कोविद खंजरीट गति-कार
प्रगळभ लागि – दाटि पारेवा,
विदुख - वेस चक्रवाक विहार

२४३

ऑगणि जळ तिरप उरप अळि पीयत,
मरुत-चक्र किरि लियत मरू
राम-सरी खुमरी लागी रट,
धूआ-माठा चंद-धरू

१४२. सुक पडित, सारस सु-कवि, खंजन चतुरां-राइ
लाग-दाट कलरव करै, कोक सुरंगा भाइ
२४३. उरप लेत अलि तिरप जल, मारुत-चक्र बयारि
धूआ माठा चंद रट, खुमरी पॅडुक विचारि

२४१—विधि वताने वाला। सुगा। सारस पक्षी। रस का इच्छुक, रसिक। पंडित। खजन पक्षी। सगीत की गते लेने वाला (या, नृत्य की गतिया दिखाने वाला)। चतुर, चातुर्यपूर्ण। दो नृत्यविशेष। कवूतर (का गुडकना)। विदूषक (का अभिनय)। चकवे की क्रीडा।

२४३—आगन मे, भूमि पर। पानी। तिरप नामक ताल। उरप नामक ताल भ्रमर। पीता है। पवन-चक्र, वगूला। मानो। लेता है। ताल विशेष (?)। एक चिडिया। एक चिड़िया। रट लगाये हुए है। तालो या संगीत के विभिन्न भेद (?)।

२४३—(१) तरप। उरप तरप। (२) लिय तिमरू। पियत।

२४२—व० स०। अनुप्रास। यमक। रूपक।
२४३—व० स०। अनुप्रास। यमक। उत्प्रेक्षा। रूपक।

२४४

निगरभर तरूअर सघण छाँह निसि,
पुहपित अति दीप-गर पळास
मउरित अंब रीझि रोमंचित,
हरखि विकास कमळ क्रित हास

·२४५

प्रगटे मधु कोक सँगीत प्रगटिया,
सिसिर-जव्नणिका दूरि सरि
निज मँत्र पढ़े पात्रि रिति नाँखी
पुहपंजळि वण-राइ परि

२४४. सघन छाह सोइ निसि भयी, दीपग भये पलास
मौर्‌यो सुरभि रोमंच मिस, कुद-कली मनु हास
२४५. परदा डार्‌यो सिसिर, पढ़ि रति मत्र विचारि
सगीती ह्वै कोक-वर पुहपजलि दइ डारि

२४४—निर्भर, खूब, प्रचुर, घने। पेड़। गहरी। छाया। रात। पुष्पित। वहुत। दीपक-धारी। पलास के पेड़। मजरी से युक्त, मुकुलित। आम के पेड़। मुग्ध होकर। रोमाच-युक्त (दर्शक)। हर्षित होकर। विकास। कमलो ने। किया। हास, हँसी।

२४५—प्रकट होने पर। वसत के। चकवे ने। सगीत। प्रकट किया। शिशिर-ऋतु रूपी। पर्दा। दूर, अलग। चली गयी, हट गयी। अपना। मत्र। पढकर। अभिनेता, नाटक का पात्र। वसत ऋतु रूपी राजा पर। डाली, फेकी। पुष्पाजलि, अजलि भरे फूल। वन-राजि रूप पात्र ने। जैसे।

२४४—(४) विमळ।
२४५—(१) मधि। (२) जमनिका।

२४४—व० स०। अनुप्रास। रूपक।
२४५—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। रूपक।

राजा वसंत के सु-राज्य का वर्णन

२४६

प्रज-अंबुज सिसिर-दुरीस पीड़तउ
ऊतर ऊथापिया असंत
प्रसन वाउ मिसि न्याउ प्रवरतिउ,
वनि-वनि नयरे राज वसंत

२४७

पुहपाँ मिसि अेक, अेक मिसि पातॉ,
खाड्या द्रब मॉड्या ऊखेळि
दीपक चंपक लाखे दीधा,
कोड़ि धजा फहराणी केळि

२४६. सिसिर राज अंबुज प्रजा ऊतर दयी वहाइ
दखिनी राज वसत के वहुर्यो लिये रहाइ
२४७. गाडे धन जो तरुवरनि फूल-पान लिय काढ़ि
चप-कली लख दीप ज्यो केलि कोड़ि धुज वाढि

२४६—कमल-रूपी प्रजा (को)। शिशिर-ऋतु रूपी। दुष्ट राजा। सताता हुआ। उत्तरी पवन। अधिकार-च्युत कर दिये। दुष्ट। प्रसन्न, अनुकूल। वायु (के)। वहाने। न्याय। आरभ हुआ। वन-वन मे। नगरो मे। राज्य। वसंत का।

२४७—पुष्पों के रूप मे। कुछ ने। कुछ ने। रूप मे। पत्तो के। खड्डे मे। दिये हुए, गाड़े हुए, छिपाये हुए। द्रव्यो को. खोद डाला. निकाल कर प्रकट कर दिया। प्रदीप। चंपा ने। लखपती, लक्षाधिप। दिये, जलाये। करोडपति। ध्वजा। फहरायी। केले ने।

२४६—अद्‌भुज, उभीज (=उद्भिज, वृक्षादि) अंवुज।

२४६—व० स०। अनुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। अपह्नुति। रूपक।

२४७—व० स०। अनुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। अपह्नुति। रूपक। यथासंख्य।

२४८

मळयानिळ वाजि सु राज थिया महि,
　　　　भयी निसंकित अंक भरि
वेळी गळि तरुव्वरॉ विलागी
　　　　पुहप-भार ग्रहणा पहरि

२४९

पीड़ॅत हेमंत सिसर रितु पहिलउँ,
　　　　दुख टाळ्यउ वसंति हित दाखि
व्याअे वेली तणी तरुव्वरॉ
　　　　साखॉ विसतरियॉ वइसाखि

२४८. दखिनाधी कोतवार तें निसक प्रजा गिहि भागि
　　　वेलि पुहुप-गहनो पहिरि रही रूख-गलि लागि
२४९. हेम-सिसिर के राज मे पाये दुक्ख अनेक
　　　टारे सबै वसंत ने राखि आपनो 'वेक
　　　ज्यो सु-राज दपति मिलै होत प्रजा निरधार
　　　त्यो वसंत वेली तरुनि कर्‌यो साख-विसतार

२४८—मलय-पवन । चलकर । सु-राज्य । हो गये । पृथ्वी पर । हुई । निश्शक, निर्भय । अक भर कर । वेले । गलो मे । पेड़ो के । लगी । पुष्पो का समूह रूपी । गहने । पहन कर ।

२४९—सताते थे । हेमत । शिशिर । ऋतु । पहले । दु ख को । टाला, दूर किया । वसत ने । प्रेम । दिखलाकर, प्रकट करके । प्रसव करके । लताएँ । पेडो की । डालियो पर । फैली । वैसाख मास में ।

२४८—व० स० । अनुप्रास । लाटानुप्रास । यमक । अपह्नुति । रूपक । समासोक्ति ।

२४९—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । श्लेष । समासोक्ति । परिकरांकुर (वइसाखि) ।

२५१

दीजइ तिहाँ डंक न, डंड न दीजइ,
ग्रहण मव्वरि तरु गानगर
कर-ग्राही परव्वरिया मधुकर
कुसुम - गंध - मकरंद कर

२५२

भरिया तरु पुहप वहे छूटा भरि,
काम बाण ग्रहिया करगि
वळि रितु-राइ - पसाइ वैसन्नर
जण भुरड़ीतउ रहइ जगि

२५०. डंक-दड दीजै नही, सहज करन तहसील
मधुकर सहना लखि दयो माल सु मधु विनु ढील
२५१. फोजदार लखि काम, पुहुप-भार छोड़्यो तरुनि
राज वसंत अराम, वैरी अगनि दब्यो रहत

२५०—दिया जाता है। वहाँ। डंक। नही। दंड। नही। दिया जाता है। लेने मे। मुकुलित। वृक्ष। गाने वाले, हिसाव करने वाले (गान-कर)। कर वसूल करने वाले। चले, फैल गये। भ्रमर। फूलो की सुगधि और रस। राज्य-कर।

२५१—भार-युक्त। वृक्ष। पुष्पो को। धारण कर। छूट गये। भार से। काम ने। व्राण। ग्रहण किये। हाथ मे। फिर। वसंत के। प्रसाद से, अनुग्रह से। वैश्वानर, अग्नि। लोक को। जलाता हुआ। वंद हो गया। जगत मे।

२५१—(४) वहै > रहइ।

२५०—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। रूपक।
२५१—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उत्प्रेक्षा (गम्य)।

२५२

वरखा जिम वरखति चातिग वंचित,
वंचि न-को तिम राजि वसंत
फुल्ल पंख, क्रित सेव्र लवध फळ,
वंदि कोळाहळ, खग वोलंत

२५३

कुसुमित कुसुमाउध उदउ केळि क्रित
तिहि देखे थिउ खीण तण
कंत-सँजोगणि 'किंसुख' कहिया,
विरहणि कहे 'पळास'-वण

२५२. वरखा मे चातक वच्यो, तज्यो नाहि रितु-राज
कुसुम अलि (?) ही भाट ज्यो द्रुज वोलै जस काज
२५३. लखि पलास राखस दुखी होति विरहिनी नारि
सजोगिनि को सुख भयो भरे मैन-रस पूरि

२५२—वर्षा (के)। जैसे। बरसते हुए। चातक। वचित, बचा हुआ। बचता है, वचित रहता है। कोई नहीं। वैसे। राज्य मे। वसत के। फुलाये हुए। पखो को। की हुई। सेवा का। फल प्राप्त किये हुए। बदी जनों का। कोलाहल, शोर। पक्षी। बोलते है।
२५३—प्रफुल्लित हुआ। काम का। उदय। काम-क्रीडा की। उसको। देखकर। हुआ। क्षीण। शरीर। पति से सयुक्त स्त्री ने, सयोगिनी ने। (१) किंशुक=ढाक (२) किसुख=क्या ही सुख है, कितना आनन्द है (किम् सुखम्)। कहे। वियोगिनी ने। कहे। (१) ढाकों का(२) पल+आश=मास खाने वालो का अर्थात् राक्षसो का। जगल।

२५३—(१) ओटि>उदउ।
(१—२) पेखे अेक रूंख-पंति परिफूलित वदइ नारि अनि अनि वचन।

२५२—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। रूपक। व्यतिरेक।
२५३—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उल्लेख। परिकराकुर। श्लेष। यथासख्य।

२५४

तसु रंग-वास तसु वास-रंग तण
कर - पल्लव कोमळ कुसुम
वणि-वणि मालणि केसरि वीणति
भूली नख-प्रतिबिंब - भ्रम

मलय-पवन-वर्णन

२५५

सबळ जळ - सभिन्न सुगंध-भेट सजि
डगमग पग्इ वग्इ क्रोध - डर
हालिय मळयाचळि हेमाचळि
काम-दूत हर प्रसन कर

२५४. वास वरन एकै लखे मालनि वीनति फूल
अपने नख-प्रतिबिंब ते केसरि-कुसुम अतूल

२५५. झरना-जल न्हायो, सुगँध भेट हाथ ले, वात
मलय छाँड़ि हिम को चल्यो डरि हरि-अनल-अघात
वसत हिमाचल मांह हर, काम-नृपति के दूत
पठयो डरि करि भेंट दे खुसी करन अवधूत

२५४—उसके । रंग और गध । उसके गध और रग । शरीर के । उँगलियाँ । कोमल । (केशर के) फूल । वन-वन मे । मालिन । केशर । चुनती हुई । भ्राति मे पड गयी, धोखा खा गयी । केशर को नखो का प्रतिबिंब समझ कर (अथवा, नखो मे पडते हुए केशर के प्रतिबिंब से को केशर समझकर) ।

२५५—गहरा, प्रचुर । जल से । भीना, भीगा । सुगधि-रूपी । भेट । सजाकर । डगमगाते । पैरो से । वायु । क्रोध के डर से । चला । मलय-पर्वत से । हिमालय को । काम का दूत (बनकर) । महादेव (को) । प्रसन्न । करने को ।

२५५—संबळ (=पाथेय, 'जळ पीवण-नइ साथ लीयौ') ।

२५४—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । पुनरुक्ति-प्रकाश । उपमा । भ्रांतिमान् ।

२५५—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । रूपक ।

२५६

तरतउ नदि-नदि, ऊतरतउ तरि-तरि,
वेलि-वेलि गळि-गळि विलग
दिखण-हूँत आव़तउ उतर दिसि
पव़न तणा ति न वहइ पग

२५७

केव़डा कुसुम कुँद तणउ केतकी,
स्रम - सीकर निरभर स्रव़ति
ग्रहियउ कंधे गंध-भार गुरु
गध-वाह तिणि मंद-गति

२५६. नदी पैरि, वेलीनि मिलि, रूँखनि सांभलि वात
दखिनाधी उत्तर दिसा नीठ-नीठ चलि जात
२५७. कुद केवरो केतकी गध - भार ले धीर
भरना स्रम - जल के छुटे हरुवो चलत समीर

२५६—तैरता हुआ। नदी-नदी को। बैठता हुआ। पेड़-पेड पर। लता-लता के। गले-गले। लगकर। दक्षिण दिशा से। आता है। उत्तर दिशा मे। पवन के। इसलिए। नही। चलते है, आगे बढते हे। पैर।
२५७—केवडा। कुसुम। कुद। का। केतकी। पसीने की बूदे। झरनो के जलकणो के रूप मे। वहाता है। लिये हुए। कधो पर। सुगधि का भार। भारी। पवन। इस कारण। धीमी चाल वाला।

२५७—(१) **कमल > कुसुम।**

२५६—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। यमक। समासोक्ति।
२५७—व० स०। अनुप्रास छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। समासोक्ति।

२५८

लीधइ तसु अंग-वास रस-लोभी
रेव़ा-जळि क्रित सौच-रति
दखिणानिळ आव़तउ उतर-दिसि
सापराध पति जिम सरति

२५६

पुहपव़ती लता न परस पमूकइ,
देतउ अँगि आळिगण - दान
मतवाळउ पइ ठाहि न मंडइ
पव़न वमन करतउ मधु-पान

२५८. रस-लोभी ले वास, रेवा-जल न्हायो तुरत
ऊतर-तिय की आस दखिनाधी अपराध-जुत
२५६. पुहपवती परसे तजे दे आलिगन-दान
दखिनाधी छाक्यो डिगत वमन करत मधु-पान

२५८—लिये हुए। उनके। अगों की। सुगधि। रस का लालची। नर्मदा के जल मे। किया हुआ। शौच, शरीर-शुद्धि, स्नान। रति-क्रीड़ा-संवंधी, रति के अत मे किया जाने वाला। दक्षिण का पवन। आता है। उत्तर दिशा मे। अपराधी। पति। जैसे। चलता है।

२५६—(१) फूलों वाली। (२) रजस्वला। वेलि का। नही। स्पर्श। छोडता है (प्रमुक्त)। देता हुआ। अगो मे। आलिगन का दान। मतवाला। पैर। ठौर पर, ठीक स्थान पर। नही। रखता है। वायु। उगलता हुआ। (१) पिया हुआ पुष्प-रस (२) पी हुई मदिरा।

२५८—(१) लीयै, लीधी। वास अंग।

२५६—(१) लता परसपर मूंकइ।

२५८—व० स०। अनुप्रास। उपमा।

२५६—व० स०। अनुप्रास। श्लेप। समासोक्ति।

२६०

ताइ झरण छंटि ऊघसति मलय तरि
अति पराग-रज धूसर अंग
मधु-मद स्रवति, मंद-गति मल्हपति
मदोमत्त मारुत-मातंग

२६१

गुण गंध ग्रहित, गिळि गरळ ऊगळित,
पवन वाद अे उभइ पख
स्री-खंड-सयळ-सँजोगि सँजोगणि,
भणि विरहणी भुयंग-भख

२६०. लेतो वहु झरनानि मे चंदन सो घसि अंग
कुसुम-परागनि रज-भर्‌यो दखिनाधी मातंग
मधु-मद मेले गंड मल्हपत गज-गति ले चलत
दखिनाधी वेतंड मातो जन जातो लखै
२६१ सजोगिनि सीतल, वुरो विरहिनि विख-मय नीर
मलय-भुजग सँजोग ते द्वै विधि कह्यो समीर

२६०—तोय, जल (से)। झरने के। छींटकर। घर्षण करता है। चंदन के पेड़ो से। वहुत। पराग-रूपी धूल से। मैला। शरीर। मकरंद-रूपी मद को। वहाता हुआ। धीमी चाल से। मौज मे चलता है। मदोन्मत्त। पवन-रूपी हाथी।
२६१—सुगंध का गुण ग्रहण किया हुआ। निगल कर विष-रूप मे उगला हुआ। पवन के विषय मे। विवाद। यह। दो। पक्षो मे। चन्दन-पर्वत अर्थात् मलयाचल के सयोग से। सयोगिनी। कहती है। वियोगिनी। भुजग का भोजन (वायु सांप का भोजन माना जाता है)।

२६१—(१) छंडि।

२६०—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। रूपक।
२६१—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। उल्लेख। यथासंख्य।

कृष्ण का वसंत-विहार

२६२

रितु कहिमि दिवसि रस, राति कहिमि रस,
किहि रस संध्या, सुकवि कहंत
बे पख सूध ति बिहूँ मास बे
वसॅत ताइ सारिखउ वहंत

२६३

निमिख-पळ वसंति सारिखा अहो-निसि,
अेकण अेक न दाखइ अंत
कंत-गुणे वसि थायइ कता,
कंता-गुण वसि थायइ कत

२६२. हेम-सिसिर के दिन भले, ग्रीखम-सरदनि राति
वरिखा मे सध्या भली, कविन कही इहि भाति
मान वधै पख सुद्ध ज्यो, दुहु विधि भलो वसंत
पोह मास प्यारो लगै निसा माँझ हू कत

२६३. निसि-दिन सम सु वसत मे मोहि लगै इहि भाइ
विनु विरोध दपति सरस रहत बराबर चाइ

२६२—ऋतु मे । किसी मे । दिन । आनद । किसी मे । रात मे । आनंद । किसी मे । आनद । सध्या के समय । अच्छे कवि । कहते है । दोनो पक्षो मे । शुद्ध । अति । दोनो मासो मे । (दिन-रात) दोनो मे । वसंत । उनमे । एक सरीखा । व्यवहार करता है ।

२६३—प्रत्येक निमिप और पल । वसत मे । एक समान । रात और दिन । एक को । एक । नही । दिखाता है । छेह । प्रिय के गुणो के वश मे । होती है । प्रिया । प्रिया के गुणो के वश मे । होता है । प्रिय ।

२६२—(१) रितु किहि दिवस सरस राति किहि सरस । (३) बिहुँ>बे ।
२६३—(१) सारिखउ ।

२६२—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । शब्दार्थावृत्ति दीपक ।
२६३—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । यमक । अन्योन्य ।

२६४

ग्रिह पुहप तणउ, तिणि पुहपित ग्रहणउ,
पुहप - इ ओढण-पाथरण
हरखि हिँडोळि पुहप-मइ हीडत,
सहि सहिचरि पुहपाँ सरण

२६५

पउढाड़इ नाद, वेद परवोधइ,
निसि-दिनि वाग-विहार निति
माणग मइण अेण विधि माणइ
रुकमणि-कंत वसंत रिति

२६४. गहने पुहुप, विछावने पुहुप, ओढना फूल
पुहुप-हिडोरे हरखि कै चढी तिया अनुकूल
२६५. भोर जगावत वेद, निसि पौढावइ सुर-साज
द्यौस वाग विहरत रहै हरि-रुकमिनि रितु-राज

२६४—घर। पुष्पों का। उनका। पुष्प-मय। गहना। पुष्प ही। ओढ़ने और विछाने को। हर्षित होकर। झूलों पर। पुष्पों के। झूलते है। सभी सहेलिया। पुष्पों की शरण में (पुष्पों मे भरी हुई)।
२६५—सुलाता है। नाद, संगीत। वेद, वेद-पाठ। जगाता है। रात-दिन। वाटिका-विहार। सदा। आनद लेने वाले। काम (के सुखों को)। इस प्रकार से। भोगते है। रुक्मिणी के प्रिय। वसंत ऋतु मे।

२६५—(३) परि>विधि।

२६४—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। उदात्त।
२६५—व० स०। अनुप्रास। यमक।

कृष्ण-परिवार-वर्णन

२६६

अव्वसरि तिणि प्रीति पसरि मन अव्वसरि
हाइ-भाइ मोहिया हरि
अंग अनंग गया आपाणा
जुड़िया जिणि वसिया जठरि

२६७

वसुदेव्व पिता, सुत थिया वासुदे,
प्रदुमन सुत, पित जगत-पति
सासू देव्वकि, रामा सु वहू,
रामा सासू, वहू रति

२६६. हाव-भाव करि मोह हरि, हर जारे अँग काम
उपराजे या ते लह्यो रुकमिनि - उदर विराम
२६७. पिता प्रद्युमन को हरी, क्रिसन-पिता वसुदेव
रति की सासु रमा भयी, रमा देवकी सेव

२६६—समय । उस । प्रेम । पसरी (प्र+सर्) । मन के बीच मे । हाव-भाव द्वारा । मोहित हुए । कृष्ण । अग । कामदेव के । गये हुए, नष्ट हुए (गत+क) । अपने (आत्मन्, अत्तण, अप्पण) । एकत्र हो गये । जिससे (येन) । वसे । उदर मे, गर्भ मे ।
२६७—वसुदेव । पिता । पुत्र । हुए । कृष्ण । प्रद्युम्न । पुत्र । पिता । जगत के स्वामी कृष्ण । सास । देवकी । रुक्मिणी । वहू । रुक्मिणी । सास । वधू । रति, कामपत्नी जो प्रद्युम्न की पत्नी हुई ।

२६६—(१) मन अनुसरि>मन अवसरि ।

२६६—व० स० । अनुप्रास । यमक ।
२६७—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास ।

२६८

लीला-धण ग्रहे मानुखी लीला
जग-वासिग वसिया जगति
पितु प्रदुमन जगदीस पितामह,
पोतउ अनिरुध उखा-पति

२६९

कि कहिसि तासु जस, अहि थाकउ कहि,
नाराइण निग्गुण निरलेप
कहि रुकमणि प्रदुमन अनिरुध-का
सह सहचरिअे नाम संखेप

२६८. लीला-रूपी हरि वस्यो नगर द्वारिका माँह
उपा-कात अनिरुद्ध है हरि पोतो धर-नाह
२६९. निरगुन के गुन क्यो कहो, अति आदर को ठाउ
सबे कुटुंब वह पूजनो, ता से कहिहौ नाँउ

२६८—लीला है धन जिनका, लीला करने वाले। ग्रहण करके। मनुष्य की। लीला। जग मे वसने वाले। वसे। द्वारका में। पिता। प्रद्युम्न। जगत्पति, कृष्ण। दादा। पौत्र। अनिरुद्ध। उपा का पति।
२६९—क्या। कहूँगा। उसका। यश। शेष नाग। थक गया। कहकर। नारायण। निर्गुण। निर्लेप, निरासक्त। कहता हूँ। रुक्मिणी। प्रद्युम्न। अनिरुद्ध के। सहित। सखियो के। नाम। संक्षेप मे।

२६८—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक।
२६९—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। अतिशयोक्ति।

२७०

लोक-माता, सिंधु-सुता, स्री, लिखमी,
पदमा, पदमालया, प्रमा
अव्रर-ग्रिहे असथिरा, इंदिरा,
रामा, हरि-वल्लभा, रमा

२७१

दरपक, कंदरप, काम, कुसुमाउध,
संबरारि, रति-पति, तन-सार
समर, मनोज, अनंग, पंचसर,
मनमथ, मदन, मकरधज, मार

२७०. लोक-मात, अरु सिधु-जा, श्री, लछमी प्रिय आहि
और-घरनि चंचल कहो, पदमालया निबाहि
पदमा, रामा, इ दिरा, रमा, हरि-प्रिया देखि
रुकमिनिजू के नाम है वारह जगत विसेखि

२७१. कुसुमायुध, अरु काम, संबरारि, रति-पति कहो
दरपक, स्मर अभिराम, मनसिज, कदरपै लहो
अनँग, और तन-सार, मनमथ, मदन, सु पच-सर
मकरध्वज, अरु मार, लहो नाम प्रद्युम्न के

२७०—लोक अर्थात् जगत् की माता। समुद्र की पुत्री। शोभा, श्री। लक्ष्मी। कमल वाली। कमल मे रहने वाली। ज्ञान वाली। औरों के घर मे स्थिर नही रहने वाली, चंचला। इदिरा, ऐश्वर्यशालिनी। सीता, राम की पत्नी। विष्णु की प्रिया। रमण करने वाली, आनंदमयी।

२७१—दर्प करने वाला। सुख से दृप्त। इच्छा। पुष्पो के आयुधो वाला। शवरासुर का शत्रु। रति का पति। शरीर का सार। स्मर, स्मृति-मय। मन मे जन्मने वाला। शरीर से रहित। पाच बाणो वाला। मन को मथने वाला। मद करने वाला। मगर के चिह्न से अकित ध्वजा वाला। मार करने वाला।

२७०—(२) पदमालया प्रिया पदमा, पदमालिका प्रिया पदमा।

२७०—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।
२७१—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक।

२७२

चातुरमुख, चतुर वरण, चतुरातम,
विग्य, चतुर - जुग - विधायक
सरब-जीव, विसवकित, ब्रह्म-सू,
नर-वर, हॅस, देह-नायक

२७३

सुंदरता, लज्जा, प्रीति, सरसती,
माया, कांती, क्रिपा, मति
रिध्धि, व्रिध्धि, सुचिता, रुचि, सरधा
मरजादा, कीरति, महति

२७२. चतुर-वरन, चतुरातमा, विग्य, विश्वकृत, हस
करनहार चहुँ जुगनि को, सरव-जीव, अज वंस
देह-मुख्य, नर-वर कहो, चतुर-वदन सुनि लेहु
नाम सवै अनिरुद्ध के कवि-जन को गनि देहु

२७३. सुन्दरता, लज्जा, क्रिपा, प्रीति, सरसती, काति
माया, मति, सिधि, रिधि, सुबुधि, रुचि, सुचि याही भांति
श्रद्धा, मरजादा कहो, कीरति, महति वखानि
रति के येई नाउ है, काम-तिया वह मानि

२७२—चार मुखो वाला। चार वर्णों वाला। चतुर आत्मा वाला। विज्ञ, ज्ञानी। चारो युगो का रचने वाला। सब का जीव। विश्व का रचने वाला। ब्रह्म का पुत्र। श्रेष्ठ मनुष्य। प्राण। शरीर का स्वामी।

२७३—मनोहरता। लाज। प्रेम। सरस्वती। अविद्या, ममता। शोभा। दया। वुद्धि। ऋद्धि, सपत्ति। वृद्धि, वढती। पवित्रता। सुरुचि। श्रद्धा। मर्यादा। कीर्ति। महत्ता।

२७२—(१) चतुर्थ स चतुरवरण। चतुराणण। (२) विक्त, विगत।

२७२—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक।
२७३—व० स०। अनुप्रास।

२७४

संसार सु-पह करताँ ग्रिह-संग्रह
गिणि तिणि-ही-ज पंचमी गाळि
मदिरा रिस हिसा निंदा-मति
च्यारे करि मूँकी चंडाळि

२७४. दारू, अर मच्छर समुझि, हिसा, निदा, गारि
हरि पांचे चडाल ज्यो दयी नगर तें वारि

२७४—ससार के श्रेष्ठ स्वामी (प्रभु) ने। करते हुए। गृहस्थ-धर्म का पालन। समझो। उन्ही में, उन्ही के साथ। पाचवी। गाली, दुर्वचन। मद्य। क्रोध। जीव-वध। निंदा-बुद्धि। चारों (को)। करके। छोड़ दी, निकाल दी (मुक्त, मुक्क)। चाडाली, अस्पृश्य।

२७४—(२) **ग्यान तणी पंचमी जु गाळि। गांणि। तणीजु।**
(४) **मूंकिया।**

२७४—व० स०। अनुप्रास। यमक।

वेलि-माहात्म्य

२७५

हरि समरण, रस समझण हरिणाखी,
चात्रण खळ खगि खेत्रि चढि
बइसे सभा पारकी बोलण
प्राणियग ! वँछइ त वेलि पढि

२७६

सरसती कंठि, स्री ग्रहि, मुखि सोभा,
भाव़ी मुगति, ति-करि भुगति
उव़रि ग्यान, हरि-भगति आतमा,
जपइ वेलि त्याँ अे जुगति

२७५. हरि सुमिरन, तिय-रस सरस, खल जीतन की चाह
बैठि सभा बोल्यो चहै, वेलि पढे निरवाह
२७६. कठ सरसुती, आथ घर, मुख सोभा, उर ग्यानु
भगति, भुगति अरु मुगति हू होइ वेलि ते, मानु

२७५—भगवान को स्मरण करना। रस को समझना। हरिणाक्षी, मृगनयनी, सुन्दरी स्त्री (का)। नाश करना। शत्रुओ (का)। खड्ग से। रणक्षेत्र मे। चढकर। बैठकर। सभा (मे)। पगयी (परकीय)। बोलना। हे प्राणी। चाहता है। तो। वेलि (को)। पढ।

२७६—सरस्वती। कठ मे। लक्ष्मी। घर मे। मुख मे। शोभा। भविष्य मे। मुक्ति। वैसे ही। भुक्ति, भोग। उदर मे, हृदय मे। ज्ञान। भगवान की भक्ति। आत्मा (मे)। जपते है, पाठ करते है। वेलि (को)। वहा, उनके। यह। युक्ति, विधान, बात।

२७५—व० स०। अनुप्रास। यमक। दीपक।
२७६—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। दीपक।

२७७

महि सुइ खट मास, प्रात जळि मंजे,
अप-सपरस-हर, जित-इँद्री
प्रामइ वेलि पढंताँ नित-प्रति
सु-त्री सु-वर तिम सु-वर सु-त्री

२७८

ऊपजइ अहो-निसि आप-आप महि
रुकमणि - क्रिसन सरीख रति
कहइ वेलि वर लहइ कुमारी,
परणी पूत सुहाग पति

२७७. प्रात न्हाइ खट मास लौ घर नर वेलि पढंत
पुन्य होइ, नर तिय लहै, तिया लहै सुभ कंत
२७८. कृष्ण-रुकमिनी ज्यों लहै दंपति परम अनंद
कन्या सुदर वर लहै, तिय सुहाग के छद

२७७—पृथ्वी (पर)। सोकर। छै। महीने। सवेरे। जल से स्नान करके (मज्ज्)। अपवित्र वस्तुओ के स्पर्श से दूर रहने वाला। जितेन्द्रिय। पाता है (प्राप्, पाव, पाम, प्राम)। वेलि (को)। पढते हुए। नित्यप्रति, सदा। सुदर स्त्री (को)। सुदर वर। वैसे ही। सुदर वर (को)। सुदर स्त्री।
२७८—उत्पन्न होती है। दिन-रात, सदा। परस्पर मे। रुक्मिणी और कृष्ण। सरीखी, समान (सदृक्ष, सारिक्ख)। प्रीति। पढ़ती है। वेलि (को)। पति को। पाती है (लभ्, लह)। कन्या। विवाहिता। पुत्र को। पति-संबंधी सौभाग्य को।

२७७—(२) आंप परसपर, आंप स्परसि, अप स्पर्शहर, आप सपरस हरु, आप अपरस अरु। (४) त्री वंछित वर वंछित त्री।

२७७—व० स०। अनुप्रास। लाटानुप्रास।
२७८—व० स०। अनुप्राम। छेकानुप्रास। अन्योन्य। दीपक।

२७९

परिव़ारि पुत्रि पोत्रे पड़िपोत्रे
अरु साहृणि भडारि इम
जण रुकमणि - हृरि - वेलि जपंतॉ
जग-पुड़ि वाधइ वेलि जिम

२८०

पेखे काइ कहृति अेक-अेकइ प्रति
विमळ मॅगळ ग्रहि अेकि वगि
अेणि कव़ण सुभ क्रम आचरिया,
जग्णियइ वेलि जपंति जगि

२७९. वेटा, नाती, तिनहि सुत, हय, गय, अरथ-भॅडार
वधै वेलि ज्यों इहि धरा पढ़े वेलि विसतार
२८०. बड़भागी सोई जगत, वेलि पढ़ै जो कोइ
पुण्य - कर्म बहुतै करो, वा सम नेकु न होइ

२७९—परिवार मे । पुत्र-पौत्रो मे । प्रपौत्रो मे । और । हाथी-घोडे आदि परिग्रह (साधन) मे । द्रव्य-भण्डार मे । इसी प्रकार । मनुष्य । रुक्मिणी और कृष्ण की वेलि (को) । जपते हुए । जगत्पुट (जगतीतल) पर । बढता है (वृध्, वध्ध) । लता की भाति ।

२८०—देखकर (प्रेक्ष्) । कोई (व्यक्ति) । कहते है । एक-दूसरे के प्रति । निर्मल । मगल । घर मे । एक साथ । इसने (अनेन) । कौन । शुभ, अच्छे । कर्म । किये । जाना जाता है, जान पडता है । वेलि (को) । पढ़ता है । लोक मे ।

२७९—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । उपमा ।
२८०—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । अनुमान ।

२८१

चतुराविध वेद-प्रणीत चिकितसा
ससत्र उखध मॅत्र - तंत्र सुव्रि
काया कजि उपचार करंताँ
हुव्रइ, सु वेलि जपंत हुव्रि

२८२

अग्धिभूतिक आधिदेव्र अध्यातम
पिंडि प्रभंव्रति कफ वात पित
त्रिविध ताप तसु रोग त्रिविध-मइ
न भव्रति वेलि जपंति नित

२८१. च्यार भाति की वैदगी, सास्त्र, ओखदी, मंत्र
देही को जो ये करै, वेलि पढ़े सो तत्र
२८२. आधिभूत अधि-आतमा, आधिदेव, कफ होइ
पित्त, वात तिहुँ दोस के, वेलि समावै सोइ

२८१—चतुर्विध, चार प्रकार की। वेदों द्वारा प्रतिपादित, वेद-विहित। चिकित्सा, रोगोपचार। शस्त्रो द्वारा चिकित्सा, शल्योपचार। औषधोपचार। मंत्रोपचार। तत्रोपचार। वह। शरीर (के)। लिए (कार्य, कज्ज)। इलाज, चिकित्सा। करते हुए। होता है। वह। वेलि (को)। जपते हुए। होता है (भवति-हुवइ)।

२८२—आधिभौतिक, प्राणियो से संबंध रखने वाले। आधिदैविक, देवताओं आदि अलौकिक शक्तियो से सबध रखने वाले। आध्यात्मिक, शरीर और मन से सबध रखने वाले। शरीर मे। होते है। कफ, वात और पित्त से जनित। तीन प्रकार के। सताप, कष्ट। वैसे ही। व्याधियाँ। तीन प्रकार की। नही। होती है। वेलि (को)। जपते हुए, जपने से। सदा।

२८१—व० स०। अनुप्रास।

२८२—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। दीपक।

२८३

मनि सूधि जपंताँ रुकमणि-मंगळ
नव़ निधि थायइ कुसळ नित
दुरदिन दुरग्रह दुसह दुरदसा
नासइ दुसपन दुर-निमित

२८४

मणि मंत्र तंत्र वळ जंत्र अमंगळ
थळि जळि नभसि न कोइ छळंति
डाकिणि-साकिणि भूत-प्रेत डर
भाजइ उपद्रव़ वेलि भजंति

२८३ होइ जपत जो वेलि को निधि, सपति, कुसराति
दुरदिन, दुरग्रह, दुरदसा, सुपनइ दुरमटि जाति
२८४. मत्र-तत्र-वल जंत्र मनि-वल जल डाकिनि-भूत
प्रेत अमगल साकिनी, वेलि पढ़े ते पूत

२८३—मन से । शुद्ध (से) । जपने से । रुक्मिणी की मंगलमय कथा । नौ । निधिया । होती है । क्षेम । सदा । बुरे दिन । अनिष्ट ग्रह (=ग्रह-फल) । कठिन । बुरी दशा । नष्ट होते है । बुरे सपने । बुरे शकुन ।
२८४—मणि, मत्र, यत्र, तत्र की शक्ति । । अशुभ, अनिष्ट । स्थल मे । जल मे । आकाश मे । नही । कोई । छलता है । डाकिनी और शाकिनी (का) । भूतो और प्रेतो (का) । डर । भाग जाते है, दूर हो जाते हे । उत्पात । वेलि (को) । भजते हुए, जपने से ।

२८३—व० स० । अनुप्रास । लाटानुप्रास । दीपक । देहरी दीपक (थायइ) ।
२८४—व० स० । अनुप्रास । यमक । दीपक ।

२८५

सन्यासिअॅ जोगिअॅ तपसि-तापसिअे
कँइ इवड़ा हठ निग्रह किया
प्राणी भव-सागर वेली पढि
थिया पार तरि, पार थिया

२८६

कि जोग-जाग, जप-तप तीरथ किं,
व्रत कि दानास्रम-वरण ?
मुखि कहि क्रिसन-रुकमणी-मंगळ,
कँइ रे मन ! कळपसि क्रिपण ?

२८५. संन्यासी, जोगी, तपी, हठ करि लहै अपार
वेलि पढ़ें ते सो लहै परम लोक को वार
२८६. जोग-जाग, जप-तप कहा, तीरथ-व्रत कहा दान ?
वर्न-आसरम ए कहा, मन ! चाहै जनि आन

२८५—संन्यासियो ने। योगियो ने। तपस्वियो और। तापसो ने। क्यो। जैसे (अप० एवड)। हठयोग की साधना। सयम या आत्मदमन। किये। जीव। संसार-रूपी समुद्र को। वेलि (को)। पढ कर। हो गये। पार। तैरकर। पार। हो गये।

२८६—क्या (किम्)। योग-साधना और यज्ञ। जप और तप। तीर्थयात्रा। क्या। उपवास या नियम-पालन। क्या। दान और आश्रमो तथा वर्णो के धर्म। मुख से। बोल। कृष्ण और रुक्मिणी की मंगल-मय कथा। क्यो। अरे। मन। दुख करता है। दीन (होकर)।

२८५—(४) थिया पारि ऊतरे थिया।

२८५—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश।

२८६—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।

२८७

वे हरि-हर भजइ, अ-तारू बोळइ,
ते ग्रब भागीरथी ! म तूँ
अेक-देस-वाहणी न आणाँ
सुरसरि समसरि वेलि-सूँ

२८७. अन-पैरां बोड़ै, भजै हरि-हर, पूरव जाइ
गगा सम या वेलि कों मो पै कहा कहाइ ?

२८७—दो (द्वे, अप० वे) । विष्णु और शिव (को) । भजती है, सेती है । जो तैरना नही जानता उसको । डुबा देती हे (बुड्ड) । इसलिए । गर्व कर । हे गगा । मत । तू । एक ही प्रदेश मे वहने वाली । नही । लाते है, समझते हे । गगा को । बराबर । वेलि से, वेलि के ।

२८७—(१) बोड़इ ।

२८७—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । यमक । प्रतीप ।

वेलि का रूपक

२८८

वेली तसु बीज भागवत वायउ,
महि थाणउ प्रिथुदास - मुख
मूळ डाळ, जड़ अरथ, माँडह्इ
सु-थिर करणि चढि, छाँह सुख

२८९

पत्र अक्खर, दळ द्वाळा, जस परिमळ,
नव रस तँतु वधि अहो-निसि
मधुकर रसिक, सु भगति मंजरी,
मुगति फूल, फळ भुगति मिसि

२८८. वीज भागवत है वयो, पृथीराज-मुख-थान
मूल अरथ, छाया सु सुख, वेलि मांडहौ कान
२८९. कोपर आखर, पात है दोहा, हरि-जस वास
नव रस ततु, रसीक अलि, भगति मजरी तास
मुगति फूल, वैकुठ को वास यहै फल देखि
और वेलि ते याहि जग इनही विधिनि विसेखि

२८८—लता के समान यह वेलि । उसका । वीज । भागवत पुराण । बोया । पृथ्वी पर । थाला । दास पृथ्वीराज का मुख । मूल पाठ । डाली । जड । अर्थ । मंडप पर । स्थिर । कान पर । चढती है, चढी है । छाया । सुख ।
२८९—पत्ते, अंकुर । अक्षर । दल, वड़े पत्ते । दोहले, पद्य । (रुक्मिणी और कृष्ण का) यश । सुगंधि । नव रस । ततु । वढते है । दिन-रात । भ्रमर । रसज्ञ, सहृदय । भक्ति । मजरी । मुक्ति । पुष्प । फल । भुक्ति, भोग । रूपी ।

२८८—(१) वल्ली । (४) सुघड़ > सुथिर ।
२८९—(१) प्रत अवखर प्रत द्वाला जस परिमल ।
(३) भगति > अरथ । (४) भगति > भुगति ।

२८८—व० स० । अनुप्रास । साग रूपक ।
२८९—व० स० । अनुप्रास । छेकानुप्रास । यमक, अपह्नुति । साग रूपक ।

२९०

कळि कळप-वेलि, वळि काम-धेनुका,
चिंतामणि, सोम-वेलि चत्र
प्रगटित प्रिथमी प्रिथु-मुख-पंकजि
अखराउळि मिसि थइ अेकत्र

२९१

प्रिथु-वेलि, कि पँच-विध प्रसिध प्रनाळी
आगम-नीगम कजि अखिळ
मुगति तणी नीसरणी मंडी,
सरग-लोक सोपान इळ

२९०. चिंतामनि कलि कलपद्रुम कामधेनु इक ठाह
पृथीराज-मुख ह्वै भयी वेलि प्रगट जग माह
२९१. करी पाच विधि वेलि आगम-वेद विचारि कै
मुगति-निसेनी झेलि सुरग-सीढि मानो धरी

२८९—कलियुग मे। कल्प-लता। फिर। कामधेनु। मन की इच्छाओं को पूरी करने वाली मणि। सोम-लता। चार (चतुर्)। प्रगट हुई। पृथिवी पर। पृथ्वीराज के मुख-रूपी कमल से। अक्षरावली (वर्णमाला) के रूप मे। होकर। इकट्ठी।

२ १—पृथ्वीराज की वेलि। या। पाच प्रकार की। विख्यात। प्रणालिका, मार्ग। धर्मशास्त्रो और वेदो के। लिए। समस्त। मुक्ति। की। नसेनी। बनायी। स्वर्गलोक (की)। सीढियो की माला। पृथ्वी पर (इला, इडा)।

२९०—(२) **सम वेलि।**

२९०—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। रूपक। अपह्नुति।

२९१—व० स०। अनुप्रास। यमक। सदेह। उल्लेख।

काव्य की प्रशंसा

२९२

मोतिअे विसाहण ग्रहि कुण मूंकइ,
अेक-अेक प्रति अेक अनूप
किल सोभ्रण मुख मूझ वयण-कण
सु-कवि कु-कवि चालणी न सूप

२९३

पिँडि नख-सिख लगि ग्रहणे पहिरी अे
महि मूँ वाणी वेलि-मइ
जग-गळि लागी रहइ असइ जिम,
सहइ न दूखण जेम सइ

२९२. एक-एक लै, को तजै ? मुगता परम अनूप
मो कविता-कन को कु-कवि सु-कवि चालनी सूप
२९३. रहै सबनि के गर लगी भूखन-वरन वनाइ
पृथीराज - बानी सती सहै न दूखन भाइ

२९२—मोतियो को । खरीदते समय । लेकर । कौन । छोडता है, वापिस रखता है । एक-एक की अपेक्षा । एक । अनुपम, श्रेष्ठ । निश्चय ही (किल) । शोधने, छाटने, अच्छे-बुरो को अलग-अलग करने (मे समर्थ) । मुख (के) । मेरे । वचन (उक्ति)-रूपी कणो को । श्रेष्ठ कवि । कुत्सित कवि । चलनी । नही । छाज ।

२९३—शरीर मे । नख से शिखा तक । गहने, अलकार । पहने हुए । यह । पृथ्वी पर । मेरी । वाणी, कविता, काव्यकृति । वेलि-रूपी । जगत के गले । लगी हुई । रहती है । कुलटा (अ-सती) । जैसे । सहन करती है । नही । दोप । जैसे । सती, पतिव्रता ।

२९२—व० स० । अनुप्रास । लाटानुप्रास । पुनरुक्तिप्रकाश । रूपक । यथासख्य ।
२९३—व० स० । अनुप्रास । उपमा । विरोधाभास ।

२९४

भाखा प्राक्रित सॅसक्रित भणताँ
मूझ भारती अे मरम
रस-दाइनी सुदरी रमताँ
सेज अंतरिख भोमि सम

२९५

विव्रण जो वेलि रसिक रस वंछउ,
करउ करणि तउ मूझ कथ
पूरे इते प्रामिस्यउ पूरउ,
अर ओछे ओछउ अरथ

२९४. सरस वेलि के वैन भाखा प्राकृत संसकृत
नि मि ले कामिनि चैन सेज साथरे मे वि गति
२९५. इनि वातनि पूरो लहै वेलि भाव कों भेद
कछुक घाटि घाट्यो लहै नर अजान को खेद

२९४—भाषा। सरकृत। प्राकृत। वोलते हुए, रचना करते हुए। मेरी। वाणी, कविता (का)। यह। रहस्य। आनद देने वाली। सुन्दरी को। रमते समय। शय्या। ऊँची। पृथ्वी (भूमि)। समान।

२९५—नाना प्रकार का (वि-वर्ण)। यदि। वेलि का। हे रसिक। आनंद। चाहते हो। करो। कान मे। तो। मेरी। वात, कथन। पूरे होने पर। इतने। पाओगे। पूरा। और। कम होने पर। कम, थोड़ा। अर्थ।

२९५—(२) कहणि। (४) इअे > अर।

२९४—व० स०। अनुप्रास। लाटानुप्रास।
२९५—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक।

२९६

जोतिखी, वयद, पउराणिक, जोगी,
संगीती तारकिक सहि
चारण, भाट, सुकवि, भाखा-चत्र,
करि अेकठा त अरथ कहि

२९६. न्यायी जोगी जोतिखी सुकवि पुरानिक वेद
रागी चारण भाट मिलि लहै वेलि को भेद

२९६—ज्योतिषी। वैद्य। पुराणो का विद्वान। योगशास्त्र का ज्ञाता। सगीत जानने वाला। तार्किक, न्यायशास्त्र का ज्ञाता। सव। चारण। भाट। श्रेष्ठ कवि। भाषा-चतुर, भाषाओ का विद्वान। किये जायँ। इकट्ठे (एकस्थित)। तो। अर्थ। कहा जाय।

२९६—व० स०। अनुप्रास। दीपक।

कवि का विनय

२६७

ग्रहिया मुख-मुखाँ, गिळित ऊग्रहिया,
मूँ गिणि आखर अे मरम
मोटाँ तणउ प्रसाद कहइ महि,
अइँठउ आतम - स्रम अधम

२६८

हरि-जस-रस साहस करे हालिया,
मो पडिताँ ! वीनती, मोख
अम्हीणा तम्हीणइ आया
स्रव्रण-तीरथे वयण स-दोख

२६७ झूठि वडे कवि-जनन की गिलि उगली हरि तूठि
वह प्रसाद हरि को सबै, अधम-लोक-मत जूठि
२६८ सुजन-कान तीरथ परसि ह्वै है निरमल ऐन
हरि-जस सुनि ही के स्रवन पृथीराज के वैन

२६७—निगले, ग्रहण किये, सुनकर हृदय मे धारण किये। विभिन्न मुखों से, अनेक महापुरुषो के मुखो से। निगले हुओ को। उगले, कविता के उद्‌गार के रूप मे वाहर निकाले। मेरे। गिनो, समझो। अक्षरो का, वचनो का। यह। रहस्य। वडो का। प्रसाद, भोजन के वाद शेप रहा पदार्थ। कहते है। वडे लोग। उच्छिष्ठ, जूठन। आत्मा का श्रम। नीच जन।
२६८—कृष्ण की कीर्त्ति के वल पर। हिम्मत। करके। चले। मेरी। हे पडितों। प्रार्थना है। दोप-मुक्त करो। मेरे। तुम्हारे। आये। कर्ण-रूपी तीर्थ मे। वचन। दोष-पूर्ण।

२६७—गिळिया, गळिया। ऊगळिया। (२) गुण। (४) अउ अइंठइ आतम अधम। सम।

२६७—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। उल्लेख।
२६८—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। रूपक।

२९९

रमताँ जगदीसर तणउ रहसि रस
मिथ्या वइण न तासु महे
सरसइ रुकमणि तणी सहचरी
कहिया मूँ, मइँ तेम कहे

३००

तूँ तणा अनइ तूँ तणी तणा त्री
केसव्व ! कुण कहि सकइ क्रम
भलउ तिकउ परसाद भारती,
भूँडउ तग्इ माहरउ भ्रम

२९९. गुपत वात हरि की कही, या मे नाहिन आन
रुकमिनि-सखि सरसति कही, मै वह कर्‍यो वखान
३००. केसौ-रुकमिनि-गुनन कों हौ क्यौ कहौ वखानि
भलो सारदा-भाइ ते, बुरो सु बुधि की हानि

२९९—रमण करते हुए। जगत के ईश्वर कृष्ण का। आनंद रस (की कथा)। असत्य। वचन। नही। उसमे (तस्य मध्ये)। सरस्वती। रुक्मिणी की। पास रहने वाली, सखी (ने)। कहे। मुझे। मैने। उसी प्रकार। कहे।
३००—तेरे। और (अन्यत्, अन्नइ)। तेरी स्त्री के, रुक्मिणी के। हे केशव। कौन। कह सकता है। कर्म, चरित्र। अच्छा। वह। प्रसाद, अनुग्रह। सरस्वती का। बुरा, अयुक्त, सदोष। वह। मेरा। अज्ञान।

२९९—(४) मूंनइ (=मुझे)।
३००—(३) ताइ>तिकउ।

२९९—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास।
३००—व० स०। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।

३०० (क)

[रूप-लखण-गुण तणा रुकमणी
कहिवा सामरथीक कुण ?
जाइ जाणिया, तिसा मइँ जँपिया
गोविंद-राणी तणा गुण]

३०० (ख)

[वरसि अचळ गुण अँग ससि संवति (सं० १६३८)
तवियउ जस करि स्री-भरतार
करि स्रवणे दिन-राति कंठि करि
पामइ स्री-फळ भगति अपार]

—सारग, जयकीर्ति, कुशळधीर।

[३००(क)रुकमिनि लच्छन रूप गुन को कवि कहै निवाहि
मैं जाने तेही कहे गोविद - रानी आहि]
[३००(ख)सवत सोरह सइं वरस वीते चौतालीस
सोम तीज वैसाख को किय कमधज-कुल-ईस]

३००(क)सुन्दरता। सौभाग्य आदि लक्षण। औदार्य आदि गुण। रुक्मिणी के। कहने को, वर्णन करने को। सामर्थ्यवाला, समर्थ। कौन (अप० कवणु)। जाते है। जाने। वैसे (तादृश, तइस)। मैने। कहे (जल्प्, जप)। कृष्ण की रानी के, रुक्मिणी के। गुण।

३००(ख)वर्प मे। पर्वत (८)। गुण (३)। वेद के अग (६)। चंद्रमा (१)। सवत के। स्तवन किया। यश की (कीर्ति-गाथा की)। रचना करके। लक्ष्मीपति (का)। करके। कानो में। (सुनकर)। दिन और रात। कठ मे। करके। (गान करके)। प्राप्त करता है। लक्ष्मी रूपी फल। भक्ति। अपार।

३००(क)(३) जंपि जाणिया। जाणिया जिसा तिसा।
टि०—यह पद्य प्रक्षिप्त जान पड़ता है।

३०० (ख) वसु सिवनयणे रस ससि (१६३८) वत्सरि,
विजय-दसमि रवि रिख वरणोत।

[व्रजभाषा पद्यानुवाद का उपसंहार]

वर नसेनि वैकुंठ की रची वेलि संसार
सुनै - सुनावै जिन नरनु प्रेम उतारै पार

आग्या मिरजाखान की लई करी गोपाल
वेलि कहे को गुन यहै, कृष्ण करो प्रतिपाल

मरुभाखा निरजल तजी करि व्रजभाखा चोज
अब गोपाल याते लहै सरस अनूपम मोज

कवि गोपाल यह ग्रन्थ रचि लायो मिरजा पास
रस-विलास दे नाँउ उनि कवि की पूरी आस

क्रिसन - रुकमणी - वेलि - कळपतरु
की कमधज कलियाणउत ॥

—शिवनिधान, जयकीर्ति और कुशलधीर (वैकल्पिक पाठान्तर); लक्ष्मीवल्लभ ।

सोळै सै सँवत छत्रीसा (१६३६) वरखे
सोमत्रीज वैसाख समधि ।
रुकमणि-क्रिसन रहस-रँग रमताँ
कही वेलि पृथिराज कमधि ॥

—संवत् १७२१ की प्रति ।

सोळह सै समत चमाळै (१६४४) वरसे
सोम तीज वैसाख सुदि ।
रुकमणि-कृष्ण रहस्य रमण रस
कथी वेलि पृथिराज कमधि ॥

—उदयपुर की तीन प्रतियाँ ।

सोळै से सुकल चुआळे (१६४४) वरसे,
सोम तीज वैशाख सुध ।
रुखमणि धरा रहसि रस गंमति,
कही वेल पृथुदास कमध ॥

—संवत् १७७४ की प्रति ।

हिन्दी भाषान्तर

और

टिप्पणियाँ
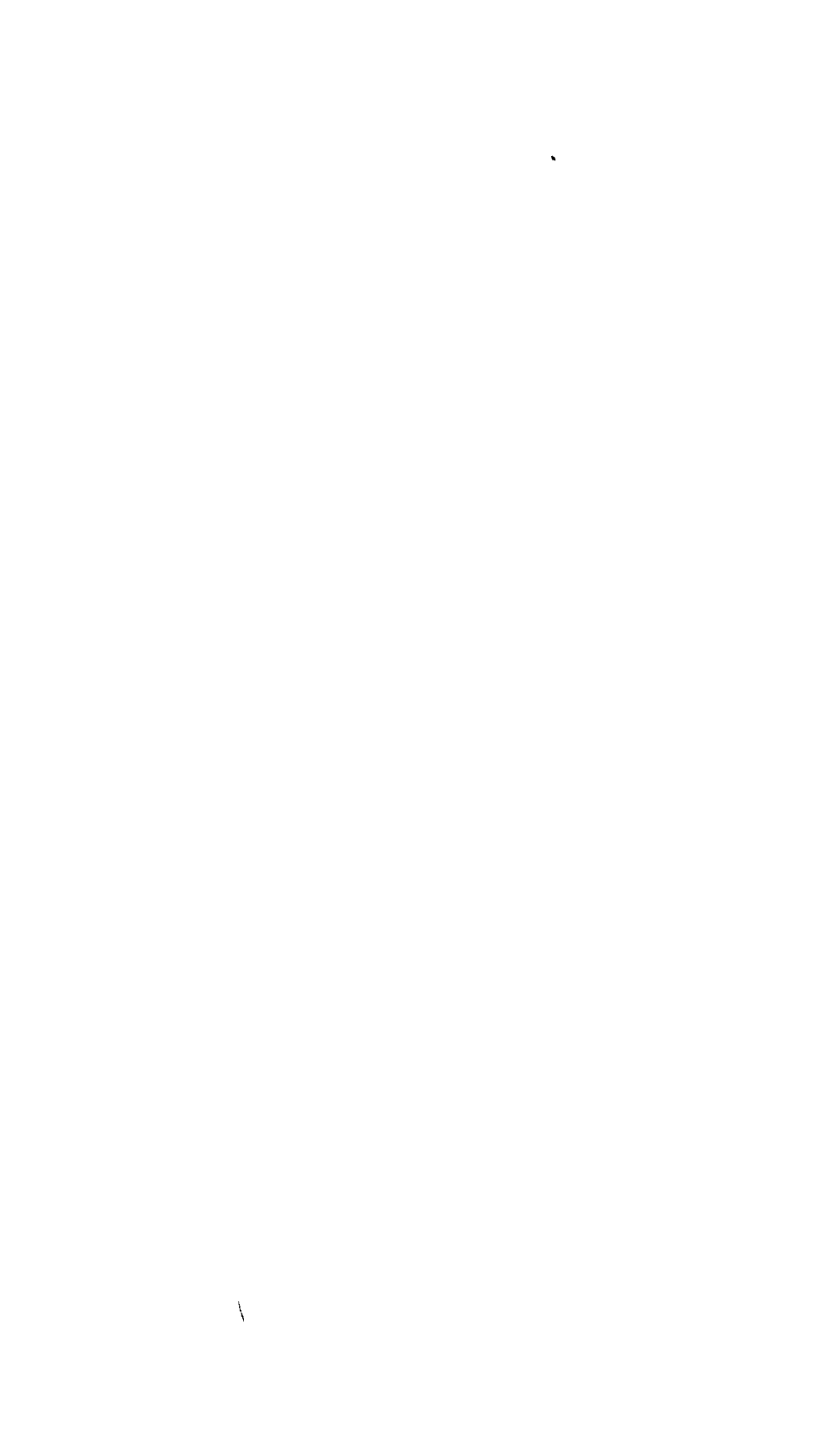
(क) हिन्दी-भाषान्तर

मंगलाचरण

१. कवि मंगलाचरण करता है।

परमेश्वर को प्रणाम करके, सरस्वती को प्रणाम करके और फिर सद्गुरु को प्रणाम करके, जो तीनो तत्त्व के सार (सार-तत्त्व, प्रधान तत्त्व) है, मंगल के रूप लक्ष्मीपति कृष्ण का गुण-गान किया जाता है। ये ही चारो मंगलाचरण है (इनसे बढ़कर मगलाचरण और कोई नही)।

प्रस्तावना

२. कवि कृष्ण-गुण-वर्णन कार्य की दुष्करता और अपनी असमर्थता तथा अयोग्यता का कथन करता है।

जिसने मुझे जन्म दिया उस गुणों के निधान भगवान के गुणो का गान मैने आरम्भ किया है यद्यपि मै गुणो से हीन हूँ। मेरा यह कार्य ऐसा है मानो काठ मे चित्रित कोई पुतली अपने हाथ से अपने चित्रकार को ही चित्रित करने चली हो—अपने निर्माता को ही वनाने चली हो।

कवि=पुतली। **भगवान**=चित्रकार।

३. मैने लक्ष्मी के पति भगवान के यश-वर्णन के कार्य को आदर के साथ अपने ऊपर लिया है पर मेरा यह कार्य ऐसा है मानो वाणी से हीन गूगे ने वाणी की स्वामिनी सरस्वती को जीतने का हठ ठाना हो।

कवि=गूगा। **भगवान की कीर्त्ति का कथन**=सरस्वती को जीतना।

अन्यार्थ—मानो वाणी से हीन गूगे ने वाणी की स्वामिनी सरस्वती को जीतने के लिए—सरस्वती को जीतने की इच्छा करके—उसके साथ विवाद (शास्त्रार्थ) आरम्भ किया हो।

४. जो सरस्वती को भी नही दिखायी पडता—जिसे सरस्वती भी नही जान पाती—उसे तू खोजता है—जानना चाहता है! हे वाचाल! क्या तू वावला हो गया है? हे मूर्ख मन! लँगडा पथिक मन के साथ दौड़ता हुआ कैसे निभ सकता है?

कवि=पगुल। **सरस्वती की वरावरी करना**=मन की वरावरी करना।

५. कवि भगवान को सबोधन करके अपनी अक्षमता प्रकट करता है।

जिस शेपनाग के हजार फन है और एक-एक फन मे दो-दो जिह्वाएँ है

तथा प्रत्येक जिह्वा मे भगवान का नया-नया यश है—अर्थात् जो शेषनाग दो हजार जिह्वाओ से भगवान का नया-नया यश गाता है, उसने भी पार नहीं पाया, तो हे त्रिविक्रम ! मेढको के वचनो का क्या वश—मेढक उसका पार किस प्रकार पा सकते है ? मेढक के समान मैं उस यश का वर्णन कैसे कर सकता हूँ ?

कवि-वाणी=दर्दु र-वचन ।

६. हे लक्ष्मी के पति ! ऐसा बुद्धिमान कौन है जो तुम्हारे गुणो का स्तवन कर सके ? ऐसा तैराक कौन है जो समुद्र को तैरकर पार कर सके ? ऐसा पक्षी कौन है जो आकाश (के अन्त) तक पहुंच सके ? ऐसा दरिद्र कौन है जो सुमेरु पर्वत को हस्तगत कर सके ?

गुणो का स्तवन करना=समुद्र तैरना, आकाश के अन्त तक पहुँचना, सुमेरु को हस्तगत करना ।

७. असमर्थ होने पर भी वह भगवान के यश का वर्णन क्यो कर रहा है, कवि इसका कारण बताता है ।

जिन कृष्ण ने जगत मे जन्म दिया, जिनने मुख मे खाने को जिह्वा दी, और जो कृष्ण पालन-पोषण करते है उनकी कीर्त्ति के वर्णन करने का परिश्रम किये विना कैसे काम चले ?

८. कवि, उसने प्रथम रुक्मिणी का वर्णन क्यो किया इसका, कारण बताता है ।

शुकदेव, व्यास, जयदेव जैसे अनेक श्रेष्ठ कवि हुए है, वे सब इस विषय पर एकनिष्ठ (एकमत) है कि जो कवि शृंगार रस का ग्रन्थ बनावे वह नायिका का वर्णन पहले करे ।

९. कवि रुक्मिणी का वर्णन पहले करने का एक और कारण बतलाता है ।

क्योकि माता पुत्र को पहले दस महीने तक गर्भ मे धारण करती है और फिर दस बरस तक यहां (ससार मे) जीवन की परिपालना करती है इसलिए, और फिर पुत्र के प्रेम को देखते हुए, कहना पड़ता है कि पिता की अपेक्षा माता बहुत बडी हे (अत॰ माता का वर्णन पहले करना उचित हे) ।

रुक्मिणी की बाल्यावस्था

१०. कवि कथा का आरंभ करता हे ।

दक्षिण दिशा मे विदर्भ नाम का देश बहुत शोभायमान था । उसम कुन्दनपुर नाम का बहुत सुहावना नगर था । वहां एक भीष्मक नाम का राजा शोभायमान था जो नागो, मनुष्यो और असुरो तथा देवताओं का—तीनो लोको के निवासियो का—शिरोधार्य (मान्य) था ।

११. उस भीष्मक राजा के पाँच पुत्र हुए और छठी एक सुन्दर पुत्री हुई ।

पहला निर्मल यश वाला कुमार रुक्मकुमार कहा जाता था। बाकी कुमारों के नाम रुक्मबाहु, रुक्ममाली, रुक्मकेश और रुक्मरथ थे।

१२. रुक्मिणी की बाल्यावस्था का वर्णन।

छठी जो पुत्री थी वह लक्ष्मी का अवतार थी, उसका नाम रुक्मिणी था। बालक-दशा मे वह ऐसी जान पडती थी मानो मानसरोवर मे हस का बच्चा हो अथवा मानो सुमेरु पर्वत पर छोटी-सी सोने की लता हो जिसमे अभी दो ही पत्ते निकले हो।

बालदशा में रुक्मिणी=हंस का बच्चा, सोने की दो पत्तो वाली छोटी लता।

पाठान्तर—बाळ-क्रति करि इ०—बाल-क्रीड़ा करती हुई वह ऐसी जान पडती थी मानो इ०।

१३. दूसरा बालक जितना बरस भर मे बढता है उतना वह महीने मे बढने लगी, दूसरा जितना महीने मे बढता है उतना वह पहर मे बढती थी। बत्तीस लक्षणो से युक्त वह राजकुमारी बाल-लीला करती हुई गुडियाँ खेलने लगी (गुडियाँ खेलने के योग्य अवस्था को पहुंच गयी)।

१४. उसके साथ मे सखियाँ थी जो शील मे, कुल मे और अवस्था मे उसके समान थी। वे ऐसी दिखायी पडती थी जैसे कमलिनी की पंखुडियाँ हों। उनसे घिरी हुई वह राजकुमारी राजा के आँगन में इस प्रकार शोभित होती थी जिस प्रकार आकाश मे तारा-गणो मे द्वितीया का चंद्रमा शोभित होता है।

राजकुमारी=द्वितीया का चन्द्र। **सखियाँ**=उडुगण। **राजांगन**=अंबर।

१५. राजकुमारी के शरीर में शैशव की सुषुप्ति थी—शैशव सो गया था—चला गया था, पर यौवन की जागृति अभी तक नही हुई थी—यौवन अभी नही जगा था—नही आया था। स्वप्नावस्था के समान वय.संधि प्राप्त थी। अब यौवन प्रतिक्षण बढता ही जायगा। उसका प्रथम ज्ञान इस प्रकार हुआ।

१६ पहले राजकुमारी के मुख मे लालिमा प्रकट हुई मानो पूर्व दिशा के आकाश मे सूर्योदय के समय ललाई दिखायी पडी। जिस प्रकार अरुणोदय की लालिमा को देखकर ऋषि लोग सन्ध्यावदन करने के लिए उठ खड़े होते है उसी प्रकार मुख की लालिमा के साथ पयोधर जाग उठे।

राजकुमारी का मुख=प्राची का अम्बर। **वयःसंधि की अवस्था**=सूर्योदय का काल। **राग**=अरुण। **पयोधर**=ऋषि।

१७. राजकुमारी के जी मे एक नवीन अशान्ति-सी उत्पन्न हो गयी मानो आकर चले जाने वाले (अल्प-स्थायी) यौवन को आता हुआ देखकर जी में चैन नही पड़ता था। पुराना मित्र बचपन जा रहा था और उसके स्थान पर यौवन-

रूपी नया मित्र आ रहा था। पर यह नया मित्र आकर चला जाने वाला है, वह अधिक दिन साथ नही रहेगा, मानो यह जानकर रुक्मिणी के मन मे अशान्ति उत्पन्न हो रही थी। वह बाला अपने बालपन के साथी बचपन के बिछुड़ते समय बहुत विकल हुई।

१८. माता-पिता के सामने आँगन मे खेलते समय काम के निवास वाले कुच आदि अगो को छिपाने मे उस लज्जावती राजकुमारी के शरीर मे लज्जा इस प्रकार होती थी कि उसे लज्जा करने मे भी लज्जा आती थी—लजाने मे भी लाज लगती थी।

१९ राजकुमारी के शरीर मे जो शैशव-रूपी शिशिर था वह सारा बीत गया और गुण, गति, मति आदि मे बहुत वृद्धि हो गयी। मानो शिशिर बीत गया यह जानकर यौवन-रूपी वसन्त उस शरीर मे अपने परिवार को लेकर आ पहुंचा।

यौवन=वसन्त। **शैशव**=शिशिर। **गुण-गति-मति अति**(=गुणाधिक्य, गति की श्रेष्ठता, मन की उमग आदि) **यौवन का परिवार**=पुष्प आदि वसन्त का परिवार।

२०. शरीर खिलकर निर्मल हो गया जैसे वसन्त के आने पर वन पुष्पित होकर सुन्दर हो जाता है। नेत्र खिल उठे जैसे कमलों के समूह खिलते है। कठ मे सुहावना स्वर उत्पन्न हो गया जैसे कोकिल का सुहावना शब्द हो। बरौनी-रूपी पखो को नयी भाँति से सजाकर भौहे-रूपी भ्रमर मँड़राने लगे।

यौवन=वसन्त। **शरीर**=वन। **नेत्र**=कमल। **कंठ-स्वर**=कोकिल-स्वर। **बरौनी**=पख। **भौहें**=भ्रमर। **शरीर की प्रफुल्लता**=वन का विकास।

२१. राजकुमारी का सुन्दर शरीर मानो मलयाचल था जिसमे मन-रूपी चन्दन का वृक्ष मुकुलित हो उठा; काम के अकुर-रूप कुच मानो नवाकुरित कलियाँ थी, उच्छ्वास मानो दक्षिण दिशा से आने वाला एव शीतल मद सुगन्ध इस प्रकार तीन गुणो वाला और अनुकूल तथा ऊंचा चलने वाला पवन था।

यौवन=वसन्त। **शरीर**=मलयाचल। **मन**=चन्दनवृक्ष। **अंकुरित कुच**=कली। **ऊँचा या तेज सांस**=ऊचा पवन।

२२ कवि राजकुमारी के मुख के साथ चन्द्रमा का साग रूपक बाधता है।

राजकुमारी के हृदय मे जो आनन्द है वही चन्द्रोदय है, उसका हास ही फैला हुआ प्रकाश है, दातो की पंक्तिया तारों की पक्तियो के समान शोभायमान है, नेत्र कुमुद है, नासिका दीपक है, केश अधेरी रात है और मुख पूर्ण चन्द्रमा है।

मुख=चद्र। **आनन्द**=चंद्रोदय। **हास**=चादनी। **दंतपंक्ति**=तारागण। **नेत्र**=कुमुदिनी। **नासिका**=दीपक। **केश**=अधकार, या अँधेरी रात्रि।

२३. अवस्था-रूपी रात्रि बढने पर शरीर-रूपी सरोवर मे यौवन के जोर के रूप मे जल का जोर बढ चला। उस कामिनी के हाथ मानो काम के वाण थे और उसकी भुजाएं मानो वरुण के पाश।

शरीर=सरोवर। **यौवन**=जल। **हाथ**=काम के वाण। **भुजाएँ**= पाश।

२४. कामिनी के कठोर कुच मानो हाथी के कुभस्थल थे। उनके ऊपर गहरी श्यामता शोभायमान थी—कुचो के अग्रभाग श्याम हो रहे थे—मानो यौवन-रूपी हाथी ने अपने मद को प्रकट किया हो। इस प्रकार कवि ने नवीन वय अर्थात् यौवन का विविध प्रकार के वचनों से वर्णन किया।

कुच=हाथी के कुभस्थल। **श्यामता**=हाथी का मद।

२५ कठोर और पुष्ट कुच पर्वत के शिखरो के समान थे। कमर बहुत पतली और अतीव सुगठित थी। उस पद्मिनी की नाभि प्रयाग (के कुड) की भाति (गहरी) थी। त्रिवली त्रिवेणी के समान और नितंब त्रिवेणी के तटो (करारो) के समान थे

कुच=पर्वत-शिखर। **नाभि**=प्रयाग (का कुड)। **त्रिवली**=त्रिवेणी। **नितंब**=तट।

२६ उस नितविनी की अनुपम जघाए कलभ की सूड के अथवा उलट कर रखे हुए केले के थभ के, समान थी। उसकी दोनो नलिकाए (पिडुलिया) उसके अर्थात् केले के भीतरी भाग के समान सुकोमल थी। विद्वान लोग उनका इस प्रकार के वचनो से वर्णन करते है।

जंघा=कलभ की सूड, विपरीत कदली स्तभ। **पिंडुलियां**=कदलीगर्भ।

२७. नव पल्लवो जैसे कोमल चरणो पर नख शोभायमान थे। वे ऐसे जान पडते थे मानो कमल की पखुडियो पर निर्मल जलविंदु हों अथवा तेज हो या रत्न हो या मोती हों या तारे हों या छोटे सूर्य हो या हस के वच्चे हो या चंद्रमा हो या हीरे हो।

चरण=नव पल्लव, कमल-दल। **नख**=जलकण आदि।

विद्या-पठन

२८ व्याकरण, पुराण, स्मृति, विविध शास्त्र, चार वेद और छह वेदाग—इनका विचार (अनुशीलन) किया। इन चौदह विद्याओ का ज्ञान प्राप्त करके चौसठ कलाओ का ज्ञान प्राप्त किया। उनमे राजकुमारी का प्रचुर-प्रचुर प्रावीण्य था।

अन्यार्थ—उनमे अनन्त (=भगवान) का अनत अधिकार पाया, भगवान का गुणानुवाद प्रचुरता से दिखायी पड़ा।

प्रेम का उदय

२९ श्रीकृष्ण के गुणो को सुनकर रुक्मिणी के मन मे उनके प्रति

अनुराग उत्पन्न हुआ। वह श्रेष्ठ वर की प्राप्ति की इच्छा करने लगी। कृष्ण के गुणो के प्रति जो लालसा उत्पन्न हुई उस लालसा से वह हर-गौरी की आराधना करने लगी।

टिप्पणी—कन्याए श्रेष्ठ वर की प्राप्ति के लिए हर-गौरी की पूजा किया करती है।

विवाह-मंत्रणा

३०. रुक्मिणी के ऐसे अग देखकर उसके माता-पिता विवाह का सुन्दर विचार करने लगे। जव उनने योग्य वरो को देखना—विचारना—आरभ किया तो उन्हे कृष्ण के समान सुन्दर, शूरवीर और शुद्ध आचार तथा शुद्ध कुल वाला दूसरा कोई वर नही दिखायी पडा।

३१. माता-पिता का ऐसा विचार देखकर पुत्र रुक्मकुमार उनसे यो कहने लगा—मेरे मन मे यह भावना आयी है कि राजवशियो का और ग्वालो का कैसा नाता ? हमारी तुलना मे क्या उसकी जाति है, क्या पाति है और क्या कुल है ?

३२ इतने राजवशो को छोड़कर यह जो ग्वालो के साथ सम्वन्ध करते है तो जान पडता है कि माता और पिता बुढापे के कारण बावले हो गये है। बुढापे का कोई विश्वास न करे।

३३ माता-पिता ने कहा—हे पुत्र ! बावलापन मत कर। कन्या रुक्मिणी लक्ष्मी के समान है और वसुदेव के पुत्र कृष्ण विष्णु के समान है, जिनकी देवता, मनुष्य और नाग—तीनो लोको के निवासी—सेवा करते है।

३४. रुक्मकुमार माता-पिता की मर्यादा (मान, लिहाज) को मिटा कर मुह से कहने लगा—शिशुपाल के बरावर सुन्दर वर कोई नही। वह राजकुमार अत्यन्त क्रोध के कारण उमड चला, मर्यादा का उल्लघन कर चला, जैसे अत्यन्त जल के कारण वरसाती नाला उमड चलता है।

रुक्मकुमार=वरसाती नाला। **क्रोध**=जल।

३५. गुरुजनो की (माता-पिता की) भारी भूल जानकर रुक्मकुमार अपने पुरोहित के घर गया और वीर दमघोष का (शिशुपाल के पिता का) नाम लिया—कहा कि राजा दमघोष के यहाँ जाओ। उसने कहा—हे पुरोहित ! एक बडा अच्छा काम हो यदि वर शिशुपाल बहन रुक्मिणी को ब्याहे।

अन्यार्थ—नर=वीर (रुक्मकुमार) ने। **दमघोष**=पुरोहित का नाम (ढूढाडी टीका)

पाठान्तर—नँदघोष=(१) दमघोष के नदन (शिशुपाल) का (लक्ष्मीवल्लभ की टीका)। (२) पुरोहित का नाम (सस्कृत टीका)।

३६ उस ब्राह्मण ने देर नही लगायी। उसने आज्ञा के वशवर्त्ती होकर

भली-बुरी बात नही सोची। इसके पहले ही वह लग्न लेकर शिशुपाल की चदेरी पुरी मे जा पहुँचा।

शिशुपाल का आगमन

३७ लग्न को पाकर शिशुपाल खूब हर्ष में भरकर, शास्त्रो मे बतायी हुई विधि के अनुसार, कुदनपुर को चला। उस समय कौन जाने कितने देश-देशो के राजा उसके साथ चले।

अन्यार्थ—ग्रथे इ०—जैसा भागवत आदि ग्रथों मे वर्णन किया है उस प्रकार से।

३८. शिशुपाल के आगमन पर कुदनपुर मे उत्सव किये जाने लगे। नगारो पर चोटे पड़ने लगी। नगारे बजने लगे। मंडप छाये जाने लगे और सोने के कलस बांधे जाने लगे।

३९ घर-घर मे हिंगलू की गार और स्फटिक की बनी ईटो से अद्‌भुत भीते चुनी गयी। चदन के पट्‌टे (तख्ते) और चदन के ही किवाड लगाये गये। खुंभिया (खभो के नीचे के भाग) पन्नो की और खभे मूगो के बनाये गये।

४०. जो श्याम और श्वेत मडपो के समूह थे, उन्हे ही काले और सफेद बादल समझो। जो नगारे बजते थे वे ही मानो बादल गरजते थे। द्वार-द्वार पर तोरण स्थापित किये जाते थे, वे ही मानो पर्वतो पर मोर नाच रहे थे।

मंडप या तंबू=बादल। **नगारो का शब्द**=मेघगर्जना। **द्वार**=पर्वत। **तोरणो में बने मोरों सहित तोरण**=मोर।

४१. राजा शिशुपाल की बरात के साथ जो राजा लोग थे वे ललाट पर हाथ रखकर (देखते हुए) कहने लगे—वह दूर पर नगर दिखायी देता है या बादलो की घटा? वे ऊंचे महल दिखायी पडते है या धवलाचल पर्वत?

नगर=मेघ-घटा। **महल**=धवलाचल।

४२ नगर की नारिया झरोखों मे चढ-चढकर मंगल-कृत्य करती हुई गीत गाने लगी। वे शिशुपाल के मुख को सूर्य मान रही थी—शिशुपाल का मुख उनको सूर्य के समान जान पडता था। सूर्य के समान उस मुख को देखकर अन्यान्य नारियां कमलिनी की भाति खिल उठी पर रुक्मिणी कुमुदिनी के समान म्लान हो गयी।

शिशुपाल का मुख=सूर्य। **स्त्रियां**=कमलिनिया। **रुक्मिणी**=कुमुदिनी।

संदेश-प्रेषण

४३. रुक्मिणी ऊपर चढ-चढ़कर जाली के मार्ग से किसी पथिक को देखने लगी। उसका सुन्दर शरीर घर मे था पर उसका मन कृष्ण मे लगा

था। उसने अश्रु-जल से मिश्रित काजल की स्याही से नख-रूपी लेखनी द्वारा एक पत्र लिखकर रख लिया था।

काजल=स्याही। **अश्रुजल**=जल। **नख**=लेखनी।

४४. इतने मे एक पवित्र यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मण दिखायी पडा। रुक्मिणी प्रणाम करके उससे कहने लगी—हे भाई! हे वटाऊ! हे ब्राह्मण! द्वारका तक मेरा संदेसा पहुँचा दो।

४५ अव देर मत करो। एकाग्र-मन होकर वहा जाओ जहा यादवो के स्वामी कृष्ण है। अपने मुख से, मेरे मुख द्वारा कही हुई, चरणवन्दना निवेदन करके उनको यह पत्र देना।

४६ पत्र को लेकर वह ब्राह्मण चला। थोडी दूर चला था कि सूर्य की किरण चली गयी---सूर्य अस्त हो गया। घरो मे हलचल होने लगी। रह-रह कर कोई एकाध पथिक रास्तो मे चल रहे थे—मार्ग सूने हो गये थे पर कोई एकाध पथिक कभी-कभी चलते दिखायी पड जाते थे। वह जो ब्राह्मण था सो पुर से वाहर निकलते ही सो गया, रात पड गयी थी इसलिए आगे नही चला।

अन्यार्थ—गहमह=(दीपकों की) जगमगाहट।

४७. वह मन मे सोचने लगा—लग्न का दिन निकट है, द्वारका दूर है; भय लग रहा है कि किस प्रकार पहुँच सकूगा। संध्या समय यो सोचता हुआ वह कुदनपुर मे ही सो गया। प्रातःकाल जागा तो उसने अपने को द्वारका मे पाया।

द्वारका-वर्णन

४८. कही वेद-पाठ की ध्वनि सुनायी पडती थी, कही शंखो की ध्वनि सुनायी पडती थी, कही झालर का शव्द हो रहा था, कही नगारो का शव्द। एक ओर नगर मे लोगो का कोलाहल हो रहा था, दूसरी ओर समुद्र मे लहरो का शव्द उठ रहा था। इस प्रकार नगर और समुद्र दोनो मे एक-सा शोर हो रहा था।

नगर का कोलाहल=समुद्र की गर्जना।

४९ चपक पुप्प की पखुडियो के समान गौरवर्ण वाली झुड-की-झुंड पनिहारिने सिर पर कलस रखे हुए (थामे हुए) और हाथो मे कमल लिये हुए जा रही थी। प्रत्येक घाट पर, निर्मल जल के पास, चलते-फिरते तीर्थ पवित्र ब्राह्मण वैठे सन्ध्या-ध्यान आदि कर रहे थे।

अन्यार्थ—कमलो के समान हाथो से सिर पर कलसो को थामे हुए।

५०. ब्राह्मण ने जव देखा तो क्या देखता है कि प्रत्येक घर मे लोग यज्ञ कर रहे है और प्रत्येक यज्ञ मे जप और तप किये जा रहे है। उसने देखा कि

प्रत्येक मार्ग मे आम के वृक्ष मुकुलित हो रहे है और प्रत्येक आम के वृक्ष पर कोयल बोल रहे है ।

५१. यह सब देखकर ब्राह्मण आश्चर्य मे भर गया और सोचने लगा—यह प्रत्यक्ष है या सपना है ? क्या मै स्वर्गपुरी मे आ पहुँचा हूँ ? तब उसने एक पुरुष के पास जाकर पूछा । उसने यो कहा—हे ब्राह्मण देवता ! यह द्वारका है ।

कृष्ण-दर्शन

५२. उसके इस वचन को कानो से सुनकर ब्राह्मण के मन मे हर्ष हुआ और वह उस पुरुष को प्रणाम करके आगे चला । फिर पूछता-पूछता राजमहल मे अन्त पुर मे जा पहुँचा । वहाँ उसे कृष्ण के दर्शन हुए ।

५३. श्रीकृष्ण के मुख-कमल को देखकर वह अपने आप से कहने लगा—अपने मन में विचारने लगा—अब रुक्मिणी अवश्य सफल-मनोरथ होगी, मै तो पहले ही सफल-मनोरथ हो गया हूँ ।

मुख=कमल ।

५४. दूर से ही ब्राह्मण को आता देखकर हृदय मे बसने वाले जगत के पति भगवान उठ खड़े हुए और उसकी वन्दना करके शास्त्रों मे जैसा कहा गया है उससे भी अधिक अतिथि-सत्कार किया ।

५५. श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण से पूछा—हे मित्र ! कहा से आये हो ? कहा रहते हो ? किसलिए आये हो ? किससे काम है ? कहाँ जा रहे हो ! हे ब्राह्मण ! उस व्यक्ति (के नाम) को बताओ जिस ने मेरे सामने पत्र भेजा है ।

५६. ब्राह्मण ने उत्तर दिया—मैं कुदनपुर से आया हूँ, कुदनपुर मे रहता हूँ। यह कहकर पत्र दिया और फिर बोला—मुझे रुक्मिणी ने आपके पास भेजा है, सारे समाचार इसके भीतर है ।

५७. पत्र को हाथ में लेने पर कृष्ण के शरीर मे आनन्द के चिह्न उमड आये—शरीर मे रोमाच हो आया, आँखो मे आसू भर आये और कठ गद्गद् हो गया जिससे पत्र पढ़ते नही बनता था । इसलिए करुणाकर भगवान ने वह पत्र उसी ब्राह्मण के हाथ मे दे दिया ।

५८. देवताओ के अधिपति श्री कृष्ण की आज्ञा पाकर ब्राह्मण पत्र को पढ़ने लगा । पत्र मे विधि के अनुसार जो शिष्टाचार की शब्दावली लिखी थी, प्रथम उसे पढकर फिर निवेदन किया (आगे पढ़ा)—हे शरण-हीनो के शरण ! मै तुम्हारी शरण मे हूँ ।

अन्यार्थ—उसने विधिपूर्वक निवेदन करके विनती की कि हे अशरण-शरण ! रुक्मिणी आपकी शरण मे है ।

रुक्मिणी का पत्र

५९. हे बलि को बांधने वाले ! यदि कोई दूसरा मुझे व्याहता है तो समझो

कि स्यार सिह के भोजन को खाता है, अथवा कपिला गाय कसाई-रूप पात्र को दी गयी, अथवा तुलसी चाडाल के हाथ जा पडी।

रुक्मिणी=सिह-वलि, कपिला गाय, तुलसी। **कृष्ण**=सिह। **दूसरा व्यक्ति**= सियार, कसाई, चाडाल।

६० यदि मेरे लिए तुमको छोडकर कोई दूसरा वर लाते है तो मानो अग्नि मे जूठन को होमते है, अथवा शालग्राम को शूद्र के घर मे रखते है, अथवा वेद-मत्र म्लेच्छो के मुख मे रखे जाते है।

रुक्मिणी=अग्नि, शालग्राम, वेदमत्र। **दूसरा व्यक्ति**=जूठन, शूद्र, म्लेच्छ।

६१. हे हरि! तुमने वराह-रूप धारण कर और हिरण्याक्ष को मारकर पाताल से (पृथ्वी-रूपिणी) मेरा उद्धार किया। हे दयामय केशव! कहो तो, उस समय किसने तुम्हे शिक्षा दी थी—किसने तुमसे ऐसा करने के लिए कहा था?

६२. जब देवताओ और दैत्यो को लाकर (एकत्र करके), तथा वासुकी नाग रूपी नेती से मदराचल-रूपी मथानी को वाधकर उसे समुद्र पर रखा था और समुद्र को मथकर लक्ष्मी के रूप मे मुझे प्राप्त किया था तव हे मधु को मारने वाले! तुमको किसने सिखाया था—ऐसा करने की सीख दी थी?

देवता, दैत्य=मथने वाले। **समुद्र**=दधि-घट। **जल**=दधि। **वासुकि**= नेती। **मंदर**=मथानी।

६३. हे करुणा करने वाले? रामावतार मे किस शिक्षा के कारण तुमने युद्ध मे रावण को मारा था और, हे हरि!, समुद्र को वाधकर (सीता के रूप मे) मुझे लका के दुर्ग से बचाया था।

६४ हे चार भुजाओ वाले! अव यह चौथी वार है, शख, चक्र, गदा और कमल को धारण कर मेरी रक्षा के लिए चढकर आओ। हे माधव! जो हृदय में वसता है और हृदय की बात जानता है उससे मुख के द्वारा हृदय की वात क्या कही जाय!

६५. यद्यपि कहने की आवश्यकता नही है तो भी मै कहे विना नही रह सकती, क्योकि एक तो अवला नारी हूँ और दूसरे प्रेम के कारण विह्वल हूँ। इसीलिए कुछ वकती हूँ। आप वहुत दूर द्वारका मे विराजते है और इधर यह दुष्ट दिन निकट आ पहुंचा है।

६६. उस लग्न के दिन के वीच मे तीन ही दिन रह गये है। यह जो मेरे साथ घात हुई है उसके विषय मे अधिक क्या कहूँ? हे पुरुषो मे श्रेष्ठ! मैं पूजा के वहाने नगर के निकट स्थित देवी के मदिर मे आऊँगी।

कृष्ण का आगमन

६७. श्रीकृष्ण कुदनपुर को प्रस्थान करते है।

कृपा के निधान श्रीकृष्ण पत्र का आशय सुनकर शार्ङ्ग धनुष तथा वाण

और सारथी तथा मार्ग को जानने वाले पुरोहित को साथ लेकर उसी समय रथ मे वैठ गये (और रथ को चला दिया)।

६८. लगन लगे हुए तीनो लोको के पति श्रीकृष्ण स्वय रथ को चलाने लगे। उनके सुग्रीवसेन, मेघपुष्प, समवेग और वलाहक नामक घोडे ऐसे, तेज और समान, वेग से चल रहे थे कि पृथ्वी, पर्वत और पेड सामने दौडते हुए आने लगे—ऐसा दिखायी पडता था मानो सामने की पृथ्वी, पर्वत और पेड दौडते हुए सामने आ रहे है।

६९. जव कुन्दनपुर के निकट पहुँच गये तो सारथी ने रथ ठहरा दिया। ब्राह्मण रथ को छोड़कर नीचे उतर आया। श्रीकृष्ण ब्राह्मण से यो बोले—यह नगर आ गया, तुम जाओ और हमारा नाम लेकर कहो कि आ गये, जिससे रुक्मिणी को सुख दे सको।

७०. उधर जव रुक्मिणी को भगवान के आने का समाचार नही मिला तो वह चिता करने लगी। रुक्मिणी ने समझा कि कृष्ण अवश्य ही रह गये—नही आये, क्योकि इतनी देर तो उनने कभी नही की थी। चिता से व्याकुल होकर वह चित्त मे इस प्रकार सोच रही थी कि इतने मे उसे छीक हुई। छीक होते ही उसे धीरज हुआ।

७१. इतने मे ब्राह्मण आ पहुँचा। उसे देखकर रुक्मिणी का चित्त पीपल का पत्ता हो गया—पीपल के पत्ते की भाँति चचल (विकल) हो उठा। न तो विना पूछे रह सकती थी और न (सवके सामने) पूछ ही सकती थी। वह जैसे-जैसे निकट आता था वैसे-वैसे उसके मुख की मुद्रा को ताक रही थी (मुख की मुद्रा से ही पता चल जायगा कि कृष्ण आये या नही; आये होगे तो मुख-मुद्रा प्रसन्न होगी)।

टि०—पीपल का पत्ता निरंतर हिलता रहता है, हवा विलकुल बद जान पड़ती है तव भी वह हिलता दिखायी देता है।

रुक्मिणी का चित्त=पीपल का पत्ता।

७२ रुक्मिणी के साथ सखियाँ और गुरुजन थे। (सबके सामने स्पष्ट कहना उचित न समझकर) ब्राह्मण ने मन मे सोचकर यो समाचार कहा—लोग कहते है कि द्वारका से श्रीकृष्ण पधारे है।

७३. ब्राह्मण की कही हुई वात को कानो से सुनकर रुक्मिणी ने उसे ब्राह्मण के वहाने—ब्राह्मण होने के नाते—प्रणाम किया यद्यपि प्रणाम करने का वास्तविक कारण दूसरा था, वास्तविक कारण यह था कि वह श्रीकृष्ण को ले आया था। जव रुक्मिणी के रूप मे लक्ष्मी स्वय झुककर चरणो मे लगी—स्वयं लक्ष्मी ने प्रणाम करके पैरों का स्पर्श किया—तो क्या आश्चर्य जो उसे अर्थ की प्राप्ति हो!

७४. उधर द्वारका मे जव वलराम ने सुना कि कृष्ण चढ़कर गये है तो वे

भी चढ़कर चले। उनने सेना की तय्यारी अधिक नही की—अधिक सेना साथ मे नही ली—क्योकि एक तो वे स्वयं युद्ध करने मे ऐसे नामी थे, दूसरे उनके सारे साथी युद्ध मे सिद्धहस्त थे।

७५. यद्यपि दोनो भाई मार्ग मे अलग-अलग चले पर नगर मे उनने इकट्ठे मिलकर प्रवेश किया। उनके वहाँ पहुँचने पर मित्र और शत्रु, नर और नारी, नागरिक और नरेश (प्रजा और राजा) सभी उनको देखने लगे (उन्हे देखकर आश्चर्य करने लगे)।

७६. स्त्रियो ने उनको काम कहा, शत्रुओ ने काल कहा, दूसरे लोगो ने नारायण कहा, वेद के ज्ञाता विद्वानो ने वेदार्थ कहा और योगीश्वरो ने योग-तत्त्व वताया।

कृष्ण=काम आदि।

७७. वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण का मुख देखकर नगर के लोग परस्पर कहने-सुनने लगे—यह रुक्मिणी का वर आ गया, अव दूसरे राजा लोग रुक्मिणी की इच्छा न करे।

७८. कृष्ण तथा उनके साथियो को महलो मे ठहरा दिया और एक-एक व्यक्ति के सामने एक-एक व्यक्ति हाथ जोडकर (आज्ञा वजा लाने के लिए) खड़ा हो गया। वलराम और कृष्ण राजा भीष्मक के यहाँ पाहुने होकर आये है। तव मनुहार का क्या अचरज (इतनी मनुहार की जाय तो क्या आश्चर्य)।

रुक्मिणी का शृंगार

७९. रुक्मिणी ने सखी को पहले से ही सिखा रखा था। वह रानी से कहने लगी—हे रानी! रुक्मिणी पूछ रही है कि अम्मा! आप कहे तो आज अम्विका की 'जात' को जा आऊँ (अम्विका देवी की यात्रा और पूजा कर आऊँ)।

८०. तव रानी ने पति को और पुत्र से पूछकर तथा परिवार के लोगो से पूछकर रुक्मिणी को यात्रा की आज्ञा दे दी। अव रुक्मिणी ने पूजा के वहाने, प्रिय के मिलन के निमित्त, शृगार आरम्भ किये।

८१ रुक्मिणी ने पहले गुलाव से सुगधित जल से स्नान किया। फिर धुला वस्त्र पहना। उसके खुले केशो से जल-विंदु गिरने लगे। यह दृश्य ऐसा जान पडता था मानो किसी मोतियो की माला के काले रेशमी डोरे के टूटने से माला के वडे-वडे मोती भटाभट गिर रहे है।

केश=रेशमी डोरा। **जलविंदु**=मोती।

८२. रुक्मिणी केशो के समूह को धूप देने के लिए दोनो हाथो से खोल-कर फैलाने लगी मानो मन-रूपी मृग के लिए काम का जाल विछाने लगी हो।

धूप देना—सुगधित द्रव्य जलाकर उनका धूम पहुँचाना; ऐसे धूम से वासित करना ।

मन=मृग । **केश-पाश**=जाल । **खोलकर फैलाना**=(जाल) बिछाना ।

८३ स्नान करने और केशो को धूप देने के पश्चात् रुक्मिणी चौकी से उतर आयी और शृगार करने की इच्छा से गद्दी पर जा बैठी । इतने मे एक सखी मुख के सामने दर्पण ले आयी—दर्पण को रुक्मिणी के मुख के सामने करके खड़ी हो गयी ।

८४. गले मे पोत की माला का वर्णन ।

रुक्मिणी ने गले मे पोत की (चीढ़ो की) कठी पहनी । वह ऐसी जान पडती थी मानो कबूतर के गले की, या नीलकठ के गले की, रेखा हो, अथवा हिमालय के चारो ओर यमुना घिर आयी हो, अथवा शखधारी विष्णु ने शख को, उसके दो बराबर भाग करके अर्थात् बीचोंबीच से, अपनी एक उँगली मे पकड़ लिया हो ।

पोत की कंठी=कबूतर या नीलकठ के गले की काली रेखा, या यमुना की काली धारा, या विष्णु की श्याम उँगली । **रुक्मिणी का कंठ**=कबूतर या नीलकंठ का गला, या हिमालय, या शंख ।

८५. वेणी और माग का वर्णन ।

फूल दे-देकर गूँथी हुई वेणी ऐसी दिखायी पडती थी मानो फेन से भरी हुई जगत्पावनी यमुना हो । सिर मे ठीक बीच मे माँग सँवारी गयी, जो ऐसी जान पड़ती थी मानो आकाश में बीचोबीच आकाश-गगा हो ।

वेणी=यमुना । **फूल**=फेन । **केशों से युक्त सिर**=आकाश । **मांग**=आकाश-गगा ।

८६. कुडलो और नेत्रो का वर्णन ।

रुक्मिणी के तीखे नेत्र मानो तीखे बाण थे । उसने कानो में कुडल पहने जो मानो सान पत्थर के चक्के थे जिन पर नेत्र-रूपी बाण तीखे किये गये थे । जैसे बाण को तेज करने के लिए सिल्ली के पत्थर पर जल डाला जाता है वैसे ही मानो नेत्रो को और तीखा करने के लिए उसने सलाई पर काजल डाला और नेत्रो में लगाया ।

कानो के कुंडल=सान के चक्के । **नेत्र**=बाण । **सलाई**=सिल्ली । **काजल**=जल ।

८७. ललाट पर तिलक का वर्णन ।

रुक्मिणी ने अपने हाथ से अपने ललाट पर सुदर कुकुम का लाल तिलक बनाया, अब उसने अपने मुख-मंडल मे अपने ललाट को महादेव का भालचंद्र

और कुकुम के लाल तिलक को महादेव का अग्निमय तृतीय नेत्र वना लिया, उसका ललाट भाल-चंद्रमा के समान और उस पर किया हुआ लाल तिलक तृतीय नेत्र के समान शोभित हुआ। भाल-चंद्रमा मे कलक है पर रुक्मिणी के ललाट मे कलक नही था, अग्निरूप तृतीय नेत्र में धूम है पर रुक्मिणी का कुकुम का तिलक निर्धूम था।

रुक्मिणी ने अपने ललाट पर अपने हाथ से कुकुम का सुन्दर तिलक किया। उस समय उसका ललाट ऐसा शोभित हुआ मानो महादेव के भाल पर स्थित चद्रमा हो और कुकुम का लाल तिलक ऐसा शोभित हुआ मानो महादेव का अग्निमय तीसरा नेत्र हो। पर महादेव के भाल-स्थित चद्रमा मे कलंक-रूप दोप, और अग्निमय तृतीय नेत्र मे धूम-रूप दोप है, पर रुक्मिणी ने इन दोनो दोपो को दूर कर दिया (अपने ललाट और अपने तिलक मे इन दोपों को नही आने दिया), क्योकि उसका चद्र के समान ललाट कलंक से युक्त नही था, और कुकुम-तिलक अग्निमय तृतीय नेत्र के समान धूम से पूर्ण नही था।

रुक्मिणी का ललाट=महादेव के भाल पर स्थित चद्रमा। **कुंकुम का तिलक**=महादेव के भाल मे स्थित तृनीय नेत्र जो अग्निरूप हे।

८८. तिलक (शीशफूल) का वर्णन।

मुख और शिखा के संधिस्थल पर (ललाट के ऊपरी भाग पर) रुक्मिणी ने रत्नो से जटित तिलक नाम का आभूपण पहना। वह ऐसा शोभायमान था मानो रुक्मिणी का जो सुन्दर भाग्य पीठ पीछे चला गया था (अदृश्य हो गया था) वह श्रीकृष्ण के आ जाने पर, माग के मार्ग से चलकर, फिर ललाट पर लौट आया था।

तिलक=सौभाग्य। **मांग**=मार्ग।

८९. मुखमडल का वर्णन।

रुक्मिणी का मुखमडल मानो रथ था। भोहे जूवो के समान थी। उसमे नेत्र-रूपी मृग जुते हुए थे। घुंघराले केश मानो सर्प-मयी लगाम थे। वालिया वाकियो के समान थी। ताटक मानो पहिये थे। और चद्रक (तिलक या शीश-फूल) मानो सवार था।

९०. कचुकी का वर्णन।

रुक्मिणी ने कुचो पर कचुकी पहनी। वह ऐसी जान पडती थी मानो हाथी के कुभस्थलो पर जाली डाली गयी हो; अथवा कामदेव के साथ के युद्ध मे महादेव ने कवच धारण किया हो; अथवा मानो कृष्ण के आगमन पर मडप खडे किये हो, अथवा मानो तवू वाधे हो।

कंचुकी=(१) अधारी (२) कवच (३) मडप (४) तवू। **कस (कंचुकी-बंधन)**=तवू को वाधने की रस्सी। **कुच**= (१) गज-कुभस्थल (२) महादेव।

टिप्पणी—कुचो को महादेव की उपमा कवियो में प्रसिद्ध है।

९१. कठी का वर्णन।

राजकुमारी ने गले मे सोने की कंठी पहनी जिसमे दोनो ओर मोतियो की लड़े लगी थी। वह कठी ऐसी जान पड़ती थी मानो सरस्वती, जो कठ मे अदृश्य रूप से रहती थी, अपने अदृश्य स्थान से मृगनयनी रुक्मिणी के कंठ मे प्रत्यक्ष रूप धारण करके बाहर प्रकट हो गयी थी। कठी मे लगी मोतियो की सुन्दर लडे ऐसी जान पडती थी मानो हरि के गुणो की लड़िया हो जिन्हे सरस्वती सदा धारण किये रहती है।

सोने की कंठी=सरस्वती (जिसका रंग लाल कहा गया है)। **मोतियों की लड़ें**=हरिकीर्ति या हरि के गुणो की लडे। **रुक्मिणी का कंठ**—अन्तरीक्ष, अदृश्य स्थान।

टिप्पणी—(१) सरस्वती का निवास-स्थान कंठ के भीतर है। (२) मोती उज्ज्वल है, कीर्ति का रग भी उज्ज्वल माना गया है।

९२ बाजूबदो का वर्णन।

दोनो गोरी भुजाओ मे काले रेशम मे पिरोये हुए बाजूबंद बाँधे। उनके काले रेशम के लटकनो की शोभा सुहावनी थी। गोरी भुजाओ मे बँधे बाजूबदो के लटकते हुए काले रेशमी डोरो के लटकन ऐसे जान पडते थे मानो चदन वृक्ष की डालियो मे बँधे मणियो के झूलो में मणिधारी काले सर्प झूल रहे हो।

गोरी भुजाएँ=चदन वृक्ष की शाखाएं। **रत्नजटित बाजूबंद**=मणिमय झूले। **काले रेशम के लटकन**=काले साप। **लटकनो की मणियां**=सांपों की मणिया।

९३. हाथों के कंगन आदि का वर्णन।

राजकुमारी ने कलाइयों मे मोतियो के गजरे, नव-रतनी पहुँचियां और फिर विविध प्रकार के कगन पहने। कंगन आदि से घिरा हुआ हाथ ऐसा जान पडता था मानो चन्द्रमा को वेधे हुए हस्तनक्षत्र हो अथवा रगविरगे भौरो से आच्छादित अधखिला कमल हो।

कंगन आदि=(१) चन्द्रमा (२) रग-विरगे भौरे। **हाथ**=(१) हस्त नक्षत्र (२) अधखिला कमल।

९४. हार का वर्णन।

राजकुमारी ने हृदय पर मोतियों का हार पहना। हार के पहनने से उसके हृदयस्थल की और गजमुक्ताओ से युक्त हाथी के कुभस्थल (की शोभा) मे बड़ा अन्तर हो गया। उरस्थल को कुभस्थल के समान कहा जाता है और दोनो ही मोतियो से युक्त है—कुभस्थल गज-मुक्ताओ से युक्त है और उरस्थल पर मोतियो का हार है—फिर भी आज राजकुमारी के उरस्थल की जो शोभा है वह हाथी के

कुभस्थल की नही, वह मोतियो को पाकर भी वैसी शोभा नही पाता। मानो इसीलिए ईर्ष्या के कारण हाथी अपने सिर पर धूल डालता है।

टिप्पणी—सूंड से सिर पर धूल डालना हाथी का एक स्वाभाविक व्यापार है पर कवि एक नवीन हेतु कल्पित करता है जिससे हेतूत्प्रेक्षा अलकार हुआ।

उरस्थल=कुभस्थल। **उर पर पहने हार के मोती**=कुभस्थल के मोती।

९५. वस्त्र आदि का वर्णन।

राजकुमारी ने पहने हुए वस्त्र उतार दिये और नवीन धुले वस्त्र शरीर पर धारण किये। उनका वर्णन करने मे समर्थ कवि यहा कौन है? रुक्मिणी का शरीर लता है, भूषण पुष्प है, पयोधर फलो के समान है, और वस्त्र पत्ते है।

९६. करधनी का वर्णन।

रुक्मिणी की कमर कृश और मुट्ठी से नापी जाने वाली (मुष्टिग्राह्य) और सिह की-सी थी। उसमे उसने करधनी पहनी। सिह की-सी कमर मे अनेक रत्नो वाली करधनी ऐसी जान पडती थी मानो सुन्दर भविष्य की सूचना देने वाले समस्त ग्रह-गण सिंह राशि मे इकट्ठे हो गये हो।

सिह की सी कटि=सिंह राशि। **रत्नमयी करधनी**=ग्रह-समूह।

९७. नूपुरो और घुंघरुओ का वर्णन।

चन्द्रमा के समान मुख वाली राजकुमारी ने चरणो मे सोने के नूपुर और घुघरू सजाये। वे ऐसे जान पडते थे मानो चरण-कमलो के मकरद की रक्षा के लिए पीली वर्दी वाले और घूमते रहने वाले पहरेदार नियुक्त किये गये है।

मुख=चन्द्र। **घुंघरू वाले नूपुर**=पहरेदार। **चरण**=कमल।

९८. नकवेसर के मोती का वर्णन।

जिसे समुद्र से निकाल लिया था उस मोती को अव साक्षात्, सचमुच ही, गुणमय वनता देखा। नाक के आगे झूलता हुआ वह मोती ऐसा जान पड़ता था मानो शुकदेव अपने मुख मे भागवत पुराण को धारण किये हुए हो।

नाक=शुक (सुग्गा), शुकदेव। **मुक्ताफल**=भागवत (मुक्ताफल वोपदेव कृत भागवत का सार है)।

टिप्पणी—**गुणमय**—(१) सुवर्ण सूत्र मे पिरोया हुआ (१) धन्य, कृतार्थ।

९९. पान-वीडे का वर्णन।

राजकुमारी का मुख मानो कमल था। उसमे दात पुष्प-केशर के समान शोभित थे, और तावूल मकरन्द के समान। वाये हाथ मे उसने एक और वीडा ले रखा था। वह ऐसा जान पडता था मानो सुग्गे का बच्चा चमेली पर खेल रहा हो।

मुख=कमल। **दंत**=केशर। **तांबूलरस**=मकरंद। **हाथ**=चमेली का फूल। **बीड़ा**=सुग्गे का वच्चा।

दूसरा अर्थ—बायें हाथ मे उसने एक और बीड़ा ले रखा था मानो बीड़ा-रूपी छोटा सुग्गा अपने सजातीय अर्थात् नासिका-रूपी दूसरे सुग्गे के साथ खेल रहा हो (नासिका को सुग्गे की उपमा दी जाती है)।

रुक्मिणी का देवी की पूजा के लिए जाना

१००. पगरखी का वर्णन।

रुक्मिणी ने शृङ्गार करके देवी के मदिर की ओर मन किया (जाने की इच्छा की)। उस समय हंस, पैरो की समता करने की स्पर्धा त्यागकर, मोतियो से जडी पगरखी के बहाने, उसके पैरों मे आ लगे।

पगरखी=हंस।

१०१. नीले चीर के भीतर उस अवला के अंग-अंग मे गहनों के अनेक रत्न जगमगा रहे थे। वे ऐसे जान पड़ते थे मानो प्रसन्न हुए कामदेव ने घर-घर मे दीप-माला जलायी हो।

अंग-अंग=घर-घर। **नग**=दीपक।

१०२ किसी सखी ने हाथ मे गुलाव-जल लिया, किसी ने कुकुम, किसी ने हाथ मे फूल और कपूर लिये, किसी ने पान लिये, किसी ने अरगजा ली और किसी सखी ने हाथ मे धुला हुआ वस्त्र लिया।

१०३. इस प्रकार वे सब पालकी तक चली। मेरी बुद्धि उसका वर्णन करने मे समर्थ नही। सखियो के समूह मे रुक्मिणी ऐसी दिखायी पड़ती थी जैसे लज्जा से घिरा हुआ शील हो। (लाज-सू=लज्जा से)

सखी-समूह=लाज। **रुक्मिणी**=शील।

अन्यार्थ—सखियो के समूह मे रुक्मिणी ऐसी दिखायी पडती थी मानो शील से घिरी हुई लज्जा हो। (सू=क्या. मानो, गुज०—शु)

१०४. जिनको साथ चलने की आज्ञा थी वे सुभट घोडे, लगामे और जीन के तंग लेकर तथा घोडो पर चढ़-चढकर आ पहुँचे। कवचो मे गरकाव वे सुभट ऐसे दीख पडते थे मानो दर्पणो मे मग्न प्रतिबिंब हो।

अन्यार्थ—(१) **लाग**=तग। **ताकि**=ताले। तालो की भाँति तगों को मजबूत कसकर। (२) **लाग**=उपयुक्त। **ताकि**=देख-भालकर। **तिम**=वैसे ही, और।

कवच=दर्पण। **सुभट**=प्रतिबिंब।

१०५. पैदल और हाथियो का वर्णन।

पद्मिनी के रखवाले पैदल सेवक जल्दी-जल्दी चले और साथ मे चले पहाड़ो के समान शरीर वाले, सर्पो की-सी चाल वाले, मद बहाते हुए, दाँये-बाँये गमगमाते हुए, और मस्तानी चाल से चलते हुए हाथी।

हाथी=पहाड़ (शरीर मे), सर्प (चाल में)।

१०६. घोडो और रथों का वर्णन ।

चन्द्रमुखी रुक्मिणी के मार्ग को लक्ष्य कर घोडे और रथ भी चले । घोडे वडे वेग से चल रहे थे और ऐसे वेग से चल रहे थे कि वे आकाश मे चलते दिखायी पडते थे । यह दृश्य ऐसा जान पडता था मानो श्रीराम के वैकुठ को प्रयाण करते समय अयोध्यापुरी के निवासी सरयू में स्नान करके विमानो पर बैठे वैकुठ को जा रहे हो ।

रथी=अयोध्यावासी । **रथ**=विमान ।

१०७. (पारस पत्थर के वने) मंदिर के चारो ओर वह सेना ऐसी दिखायी पडती थी मानो चद्रमा के चारो ओर जलहरी हो, अथवा सुमेरु के चारों ओर नक्षत्रो की माला हो, अथवा महादेव ने गले मे मुड-माला धारण की हो ।

मंदिर=(१) चंद्रमा (२) सुमेरु (३) महादेव ।

सेना=(१) जलहरी (२) नक्षत्रमाला (३) मुड-माला ।

१०८ रुक्मिणी ने देवी के मदिर मे प्रवेश करके विशेप आदरभाव और प्रेम के साथ तथा विशेप प्रसन्नता के साथ अविका के दर्शन किये । और फिर अपने हाथो से देवी की पूजा करके मन-वाछित फल को हस्तगत किया ।

रुक्मिणी-हरण

१०९. पूजा करने के पश्चात् सुदर राजकुमारी मदिर के द्वार पर आयी । वहा उसने अपनी चितवन, अपने हास, अपने लास, अपनी गति और अपने अग-सकोच के रूप मे आकर्षण, वशीकरण, उन्मादन, द्रावण और शोपण—काम के ये पाच वाण धारण करके उनका विस्तार किया । चितवन के द्वारा मन को खीच लिया, हास के द्वारा उसे वश मे कर लिया, अग मोड़कर उसे उन्मत्त वना दिया, गति दिखलाकर उसे पिघला दिया—शिथिल वना दिया—और अग सिकोड़कर उसकी शक्ति को सोख लिया ।

११०. इस प्रकार रुक्मिणी को देखने पर सेना का मन गतिहीन (व्यापारहीन) हो गया, उसे चेत नही रह गया और सारी सेना मूर्च्छित हो गयी । सेना के मूर्च्छित हुए सुभट ऐसे दिखायी पड़ते थे मानो पत्थर की मूर्त्तिया हो, जव मदिर वनाया गया था तव ये पत्थर की मूर्त्तियां भी मानो वना दी गयी थी ।

१११ उसी समय तीनो लोको के स्वामी श्रीकृष्ण घोडो को चलाकर शत्रु-सेना के भीतर आ पहुँचे—पता नही चला कि पृथ्वी पर चलकर आये या आकाश-मार्ग से आये । आते हुए रथ की आवाज सुनायी पडी कि तुरत-ही रथ भी दिखायी पडा ।

११२ रुक्मिणी का हरण ।

वलि को वाधने वाले समर्थ भगवान ने रुक्मिणी के हाथ को अपने हाथ से

पकड़ कर उसे लेकर रथ में बैठा दिया। और पुकारकर कहा—सहायता के लिए चढ़ो, चढो ! क्या रुक्मिणी का कोई वर (वरने का इच्छुक) यहाँ है ? कृष्ण मृगनयनी रुक्मिणी को हरकर लिये जाता है।

अन्यार्थ—तब साथ के लोगो ने (सखियो आदि ने) पुकार की—चढो ! चढो ! कृष्ण रुक्मिणी को हरकर लिये जाता है।

११३ शिशुपाल के सुभटो का तय्यार होना।

शिशुपाल के सरदार मगल-गीतो को सुन रहे थे। जब उनने यह पुकार सुनी तो वे उतावली के साथ तय्यार हुए। उनने शरीर मे विवाह के उपयुक्त मागलिक केशरी रग के वस्त्रो के स्थान पर युद्ध के उपयुक्त कवच पहनकर वेश-परिवर्तन कर लिया जैसे बहुरूपिया वेश बदला करता है।

आलूदा इ०—अन्यार्थ=अलबेले और मौजी सरदारो ने केशरिया वस्त्रो के स्थान में कवच पहनकर वेश-परिवर्त्तन किया।

११४ सरदारो के घोडे श्रेणी बांधे कृष्ण का पीछा कर रहे थे। उनका वेग इतना अधिक था कि वे चित्र मे लिखे-से अर्थात् अचल-से जान पडते थे। वे वीर सुभट वीर-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण को ललकार रहे थे—हे माधव ! यह माखन की चोरी नही है; हे ग्वाले ! रुक्मिणी गोपी नही है।

११५. सेना के चलने से धूल उठी। उसमे ढका हुआ सूर्य ऐसा दिखायी पडता था मानो वात्याचक्र (बगुले) के ऊपर कोई पत्ता रखा हो। दौडते हुए घोडो के नथुने ऐसे बज रहे थे कि नव्वे हजार नगारो के शब्द भी नही सुनायी पड़ते थे।

पाठान्तर—सद नोहस नीसाण न सुणिजइ=नगाड़ो के बजने का शब्द नही सुनायी पड़ता था।

११६. दोनो सेनाएं दूर-दूर थी। घोड़ो को दौड़ाकर उनको नजदीक किया। दोनों सेनाओ की परस्पर देखादेखी हुई। पीछा करने वालों ने घोडो की लगामे ढीली की और भागने वाले आक्रमण-कारियो ने मुह मोड़ा—वे मुह मोडकर सामने हुए।

युद्ध-वर्णन

११७. युद्ध का वर्षा के साथ साग रूपक। सेनाओं का जुड़ना।

दोनो सेनाए काल-रूप धारण कर और कठोर होकर आमने-सामने डट गयी मानो वर्षा-काल मे बादलो की दो घटाए काला रूप धारण कर और गहरी होकर आमने-सामने खड़ी हो। वर्षा के पूर्व जैसे वर्षा के आसार देखकर वर्षा की जोगने आ पहुँचती है वैसे ही युद्ध के आसार देखकर रक्त पीने की इच्छा वाली योगिनियाँ युद्ध-भूमि मे आ पहुँची। जैसे दुहरी चलती हुई घटाए जल बरसाने को उद्यत होती है वैसे ही दुहरी चलती हुई दोनो सेनाए रक्त बरसाने को उद्यत थी। जब

घटाएं दुहरी चलती है तो अवश्य ही जल वरसता है, वैसे ही जब ये सेनाएं दुहरी चल रही है तो रक्त अवश्य ही वरसेगा (यह जानकर योगिनियाँ आ पहुँची)।

सेनाएं=घटाए। **योगिनियां**=वर्षा की जोगने। **रत**=जल।

११८ दूर से फेके जाने वाले अस्त्रो का युद्ध।

हाथियो पर चलने वाली तोपे, हवाई वाण और कुहुक वाणो का आघात (अथवा शोर) होने लगा। आकाश को गुँजा देने वाला वीरो का हल्ला हुआ। कवचो के लोहे पर—लोहे के वने कवचो पर—लोहे के वाण गिरने लगे जैसे समुद्र के जल मे वर्षा की जल-धाराएँ गिरती हो।

अन्यार्थ—गयगहण—हाथियो की भीड हुई।

११६ भालो और तलवारो का युद्ध।

दोनो सेनाओ के निकट आने पर वाणो का चलना वद हो गया, वीरो के हाथो मे भाले चमचमाने लगे और युद्ध-भूमि संतप्त हो उठी जैसे वर्षा-काल मे वर्षा के पूर्व उमस होने से पवन का चलना वंद हो जाता है, सूर्य की किरणे जल उठती है और भूमि जलने लगती है। भालो के साथ तलवारे भी चलने लगीं। धड-धड पर तलवार की चमकती हुई धार इस प्रकार गिरती थी जैसे वर्षाकाल मे पर्वतो के शिखर-शिखर पर विजली चमकती है।

अन्यार्थ—जैसे वर्षाकाल मे वादलो के शिखरो पर विजलियां चमकती है।

पाठान्तर—धवकि=धव-धव चमकती है, चमचमाती हुई गिरती है।

१२० कायरो का कापना और वीरो के लडने के फलस्वरूप रक्त का वहना।

नगाडो की गडगडाहट होने पर कायरो के हृदय काप उठे जैसे वादलो के गरजने पर प्रजा के अशुभचिन्तक व्यापारियो के हृदय कॉप उठते है। पर वीरो का हृदय लड़ने को उत्साहित हुआ। शस्त्रो की चमचमाती धारो से उमड़ा हुआ लोहू नाडियो से गिरने लगा जैसे वर्षाकाल मे उज्ज्वल जल-धाराओ से उमडा हुआ जल पनालो से गिरता है।

अशुभचिन्तक—व्यापारी आदि जो वर्षा का होना नही चाहते, अकाल होने से वे सचित अन्न आदि को मँहगे भाव से वेचकर खूब नफा कमाते है; वे मनाते है कि वर्षा न हो, इस प्रकार वे प्रजा के अशुभ की चिन्तना करते है।

नगारो की गड़गड़ाहट=मेघ-गर्जना। **कायर**=प्रजा के अशुभ-चिन्तक। **तलवारो की धारें**=मेघो की जल-धाराए। **लोहू**=जल। **नाड़ियां**=पनाले।

१२१. युद्ध मे चौसठो योगिनिया आनन्द मे भरकर कूद रही थी, माथे कटकर गिर रहे थे, और विना माथो के कवध उठ-उठकर लड रहे थे, जैसे वर्षाकाल मे योगिनिया नाचती है, ध्रुव नक्षत्र अदृश्य हो जाता हे और विना माथे का केतु दिखायी पडता है। श्रीकृष्ण और शिशुपाल ने शस्त्र वरसाकर

शस्त्रो की गहरी झडी लगा दी जैसे वर्षाकाल मे बादल जल बरसाकर जल की गहरी झडी लगा देते है।

युद्ध=नृत्य । **योगिनियां**=वर्षा की जोगने । **मुंड**=ध्रुव । **रुंड**=केतु । **अनंत और शिशुपाल**=बादल । **शस्त्रवर्षा**=जलवर्षा । **शस्त्रों की झड़ी**=जल की झड़ी ।

१२२. उस शस्त्र-वर्षा से युद्ध भूमि में लोहू बह चला जैसे वर्षाकाल मे जल-वर्षा से भूमि पर जल की नदी बह चलती है। अनेक वीरो के हाथों से अनेक वीर गिर रहे थे। उस लोहू की नदी मे योगिनियो के उलटे खप्पर ऐसे बहे जा रहे थे जैसे वर्षा-काल मे जल की नदी मे बुलबुले बहे जा रहे हो।

युद्धभूमि=भूमि । **रुधिर**=जल । **उलटे खप्पर**=बुलबुले ।

१२३ तब बलराम ने अपने साथियो को ललकारा (प्रेरित किया) कि शत्रु का साथ अभी तक अखडित है। युद्ध-रूपी वर्षा होने पर हल चलाने का यही (उपयुक्त) समय है। अब जो जल्दी-जल्दी हाथ चलावेगा वही जीतेगा, जैसे वर्षा हो जाने पर जो किसान जल्दी-जल्दी हल चलाकर खेत को जोत डालता है वही सफल होता है (आलस्य करने वाले को सफलता नही मिलती) ।

शत्रु की सेना=खेत की भूमि । **शस्त्र-वर्षा**=जल-वर्षा । **बलराम का हल**=किसान का हल ।

अन्यार्थ—तब कृष्ण ने अपने साथी (सहायक) बलराम को पुकारा और कहा ।

१२४. जैसे किसान खेत मे दूसरी बार हल चलाकर बीज बोता है वैसे ही बलराम युद्धभूमि मे दूसरी बार हल चलाकर शत्रुओ को हलाहल विष से भी खारे लगने वाले यश-रूपी बीज बोने लगे जब। हलधारी बलराम का हल चलने लगा तो शत्रुओ के कधो के मूल टूटने लगे जैसे वर्षाकाल मे हलधर किसान के हल चलते समय जमीन के भीतर की जडे टूटती है।

बलराम=किसान । **हल**=हल । **यश**=बीज । **कंधमूल**=जडे ।

१२५. प्रत्येक शरीर मे अनेक घाव हो गये। प्रत्येक घाव से बहुत रक्त बहने लगा। घावो से रक्त के बहुत ऊँचे फुहारे चलने लगे। ऐसा जान पड़ता था मानो युद्ध-भूमि मे मूगो की फसल पैदा हुई है और लाल-लाल कावे निकल रही है। और जो शत्रुओं के प्राण निकल रहे हैं वे ही सचमुच दानो की बाले निकल रही हैं।

रक्तमय घावो वाले शरीर=मूगो की फसल । **रक्त के फुहारे**=मूगो के पौधों की कावे । **प्राण**=धान की बाले ।

१२५ (क) जो महाबली बलराम थे उनने अपनी भुजाओ के बल से

युद्धभूमि मे अनोखी भाँति से प्रहार किये । वलराम ने तलवारो के द्वारा काट-काटकर युद्धभूमि मे सिरो के ढेर लगा दिये जैसे किसान हँसुओ के द्वारा काट-काटकर खेत की भूमि मे वालो के ढेर लगा देता है ।

वलराम=किसान । **युद्धभूमि**=खेत की भूमि । **सिर**=सिरटे, वाले ।

१२५ (ख). वालो को काटने के पश्चात् किसान खलिहान मे उनका ढेर लगा देता है और चारो ओर मेड बनाकर तथा वीच मे एक खभा खडा करके उनको पैरो से कुचलता है और फिर बैलो को उन पर फिराकर उनके पैरो से अच्छी तरह कुचलवा डालता है । इसी प्रकार वलराम ने युद्धभूमि मे शत्रुओ का ढेर लगा दिया और अपने चरण को स्तम्भ के समान दृढ (अचल) वनाकर—अविचलित भाव से युद्ध करके—शत्रुओ को कुचल डाला और फिर घोडो पर चढकर और उनको चारो ओर फिराकर सहार मचा दिया और उनके पैरो से शत्रुओ को भली-भाँति कुचलवा दिया ।

१२६ जैसे किसान के खलिहान मे, गाहटे हुए अन्न के ढेर पर, चिडिया आकर वैठ जाय और कुछ दाने खा डाले और कुछ को कुतर डाले और कुछ को खीच-खीचकर विखेर दे वैसे ही वलराम-रूपी किसान के रणभूमिरूपी खलिहान मे शत्रु-रूपी अन्न के गाहटे हुए ढेर पर गीधनियाँ-रूपी चिडियाए आ वैठी जो मास रूपी चारा खाने लगी, उनने कुछेक शत्रुओ को खा डाला और कुछ को टुकडे-टुकडे कर दिया और बाकी को खीच-खीचकर विखरा दिया ।

अन्यार्थ—जैसे किसान कुछ अन्न को ले लेता है और कुछ को कण-कण कर देता है वैसे ही वलराम ने कुछ शत्रुओ को मार डाला और कुछ को तितर-वितर कर दिया । जैसे किसान (के वैल) अन्न से भरे गाड़े खीचकर ले जाते है वैसे ही वलराम ने भिडकर शत्रु-समूह को विध्वस्त कर दिया । जैसे किसान के खलिहान मे अन्न-कण रूपी चारे पर चिडियाएं आ वैठती है वैसे ही वलराम के युद्धभूमि-रूपी खलिहान मे शत्रुओ के मास पर गीधनिया आ वैठी ।

१२७ 'धरती भलाभली है'—यह कहावत सत्य है । तभी तो वलराम ने बरावरी वाले शत्रुओ से, उनके विरुद्ध ढाल उठाकर, लोहा लिया और जरासध और शिशुपाल जैसे वलधारियो को युद्ध मे पराजित कर दिया ।

'धरती भलाभली है' या 'धरती वडावडी है'—यह कहावत है, जिसका अर्थ है पृथ्वी मे भले से अधिक भला—वडे से अधिक वडा—विद्यमान है । वड़े से-वड़े वीर को भी अपने से वडा वीर मिल ही जाता है ।

१२८ रुक्मकुमार कृष्ण के मार्ग को रोककर उन्हे ललकारता है ।

जव श्रीकृष्ण रुक्मिणी के साथ द्वारका को जा रहे थे तो रुक्मिणी का भाई रुक्मकुमार अकेला ही तिरछे मार्ग से आ पहुँचा, मार्ग को रोककर खड़ा हो

गया, और इस प्रकार गरजा—अरे अहीर ! इस वेचारी वाला को लेकर तू वहुत दूर चला आया है पर अव मै आ पहुँचा हूँ, ठहर जा।

१२६ रुक्मकुमार ने ज्योही ललकारा त्योही कृष्ण का मुख क्रोध से जल उठा। उनने धनुप को लेकर प्रत्यचा पर वाण चढाया और रुक्मकुमार के शस्त्रो को छिन्न-भिन्न करने के लिए वाण के पुंख भाग को मुट्ठी मे और नोक को दृष्टि मे वाध लिया—बाण के पिछले भाग को मुट्ठी से पकड लिया और अगले भाग पर दृष्टि जमाकर निशाना लगाया।

अन्यार्थ—(१) अपनी दृष्टि को वेलख (वाण के पिछले भाग) और अणी (वाण के अगले भाग) की सीध मे बॉधा—तीनो को एक सीध मे किया।

पाठान्तर—**द्रिढ**—वाण के पुख भाग को और अगले भाग को मुट्ठी से दृढ़ पकड लिया।

१३०. श्री कृष्ण ने अपने मन को संड़सी वना लिया और अपने शरीर को लुहार का वाया हाथ (जिससे वह सॅडसी को पकडता है)। जैसे लुहार के वॉये हाथ मे पकडी हुई सॅडसी अहरन पर रखते समय तप्त लोहे के सम्पर्क से जल उठती है और पास मे रखे शीतल जल मे डाल देने से शीतल हो जाती है, वैसे ही श्रीकृष्ण के शरीर मे स्थित उनका मन युद्धभूमि मे रुक्मकुमार को देखकर जल उठता था पर निकट वैठी रुक्मिणी को देखकर प्रसन्न—शीतल—हो जाता था।

कृष्ण का मन=सँडसी। **कृष्ण का शरीर**=लुहार का वाँया हाथ। **रणभूमि**=अहरन। **रुक्मकुमार**=तप्त लोहा। **रुक्मिणी**=जल।

१३१. सम्वन्ध (नाते) के लिहाज के कारण और रुक्मिणी की निकटता के कारण रुक्मकुमार को नही मारने का विचार कर श्रीकृष्ण ने यह अद्भुत कार्य किया कि रुक्मकुमार जो भी आयुध उठाता था उसे ही वे अपने आयुध द्वारा काट डालते थे।

१३२. तव श्रीकृष्ण ने सोने के नाम वाले अर्थात् रुक्मकुमार को आयुधो से रहित कर दिया और केश काटकर विद्रूप बना दिया। हरि ने हरिण-नयनी रुक्मिणी के हृदय (की वात) को जानकर उस रुक्मकुमार की शक्ति को छीनकर उसके प्राण छोड दिये।

अन्यार्थ—**छिणियइ**—उस रुक्मकुमार का, जो क्षण-जीवी ही था, जिसका जीवन क्षण भर ही वाकी रह गया था, जीव छोड़ दिया।

१३३ इतने मे पीछे से वड़े भाई वलराम आ पहुँचे। रुक्मकुमार की यह दशा देखकर वडे भाई ने व्यंग्य मे कृष्ण से यों कहा—हे छोटे भाई ! यह उचित काम किया ! दुष्ट को भली सजा दी ! जिसकी वहिन को अपने पास विठाया—व्याहा—उसे अच्छा दुष्टोचित दड दिया ! हे भले भाई ! यह वहुत अच्छा काम किया !

१३४. यह सुनकर कृष्ण लज्जित हुए, मुस्कराये, और उनने अपना मुख नीचा कर लिया। फिर एक तो बड़े भाई की आज्ञा पालने के उद्देश्य से और दूसरे मृगनयनी रुक्मिणी का मन रखने के उद्देश्य से कमलनयन भगवान रुक्म-कुमार पर प्रसन्न हुअे।

१३५. कार्य को करना, न करना और अन्यथा कर देना आदि सारी बातो मे समर्थ भगवान ने साले रुक्मकुमार के (पकडते और विद्रूप करते समय) जो हाथ लगायें थे वे ही हाथ उसके सिर पर रखे और इस प्रकार उसकी नवाजिश करके वहाँ से रवाना हो गये।

अन्यार्थ—रुक्मकुमार के सिर पर हाथ रखकर जो केश उतार लिये थे उनको फिर से लगा दिया।

द्वारका मे स्वागत

१३६. शत्रु-सेना को भी जीता और पद्मिनी को भी व्याहा। ये दो आनद एक साथ हुए। चलती हुई सेना मे वधाईदार लोग होड करते हुए आगे वढने लगे।

१३७. उधर द्वारका मे कृष्ण के जाने के पीछे चिंता छा गयी थी। द्वारका के लोग घर के कामो को भूल गये थे। घर-घर मे ग्रहो की दशा पूछी जा रही थी। सबको चिंता पडी हुई थी। सारे प्रजा-जन, मन को कृष्ण के मार्ग की ओर लगाये, ऊँचे स्थानो पर चढ़े हुए वाट देख रहे थे।

१३८ मार्ग देखते हुए लोगो ने तेजी से आते हुए पथिक देखे। अनिष्ट की आशका से देखने वालो के हृदय मे दुख की ज्वाला उठ खडी हुई। पर उनके हाथ मे हरी डाली देखकर (और उनको वधाईदार जानकर) द्वारका-निवासी कमलो के समान हरे-भरे हो गये।

१३९. वरात का आगमन सुनकर सारा नगर कृष्ण और रुक्मिणी को वधाने के लिए, उनका स्वागत करने के लिए, उद्यमशील हो गया। मानो पूर्णिमा के दिन पूर्णचद्र के दर्शन से समुद्र लहरें ले रहा हो।

१४४. पुरवासियो ने घर-घर मे वधाईदारो को दरिद्र का दरिद्र (दरिद्र का अभाव) पुरस्कार मे दिया। उत्सव हुए और अक्षत, हरी दूव, केशर तथा हल्दी आदि मागलिक पदार्थ वरसाये गये।

१४१ एक मार्ग से स्त्रिया और दूसरे मार्ग से पुरुष अत्यन्त उत्साह करके—वडे उत्साह के साथ—श्रीकृष्ण की अगवानी को चले। मानो श्रीकृष्ण को अकवार देने के लिए नगर ने स्त्रियो और पुरुषो की दो पक्तियो के रूप मे अपनी दोनो भुजाएँ फैलायी थी।

१४२. भीड के साथ जो अनेक छत्र थे उनसे आकाश ऐसा छा गया मानो अनेक रगो के वादल आ पहुँचे हो। छत्रो के सोने के वने दंड विजली के समान

चमकते थे। उनकी झालरों से मोती झड रहे थे जैसे वादलो से वर्षा की बूदे गिरती हो।

छत्र=वादल। **छत्र-दंड**=विद्युत्-रेखाएं। **मोती**=जल-विदु।

१४३ नगर के मार्गो मे अनेक द्वार वनाये गये थे। वे द्वार दर्पणो मे जडे थे। द्वारों से सजे मार्ग सुन्दर रंग वाले अवीर से भरे थे। कृष्ण की सेना नगर मे ऐसे प्रविष्ट हुई जैसे नदी समुद्र मे प्रवेश करती है।

१४४ ऊँचे प्रासादो पर चढी नगर की स्त्रिया यश से उज्ज्वल वर श्रीकृष्ण को वधू-सहित देखकर मंगल-गीत गाने लगी और सेना तथा वलराम के सहित सकुशल लौट आये श्रीकृष्ण पर पुष्पो की वर्षा होने लगी।

अन्यार्थ—श्रीकृष्ण के ऊपर किशलयो से और दलो से युक्त घने पुष्पो की वर्षा होने लगी।

१४५ शिशुपाल को जीतकर और जरासंध को जीतकर घर आया है यह कहकर वसुदेव और देवकी श्रीकृष्ण की आरती उतारते है और वारवार उनका मुख देखकर जल वार कर अपने को वारते है।

१४६. राज-महल के निवासियो ने वाजे वजाकर विधि-पूर्वक श्रीकृष्ण को वधाया—उनका स्वागत-सत्कार किया। सव लोगो के भिन्न-भिन्न मुखो मे एक ही वात थी। रानियो ने रुक्मिणी को महलो मे ठहरा दिया और राजा कृष्ण की सेवा करने लगी।

अन्यार्थ—राज-रानी रुक्मिणी को महल मे ठहराकर लोग राजा कृष्ण की सेवा करने लगे।

कृष्ण-रुकमणी-विवाह

१४७. वसुदेव और देवकी ने ज्योतिपियो को वुलाकर सर्वप्रथम यह प्रश्न पूछा—रुक्मिणी को कृष्ण कव व्याहे? ज्योतिप के ग्रथ देखकर मुहूर्त्त वताओ।

१४८ वेदो के वेत्ता ज्योतिपी वेदोक्त धर्म को विचार कर मन मे डरते हुए कहने लगे—एक ही वधू के साथ वारवार पाणिग्रहण कैसे हो? (पाणिग्रहण पहले ही हो चुका है)।

१४९ भूत, भविप्यत् और वर्तमान इन तीनो कालो को प्रत्यक्ष देखने वाले ज्योतिषी तत्काल सव वाते विचार कर और निर्णय करके कहने लगे—सव दोपो से रहित लग्न उस समय था जव रुक्मिणी का हरण हुआ था।

१५० ब्राह्मणो ने परस्पर परामर्श करके वसुदेव-देवकी से यों कहा—हरण होने के समय हथलेवा (पाणिग्रहण) तो हो गया, अव बाकी सारे संस्कार किये जायें।

१५१. विवाह का वर्णन।

वेदों की मूर्ति रूप ब्राह्मण आये। रत्नों की वेदिका वनायी गयी। गीले

वांस और सोने के कलसो की वेदी बनायी गयी। अरणी के काष्ठों से अग्नि प्रज्वलित की गयी। अगर की समिधा लगयी गयी। घी और कपूर की निरन्तर आहुति दी जाने लगी।

१५२ मधुपर्क आदि से संस्कार किये हुए वधू और वर दोनो वहा बैठा दिये गये। उनकी पीठ पश्चिम दिशा की ओर तथा मुख पूर्व दिशा की ओर रखे गये। और उनके ऊपर छत्र स्थापित किया गया।

१५३ सव (स्त्रियो) की आखे कृष्ण के मुख पर लगी हुई थी मानो समुद्र के भीतर चद्रमा (के प्रतिबिब) को मछलियो ने घेर लिया हो। आगन मे और ऊँचे स्थानो (अटारियो) पर चढी हुई नारियां श्रीकृष्ण के मुख को देखती थी और मगल-कृत्य करके मुख से गीत गाती थी।

कृष्ण का मुख=चद्रमा। **आंखे**=मछलिया।

१५४ पाणिग्रहण (हथलेवा) और भावरो का वर्णन।

वधू आगे और वर पीछे—इस प्रकार तीन भावरे लेकर चौथी भावर मे वर आगे हुआ। इस प्रकार उन वर-वधू ने चार भावरे ली। उस समय वर ने वधू का अगूठे सहित हाथ अपने हाथ से ग्रहण किया मानो हाथी ने कमल को अपनी सूड से पकडा।

वर=हाथी। **वर का हाथ**=हाथी की सूड। **वधू का हाथ**=कमल।

१५५ वर-वधू की प्रतिज्ञाओ का वर्णन।

वर और वधू से आपस मे विधिपूर्वक प्रतिज्ञाए पढवाकर वधू को बायी ओर बिठाया गया। इस प्रकार लोगो ने मुहमागी वेला पायी और वेद-पाठको ने नवो निधिया पायी।

कृष्ण-रुक्मिणी-मिलन

१५६ वर-वधू का शयनागार मे जाने का वर्णन।

विवाह के पश्चात् वर और वधू वेदी से नीचे उतर आये, हथलेवा छूट गया (वर ने वधू के पकडे हुए हाथ को छोड दिया) और सखियो ने दोनो के अचलो को बाध दिया मानो अंचलो को नही किन्तु दोनो के मनो को बाध दिया था। फिर आगे वर और पीछे वधू इस प्रकार होकर दोनो शयनागार की ओर चले।

१५७ शय्या बिछाने का वर्णन।

सखियो ने क्रीडा-भवन मे पहले से ही जाकर हाथो से आगन की सफाई की और फिर वहाँ शय्या के बहाने क्षीरसागर को सजाकर फूलो के बहाने उसकी फेन-राशि को सजा दिया—वहाँ उजली शय्या बिछा दी जो क्षीरसागर के समान जान पड़ती थी और उस पर फूल सजा दिये जो फेन-राशि के समान दिखायी पडते थे।

शय्या=क्षीरसमुद्र। **पुष्प**=फेन।

१५८. शय्या का वर्णन।

उस श्रेष्ठ महल मे सखियों ने शय्या के ऊपर चांदनी तान कर उसमे विविध रंगो के मणियो के दीपक सजा दिये जिनसे एक विचित्र शोभा हो रही थी। मणि-दीपको से युक्त चांदनी ऐसी जान पडती थी मानो शेपनाग चादनी के वहाने अपने हजारो-ही फनो को फैलाये हुए है (भगवान विष्णु जव शेप की शय्या पर शयन करते है तो शेष नाग फणो को फैलाकर ऊपर छाया करता है)।

मणि-दीपकों वाली चांदनी=छत्राकार शेषनाग के फणो का समूह (नाग के फण मे मणि होती है ऐसा काव्य मे प्रसिद्ध है)।

१५६. विवाह की रीतियो के हो जाने पर सखियो ने वर-वधू को अलग-अलग महलों मे कर दिया।

वर और वधू की विवाह-सम्वन्धी विधियो के किये जा चुकने पर, सुन्दरी रुक्मिणी की रति-सबधी विधि को संपन्न करने के लिए, चारो ओर एकत्र हुई उन निराली सखियो ने दोनो को अलग-अलग महलो मे कर दिया—थोडी देर के वाद ही मिलने के लिए (सखिया, थोड़ी देर के लिए, रुक्मिणी को शृगार करने के निमित्त, दूसरे महल मे ले गयी)।

अन्यार्थ—कृष्ण को मदिर के भीतर बिठा दिया थोडी देर वाद रुक्मिणी से मिलाने के लिए।

१६० संध्या के समय, जव रुक्मिणी के प्रिय श्रीकृष्ण रति की इच्छा कर रहे थे, इतनी वस्तुएं एक ही साथ सकुचित हो गयी—पथिको की पत्नियो की आंखे, पक्षियो की पाखे, कमलों की पखुडियाँ और सूर्य की किरणे।

प्रवासी पथिको की पत्नियाँ उनकी प्रतीक्षा मे दिन भर आखे फाडे हुए मार्ग देख रही थी, अव अधकार के कारण उन आँखो का देखना वंद हो गया। पक्षी दिन भर उड़ रहे थे जिससे उनकी पांखे फैली हुई थी, अब पक्षियो का उडना दंद हो गया और उनकी पांखे सकुचित हो गयी। कमलो की पखुडियाँ दिन भर खुली थी, अव वे बद हो गयी। सूर्य की किरणे दिन भर फैली हुई, थीं अव वे सिकुड़ गयी।

१६१. पति श्रीकृष्ण अपनी प्रिया के मुख को देखने को आतुर हो रहे थे। उनको रात्रि का मुख अर्थात् संध्याकाल बड़ी कठिनता से दिखायी पडा—वडी कठिनता से संध्या हुई। उस संध्याकाल मे इतनी वस्तुएं विस्तृत हो गयी—चन्द्रमा की किरणे, कुलटा स्त्रियाँ, राक्षस और अभिसारिकाओ की आंखे।

चन्द्रमा की किरणे अभी तक संकुचित थी, अब फैल गयी। परपुरुप से प्रेम करने वाली स्त्रियाँ अभी तक घरो में वंद थी, अव अपने प्रेमियो से मिलने को निकल पडी। राक्षस लोग दिन भर छिपे थे, अव निकल आये और फिरने लगे।

अभिसारिकाए अपने प्रेमियो से मिलने अधकार के कारण आँखे फाड कर चल रही थी।

१६२. रात्रि के आने पर—इस सध्याकाल मे—रात और दिन यो मिले कि दूसरे पक्षी बँध गये— अपनी प्रेमिकाओ से मिल गये—पर चकवे अपनी प्रेमिकाओ से अलग हो गये। लोगो ने घरो मे दीपक जलाये मानो कामाग्नि ने दीपको के बहाने कामीजनो के—कामियो और कामिनियो के— मनो को जला दिया (ये जलते दीपक नही है किंतु जलते हुए कामी-जनो के मन है)।

पाठान्तर— कामिणि-कामि-तणी कामागनि इ०=मानो कामियो और कामिनियो की कामाग्नि ने दीपको के बहाने उनके मनो को जला दिया।

अन्यार्थ=जलाये हुये दीपको के बहाने मन मे कामियो और कामिनियो की कामाग्नि जल रही है।

१६३ सारी सखियो से प्रशसा की जाती हुई और कृत-कृत्य (सफल-मनोरथ) हुई रुक्मिणी प्रिय से मिलने के निमित्त द्वार के आगे खडी थी। उधर कृष्ण प्रत्येक आहट पर कान दिये हुए, और शय्या तथा द्वार के बीच मे फिरते हुए—आतुरता के कारण शय्या से द्वार तक और द्वार से शय्या तक आते-जाते हुए—महल के भीतर स्थित थे।

१६४ रुक्मिणी के सुगधित द्रव्यो की सुगधि ने और नूपुरो के शब्द ने, बधाईदारो की भाँति, पहले ही भीतर जाकर आतुर हुए कृष्ण से हस के समान चाल वाली रुक्मिणी का आगमन कह दिया।

१६५. हाथी के समान चाल वाली और मद बहाती हुई राजकुमारी को सखिया उस हाथी के समान पकडे हुए लायी जिसके पैरो मे लगर बँधा हुआ हो। जैसे हाथी के पैर मे लगर बँधा हो वैसे ही रुक्मिणी के पैरो को लज्जा बाँधे हुए थी। लगर के कारण हाथी धीरे-धीरे चल पाता है वैसे ही लज्जा के कारण राजकुमारी धीरे-धीरे चलती थी, लज्जा उसे चलने से रोक रही थी। वह सखी का हाथ पकडकर किसी प्रकार चलती थी पर पग-पग पर रुक जाती थी।

१६६ कृष्ण ने ज्यो-ही राजकुमारी को देहरी मे प्रवेश करते हुए देखा त्यो ही उनके मन मे कोई (अवर्णनीय) अपार आनद उत्पन्न हुआ। उस आनद ने स्वत कृष्ण के रोमो को खडा कर दिया मानो इस प्रकार उसने कृष्ण के द्वारा रुक्मिणी का स्वागत स्वत करवा दिया (जब कोई आदरणीय या प्रिय व्यक्ति आता है तो खडे होकर उसका स्वागत किया जाता है, यहाँ मानो कृष्ण के रोम खडे नही हुए किन्तु स्वय कृष्ण स्वागत करने को खडे हुए)।

१६७. जिसकी बहुत इच्छा थी वह अभीष्ट घडी बहुत दिनो के बाद घर मे ही प्राप्त हो गयी। कृष्ण ने प्रिया को आलिगन देकर स्वय शय्या पर बिठाया।

१६८. यद्यपि रुक्मिणी जैसी सुन्दरी को पाकर कृष्ण का मन सन्तुष्ट हो गया था पर उनके नेत्र, जिनको रुक्मिणी का रूप उसे निरन्तर देखते रहने के लिए प्रेरित कर रहा था, उस रूप को देख-देख कर सन्तुष्ट ही नही होते थे—उसे और देखने की इच्छा वनी ही रहती थी। वे प्रिया के मुख को वारवार देखते थे जैसे दरिद्र नव-प्राप्त धन को वार-वार देखता है।

श्रीकृष्ण=दरिद्र व्यक्ति। **प्रिया-मुख**--नवप्राप्त धन।

१६९ रुक्मिणी घूघट-पट के भीतर से वार-वार तिरछी चितवन से देखती थी--घूघट के भीतर रुक्मिणी के नेत्रो के कटाक्ष वार-वार आते-जाते थे। मानो कृष्ण और रुक्मिणी रूपी दपति के मन पति-पत्नी थे जो अभी तक मिले नही थे, और रुक्मिणी की तिरछी चितवन दूती थी, जो दोनो को मिलाने और एक करने के लिए वारवार एक से दूसरे के पास जा और आ रही थी; अथवा मानो दंपति के मन सूत थे और रुक्मिणी की चितवन सूत बुनने की नली थी, जो इन अनमिले सूतो को मिलाने और एक करने के लिए इधर से उधर और उधर से इधर जा और आ रही थी।

अन्वयार्थ—दंपती—रुक्मिणी और कृष्ण—दोनो के कटाक्ष आते-जाते है, दोनो एक दूसरे की ओर कटाक्ष-पात कर रहे है।

कटाक्ष—दूती, और नली। **दंपति के मन**=दो प्रेमी; दो सूत (कृष्ण का मन ताना, रुक्मिणी का मन वाना जो नली के साथ वँधा हुआ होता है)।

१७०. सखिया घर से वाहर चली गयी।

जव वर और वधू के नेत्रो तथा उनके मुखो की चेष्टाओ से सखियो ने उनके हृदय के अभिप्राय को जान लिया तव वे भौहो मे हँसती हुई एक-एक करके क्रीड़ा-भवन के वाहर चली गयी।

१७१. एकान्त मे करने योग्य रति-क्रीडा के व्यापार को किसी देवता या ऋषि ने भी (जो अदृश्य वस्तुओ को भी देखने की अलौकिक शक्ति रखते है) नही देखा। जिसे किसी ने देखा या सुन नही पाया उसका वर्णन कैसे किया जाय? उसके सुख को जाननेवाले वे दपति ही है—उसके सुख को वे दपति ही जानते हे।

१७२. सुरतान्त का वर्णन।

प्रिय ने पवन की इच्छा की, पवन लेने के लिए वे महल के छज्जे पर जा खडे हुए। प्रिया वहा शय्या पर पडी थी। रति-क्रीड़ा के अन्त मे उसकी ऐसी शोभा थी, मानो हाथी के क्रीडा करने से म्लान दशा को प्राप्त कमलिनी सरोवर में पडी हो।

पति पवन प्रारथित—अन्यार्थ—पति पवन कर रहे थे, पत्या वात-करणेन दत्त-सुखोपाया (सस्कृत टीका)।

१७३. स्वेद-कणो का वर्णन।

रुक्मिणी के ललाट पर कुकुम की विंदी और उसके चारो ओर पसीने की

बूंदे शोभित थी। ऐसा जान पडता था मानो कामदेव-रूपी चतुर कारीगर ने कुन्दन पर, माणिक को मध्य मे रखकर, हीरे जड दिये है।

सोने के-से रंग का रुक्मिणी का ललाट=कुदन। लाल कुंकुम-बिन्दु=माणिक मणि। उज्ज्वल प्रस्वेद-कण=हीरे। कामदेव=कारीगर, सुनार।

१७३ (क). प्रिया के मुख पर पीलापन छा गया था, और चित्त मे व्याकुलता तथा हृदय मे धुकधुकी तथा खिन्नता हो रही थी। आखों पर घूघट डाल लिया था। पैरो मे नूपुरो की ध्वनि और कंठ मे कूजन बद हो गये। इस प्रकार वह सर्वथा निश्चल होकर पडी थी।

१७४. उस समय रुक्मिणी सखी के गले मे लिपटकर खडी हुई। जैसे भ्रमर के भार से पृथ्वी पर पडी हुई लता केली का सहारा पाकर, उसके चारो ओर बहुत बल डालकर, खडी होती है।

रुक्मिणी=लता। सखी=केली का झाड।

१७५. सखियो ने लज्जा, भय और प्रीति मे युक्त उस प्रिया को प्राणो के पति प्रियतम के पास फिर पहुँचा दिया। उसके केश खुल गये थे, मोतियो की माला टूट गयी थी, कचुकी के बधन खुल गये थे, और करधनी भी खुल रही थी।

१७६ जब कृष्ण ने रुक्मिणी के साथ क्रीडा का सुख प्राप्त किया उस समय रगमहल के प्रत्येक चौक पर वहा एकत्र हुई मन रखने वाली सखियो के समूह मे विविध प्रकार की हास-विनोद की बाते होने लगी।

१७७. रात्रि-जागरण का वर्णन।

इस निशीथ-काल मे, जब सारा जगत् निद्रा-वश होता रहा है, योगियो और कामियो का जागरण होता है—ये दोनो ही वर्ग जागते है। योगी पर्वतो की गुफाओ मे तत्त्व-चिंतन मे अनुरक्त रहते है और कामी घरो मे रति-क्रीडा के चिंतन मे रत।

१७८. रात के बीतने और मुर्गे के बोलने का वर्णन।

हर्ष मे अत्यन्त मग्न क्रीडा-प्रिय लक्ष्मीपति कृष्ण को रात्रि के बीतते समय मुर्गे की पुकार ऐसी अप्रिय लगी जैसा जीवन से मोह रखने वाले व्यक्ति को आयु के बीतते समय घडियाल का घंटा अप्रिय लगता है।

क्रीड़ाप्रिय कृष्ण=जीवनप्रिय व्यक्ति। रात्रि=आयु। मुर्गे की पुकार= घडियाल का घटा।

अन्यार्थ—(१) हर्षमग्न कृष्ण को बीतती हुई रात ऐसी लगी जैसी समाप्त होती हुई आयु (जीवन); क्रीड़ा-प्रिय कृष्ण को मुर्गे की पुकार ऐसी लगी जैसा जीवन से मोह रखने वाले को घडी का बजता हुआ घटा लगता है। (२) कृष्ण को बीतती रात ऐसी लगी जैसी समाप्त होती हुई आयु लगती है, अथवा

जैसी किसी विलासी व्यक्ति को मुर्गे की पुकार लगती है, अथवा जैसा किसी जीवन-प्रेमी व्यक्ति को घडियाल का घंटा लगता है।

प्रभात-वर्णन

१७९. चंद्रमा फीका पड़ गया और दीपक की ज्योति मंद हो गयी।

रात वीतने पर चद्रमा तेज से रहित हो गया जैसे पति के अस्वस्थ होने पर सती का मुख काति से रहित हो जाता है। दीपक जलता हुआ भी शोभा नही पाता जैसे था आज्ञा-भग होने पर मनुष्य मे शूरत्व शोभा नही पाता।

नासफरिम—अन्यार्थ—(१) उदारता के अभाव में (२) उत्साह के अभाव मे।

१८०. उस समय चकवे ने मन मे चकवी के साथ क्रीड़ा करने की इच्छा की। कामी जनो की कामशास्त्र के अनुसार क्रीड़ा करने की इच्छा निवृत्त हो गयी। फूलों ने खिलकर सुगधि छोडी और गहनो ने शीतलता धारण की (प्रात.काल धातु की वस्तुए शीतल हो जाती है)।

१८१. अरुणोदय काल का योगाभ्यास के साथ साग रूपक द्वारा वर्णन।

अरुण का उदय हो गया मानो योगाभ्यास का आरंभ हुआ। शखो और नगाडो का शब्द होने लगा जैसे योगाभ्यास मे अनाहत नाद होता है। रात्रि-कालीन अधकार दूर हो गया मानो माया के पर्दे हट गये। और सूर्य की ज्योति का प्रकाश हो गया मानो प्राणायाम द्वारा ईश्वरीय ज्योति का प्रकाश दिखायी पडा।

अरुणोदय=योगाभ्यास। **शंख-भेरी-ध्वनि**=अनाहत नाद। **रात्रि का अंधकार**=माया का पर्दा। **सूर्य-ज्योति**=ईश्वरीय ज्योति।

१८२. सूर्य ने उदय होकर प्रिय संयोगिनी नारी का चीर, मथानी और कुमुदिनी की शोभा—इतने खुले हुए पदार्थों को वाध दिया और घर, हाटो के ताले, भ्रमर और गायो के वाड़े—इतने वद पदार्थों को खोल दिया।

रात मे पति से सयुक्त नारी का वस्त्र खुला हुआ था, प्रात.काल होने पर उसने उसे वांध लिया। मथानी रात मे खुली पडी थी, सवेरे दही मथने के लिए उसके नेती वांध दी गयी। कुमुदिनी की शोभा रात मे फैली हुई थी, वह प्रभात होने पर सकुचित हो गयी।

घरो के द्वार रात मे वद थे, वे प्रात.काल खोल दिये गये। रात मे हाटो के ताले वंद थे, वे सवेरे खुल गये। रात में भौंरे कमलो में वंद हो गये थे, वे सवेरे कमलो के खुलने से वाहर निकल आये। रात मे गाये वाड़ो मे वद थी, सवेरे चरवाहे वाड़े खोलकर गायो को जगल मे ले गये।

१८३. सूर्य ने प्रकट होकर व्यापारी और उनकी स्त्रिया, गायें और उनके

वछडे, तथा कुलटा नारियाँ और लंपट पुरुप—इतने मिले हुओ को अलग कर दिया, और चोर और उनकी स्त्रिया, चकवा और चकवी, तथा ब्राह्मण और घाटों का जल—इतने विछडे हुओ को मिला दिया ।

रात मे व्यापारी अपनी स्त्रियो के साथ, गाये अपने वछड़ो के पास और कुलटाए अपने प्रेमियो के पास थी पर प्रात काल व्यापारी दुकानो पर चले गये, गाये जगल में चरने चली गयी और कुलटाओ को अपने प्रेमियो से छिपकर मिलने का अवकाश नही रहा ।

रात मे चोर चोरी करने गये थे अत. अपनी स्त्रियो से विछुड गये थे, प्रातः काल होने पर वे लौट आये । चकवा-चकवी रात मे अलग रहते है और दिन मे ही मिलते है ऐसी प्रसिद्धि है । रात मे ब्राह्मण घाटो को छोडकर घर चले गये थे, प्रभात होने पर वे सध्योपासनादि करने फिर घाटो पर आ पहुँचे ।

ऋतु-वर्णन

(१) ग्रीष्म

१८४ ग्रीष्म के आने पर दिन और नदियो का जल ये वढ गये, और राते और सरोवरो का पानी ये घट गये । पृथ्वी कठोर हो गयी, और हिमालय पिघल चला—हिमालय पर की हिम-राशि-गलने लगी । उस समय सुन्दर पेडो ने जगत के सिर पर छाया की, और सूर्य ने जगत के सिर पर अपना मार्ग वनाया—सूर्य जो आकाश मे अभी तक नीचे चल रहा था अव ठीक सिर के ऊपर होकर चलने लगा ।

टिप्पणी—(१) नदियो का जल वढ गया—पर्वतो की वर्फ के पिघलने से नदियो मे अधिक पानी आने लगा ।

(२) पृथ्वी कठोर हो गयी—गर्मी के कारण जल के सूख जाने से मिट्टी कडी पड गयी ।

(३) पेड़ो ने छाया की—लोगो ने पेड़ो की छाया का आश्रय लिया ।

पेड़ो ने छाया की और सूर्य ने सिर पर मार्ग वनाया, जैसे सज्जन जन दुख मे दूसरो का उपकार करते है पर दुष्ट जन दूसरों के सिर पर होकर चलते हैं ।

१८५ लोगो की व्याकुलता का वर्णन ।

इस ग्रीष्म ऋतु मे गर्मी के कारण लोग व्याकुल हो गये तो कौन-सा आश्चर्य ! लोग छाया को चाहते है तो यह उचित ही है । क्योकि देखो स्वयं सूर्य ने उत्तर दिशा की शरण ले ली है (उत्तर दिशा मे आ गया है) जिसमे शीतलता का आगार हिमालय है । सूर्य तक ने 'वृख' का (=१. वृक्ष का, २ वृप राशि का) आश्रय ले लिया है ।

टिप्पणी—(१) हेमदिसि—हिमालय की दिशा, ग्रीष्म मे सूर्य उत्तरायण मे रहता है, भूमध्यरेखा के उत्तर मे आ जाता है ।

(२) व्रिख-आसरित—यहा व्रिख शब्द श्लिष्ट है, पहला अर्थ है वृक्ष और दूसरा अर्थ वृषराशि। सूर्य ने वृषराशि का आश्रय ले लिया है मानो गर्मी से डरकर वृक्ष का आश्रय ले लिया है। प्राचीन ज्यतिष के अनुसार १३ मई के आसपास सूर्य वृष राशि मे पहुंचता है और आधुनिक गणना के अनुसार २१ अप्रैल के लगभग।

१८६. ग्रीष्म मे जल-विहार का वर्णन।

ज्येष्ठ के मास मे जगत के स्वामी भगवान कृष्ण सरोवर मे चंदन का कीचड़ बनाकर और गुलाबजल का पानी भरकर, तथा शरीर मे मोतियो के गहनो की शोभा धारण कर, इस प्रकार, जल-विहार करते थे।

टिप्पणी—(१) श्रीखड पक—**अन्यार्थ**—शरीर में चदन का लेप करके। (२) दळि मुगता आहरण दुति—(१) मोती शीतल होने के कारण ग्रीष्म मे सुखदायी होते है। (२) **अन्यार्थ**—शरीर मे कान्ति लाने के लिए मोतियो को पीसकर उनकी पीठी शरीर पर मलते है।

१८७ आषाढ के दुपहर के सन्नाटे का वर्णन।

माघ मास की ऐसी मध्यरात्रि की अपेक्षा, जिसमे माघ मास की वर्षा के कारण आकाश काले रग का—घनघोर अधकारमय—हो गया हो, आषाढ़ मास के उस मध्याह्न मे, जब आषाढ मास का सूर्य तप रहा था, लोगो को अधिक निर्जनता जान पडी।

माघ की मध्यरात्रि मे, जब वर्षा हो रही हो और घनघोर अंधकार छाया हो, शीत के भय से कोई बाहर नही निकलता जिस कारण घोर सन्नाटा छाया रहता है पर आषाढ के इस मध्याह्न मे उससे भी अधिक सन्नाटा दिखायी पडता था—इतनी भयंकर गर्मी पड़ रही थी कि मार्ग मे कही कोई नही दिखायी पडता था।

१८८. दक्षिण-पश्चिमी पवन का वर्णन।

दक्षिण-पश्चिम कोण का पवन चलने लगा। पत्नी वाले पुरुषो ने पत्नियो के कुचो का और पत्नी-विहीन पुरुषो ने पहाड़ो और झरनो का आश्रय लिया। गर्म पवन के झकोरो ने चलकर पेड़ो को झखाड (पत्रहीन) कर दिया। और लू की लहर ने लताओ को जला दिया।

टिप्पणी—लवली इ०—**अन्यार्थ**—यह लू की लहर है या लताओ को दग्ध करने वाली अग्नि?

१८९. कस्तूरी के गारे और कपूर की ईंटो से निर्मित अपने उस महल मे श्रीकृष्ण पुष्पो और कमल-पत्रो की मालाओ से अलकृत होकर प्रत्येक नये प्रभात मे नयी भाँति से, प्रतिदिन नवीन विधि से, विहार करते थे।

१९०. धूलि उठी और आकाश मे सूर्य से जा लगी। मृगशिर नक्षत्र के

पवन ने चलकर मृगो को किंकर्तव्य-विमूढ (या दीन) बना दिया। उधर आर्द्रा नक्षत्र के मेघ ने बरसकर पृथ्वी को सजल कर दिया। गड्ढे भर गये और किसान खेती का उद्यम करने लगे।

टिप्पणी—मृगशिर नक्षत्र का पवन=जब सूर्य मृगशिर नक्षत्र मे हो तब चलने वाली तेज हवा। सूर्य एक नक्षत्र मे लगभग १३-१४ दिन रहता है। मृगशिर नक्षत्र मे वह जून के प्रथम सप्ताह मे और आर्द्रा नक्षत्र मे जून के तीसरे सप्ताह के अन्त मे आता है। सूर्य जब मृगशिर नक्षत्र मे आता है तो तेज पवन चलता है जिसे राजस्थान मे 'मृग बाजणो' (=मृग का चलना) कहा जाता है। सूर्य जब आर्द्रा नक्षत्र मे आता है तब वर्षा आरभ होती है।

(२) वर्षा

१९१ वर्षा ऋतु मे बगुले, साधु और राजा लोग एक स्थान मे बैठ गये। देवता सो गये। मोरो का शब्द होने लगा। पपीहे बोलने लगे। सारस उड़ने को चचल हो गये (या, बादल आकाश मे दौड़ने लगे)। और इन्द्र आकाश को इन्द्रधनुष से सजाने लगा।

टिप्पणी—(१) बग, रिखि, राजान इ०—वर्षा मे बगुले आकाश मे नही उडते, साधु-सन्यासी भ्रमण को छोडकर चार मास तक एक स्थान ठहरे रहते है जिसे चौमासा करना कहा जाता है, और राजा लोग विजय-यात्राऍ तथा चढाइया बद कर देते है। वर्षा मे सर्वत्र जल भरा रहने से मार्ग बद हो जाते है और भ्रमण तथा यात्राऍ सुकर नही रह जाती।

(२) सुर सूता—आषाढ शुदि एकादशी को, जिसे देवशयनी कहते है, देवता सो जाते है और चार मास के पश्चात् कार्तिक शुदि एकादशी को, जिसे देवोत्थान एकादशी कहते है, फिर जागते है।

(३) वळाहकि—वर्षा के आरम्भ मे बलाकाए और क्रौच पक्षी दल बॉध-कर उडते दिखायी पडते है, संभवत· भारत के बाहर चले जाते है और वर्षा के बाद लौट आते है।

१९२ सावन के बादल, काली घटाए और उजली घटाएं करके, धाराओ के साथ बरस पडे। जल के गर्भ दसो दिशाओं मे गल चले। वे बरसते हुए रुकते ही नही—निरन्तर बरसते ही जाते थे—मानो विरहिणी के नेत्र हो गये थे जो बराबर आसू गिराया करते है।

टिप्पणी—(१) काठल—काले बादलो की घटा।

(२) कोरण—सफेद बादलो की घटा।

(३) जळगर्भ—जैसे स्त्री-पुरुष के सयोग से गर्भ बनते है वैसे ही विद्युत् शक्ति और बादल के योग से जल के गर्भ बनते है। सूर्य मूल नक्षत्र पर आता है वहाँ से लेकर अश्विनी पर रहता है तब तक गर्भ बनने का समय होता है, और आर्द्रा

पर आता है वहा से लेकर स्वाति पर रहता है तब तक पीछा वरसने का समय होता है। जिस गर्भ के धारण के समय वायु, वादल, बिजली, गाज और जल (थोडी सी वर्षा) ये पाचो निमित्त एकत्र हो उसके वरसने के समय बहुत अधिक वर्षा होती है। पर यदि गर्भ-धारण के समय ही अधिक जल वरस जाय तो फिर प्रसव के समय बहुत कम वर्षा होती है।

१९३. दडदड शब्द के साथ जल वरसने पर पहाडों के नाले शोर करते हुए वह चले। आकाश मे वादल गहरे शब्द के साथ गरजने लगे। जल इतना वरसा कि समुद्र मे भी नही समाता था। और उधर आकाश में बिजली इतनी अधिक चमक रही थी कि वादलो में नही समाती थी।

टिप्पणी—इस पद्य मे प्रयुक्त शब्दावली मे वर्ण्य प्रसंग का ध्वनिचित्र खडा कर देने की पूर्ण क्षमता द्रष्टव्य है।

१९४. वादल गरजते हुए वरसे। पृथ्वी पर जगह-जगह जल भरा था पर अभी तक वह हरी नही हुई थी—हरियाली से अनाच्छादित थी। वह ऐसी जान पड़ती थी मानो प्रथम समागम के समय कोई सुन्दरी हो जिसके शरीर के वस्त्र उतार लिये गये हों और केवल गहने शोभायमान हो (हरियाली से रहित पृथ्वी वस्त्र-रहित सुन्दरी के समान और स्थल-स्थल पर भरा हुआ जल गहनो के समान दीख पडता था)।

पृथ्वी=सुदरी। **हरियाली**=वस्त्र। **जल भरे स्थान**=गहने।

१९५. पेड और लताए पल्लवो से युक्त हो गयी। घास के अकुर निकल आये। पृथ्वी हरी हो गयी। उसकी हरियाली किसी सुन्दरी के नीले वस्त्र के समान दिखायी पड़ती थी। उसने नदी-रूपी हार पहने और पैरो मे दादुर-रूपी नूपुर धारण किये।

पृथ्वी=सुन्दरी। **हरियाली**=नीलांवर। **नदियां**=हार। **दादुर**=नूपुर (दादुर बोल रहे थे मानो नूपुर वज रहे हों)।

१९६ पृथ्वी-रूपी सुन्दरी ने श्यामवर्ण पर्वत-श्रेणियो के रूप मे काजल की रेखाएँ लगायी, कमर मे समुद्र-रूपी करधनी पहनी, और वीरवहूटी के रूप मे कुकुम की विदी ललाट पर लगायी।

पृथ्वी=सुन्दरी। **श्यामवर्ण पर्वत-श्रेणियां**=काजल की रेखाएं। **समुद्र**=करधनी। **बीरबहूटी**=कुकुमविंदु।

१९७ उस काल में अधिक जल वरसने से त्रिवेणी की नदियो का जल ऐसा उमडा कि उसके दोनो तट परस्पर मिल गये और जल चारो ओर फैल गया। उस जलराशि मे यमुना का काला जल और गगा का श्वेत जल दोनो मिश्रित थे। ऐसा जान पड़ता था मानो जब पृथ्वी-रूपी नायिका और मेघ-रूपी नायक मिले तो पृथ्वी-रूपी नायिका की त्रिवेणी-रूपी

वेणी विखर गयी जिसमे यमुना-जल-रूपी केश और गङ्गा-जल-रूपी पुष्प मिश्रित थे ।

१६८. पृथ्वी रुक्मिणी के समान थी और मेघ कृष्ण के समान । दोनो गलवाहे देकर एक मे मिल गये । ऐसा अंधकार छाया कि पृथ्वी और आकाश एक हो गये । ऋषि लोग दिन-रात का पता नही लगा पाते थे जिससे भ्रम मे पड कर सध्यावदना करना भूल गये ।

१६६ पृथ्वी और आकाश का आलिगन देखकर रूठे हुए दपति, पाये हुए मानव-शरीर का यही लाभ है ऐसा समझकर, एक-दूसरे को पैरो पडकर मनाने लगे और रस मनाते हुए परस्पर आलिगन देने लगे ।

२०० काले और सफेद वादल जल वरसाते हुए अधर (आकाश) मे परस्पर रगड खाते हुए चलते थे। ऐसे वर्षाकाल मे महाराज कृष्ण महलो मे विराजते थे जो कई-एक पीले और कई-एक लाल थे ।

अन्यार्थ—एक सफेद दूसरे काले, एक लाल दूसरे पीले, ऐसे विविध रगो के वादल पानी बरसा रहे थे । वे वादल अधर मे महाराज कृष्ण के महलो (के छज्जो) से रगड खाते हुए चल रहे थे ।

२०१ नीलम की ईंटो, कुदन के गारे, माणिक के थभों और पाच (पच्ची) रत्नो के तख्तो से निर्मित महलो मे पद्मराग मणि के झरोखे थे और महलो के ऊपर हीरो के बने शिखर थे ।

२०२ रुक्मिणी के पति श्रीकृष्ण शरीर मे गुलाव-जल से धुले वस्त्र पहने हुए सुगधित पदार्थो से छिडके हुए महलो मे सावन और भादो भर इस प्रकार सुख भोगते थे ।

(३) शरद

२०३ वर्षा ऋतु बीत गयी । शरद ऋतु लौट आयी । उसका विविध प्रकार के वचनो से वर्णन किया गया । जो जल वर्षा ऋतु मे समस्त पृथ्वी पर फैला हुआ था वह इस शरद ऋतु मे निर्मल होकर जलाशय आदि नीचे स्थानो मे चला गया जैसे क्रीडा के समय लज्जा सिमटकर रमणी के नेत्रो मे जा रहती है ।

२०४ वनस्पतिया पककर पीली हो गयी । उनके कारण पृथ्वी भी पीली हो गयी । कोयल का वोलना वद हो गया और ओस पडने लगी । इस शरत्-काल की शोभा ऐसी थी जैसी क्रीडा के अन्त मे रमणी के मुख की होती है जो पीला पड जाता है, जिसका वोलना वंद हो जाता है और जो पसीने के कणो से युक्त हो जाता है ।

शरत्काल=क्रीडा के अन्त मे रमणी का मुख । **पृथ्वी का पीलापन**=मुख का पीलापन । **कोयल का शब्द**=मुख का शब्द । **ओस-बिंदु**=मुख पर प्रस्वेद-कण ।

२०५ आश्विन मास के आने पर आकाश मे बादल विलीन हो गये, पृथ्वी मे कीचड अदृश्य हो गया, जल मे गॅंदलापन दूर हो गया, जैसे सद्गुरु के मिलने पर ज्ञान-रूपी अग्नि की दीप्ति प्रकट होने से मनुष्य के कलियुग-कृत पाप विलीन हो जाते है।

आश्विन मास=सद्गुरु। **शरद ऋतु की उज्ज्वलता**=ज्ञानाग्नि की दीप्ति। **काले बादल, कीचड़, गॅंदलापन**=कलियुग के पाप।

२०६. गाये दूध झरने लगी। पृथ्वी अन्न के रूप मे रस उगलने लगी। सरोवरो मे कमलिनियों की शोभा हो गयी। इस प्रकार शरद ऋतु आयी जिसमे और तो क्या, स्वर्ग-लोक के रहने वाले पितरो को भी मृत्युलोक प्यारा लगता है।

टिप्पणी—पितरे ही इ०—शरद ऋतु मे आश्विन महीना आता है जब श्राद्ध किये जाते है और पितर बलि ग्रहण करने पृथ्वी-लोक पर आते है।

२०७. शरद ऋतु की रात्रि ऐसी उज्ज्वल थी कि हसनी अपने पास मे बैठे हुए हस को नही देख पाती थी और हस अपने पास मे बैठी हुई हसनी को नही देख पाता था। एक-दूसरे को देख न पाने के कारण दोनों विरह के दु.ख का अनुभव करते थे। उस विरह-दु.ख को मिटाने के लिए दोनो बारबार बोलते थे—बोलना सुनकर समझ लेते थे कि एक-दूसरे से दूर नही है।

टिप्पणी—हसणी इ०—हंसनी और हस दोनो उज्ज्वल वर्ण होने के कारण शरत्कालीन रात्रि की उज्ज्वल चादनी मे मिल जाते थे और इस कारण एक-दूसरे को दिखायी नही पडते थे।

२०८. शरत्काल की उजली रात मे उजली वस्तुओ का अदर्शन हो गया—उजली चादनी रात के साथ एकाकार हो जाने से उनकी प्रतीति नहीं होती थी। अधिक बखान करने से क्या लाभ ? इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि स्वय चन्द्रमा, अपनी सोलह कलाओ के साथ, अपने ही प्रकाश मे खो गया।

२०९. सूर्य तुलाराशि मे प्रविष्ट हुआ। प्रकाश और अधकार—दिन और रात्रि—बराबर हो गये। पृथ्वी पर राजा लोग सोने के साथ तुलते हुए—सोने के तुलादान करते हुए—शोभा देने लगे। उस समय से दिन प्रतिदिन छोटा होने लगा और रात प्रतिरात्रि बडी होने लगी।

टिप्पणी—दिन-दिन तिणि इ०—दिन अपने को रात्रि जैसी छोटी चीज के बराबर किया गया देखकर दु ख के मारे घटने लगा और रात्रि अपने को दिन जैसे बड़े व्यक्ति के बराबर की गयी देखकर हर्ष के मारे बढने लगी।

२१० कार्तिक मास मे लोगो ने मणियो के महलो मे दीपक जलाये, वे भीतर थे फिर भी उनका प्रकाश बाहर भी जगमगाता था, जैसे समवयस्का स्त्रियो मे बैठी हुई, पति के सौभाग्य को पाकर हर्षित होती हुई और मन मे

लजाती हुई रमणी के हृदय के भीतर का हर्ष उसके मुख पर भी झलकता है।

महलो के भीतर के दीपक=मन के भीतर का सौभाग्य-जनित सुख।

२११ जिसमे नयी-नयी शोभा है और जिसमें नये-नये आनन्द से भरे महोत्सव किये जाते है उस कार्तिक मास मे घर-घर मे कुमारी कन्याए द्वारों पर ऐसी स्थिरता (एकाग्रता) के साथ चित्र बना रही थी कि स्वयं ही चित्र बन गयी थी—एकाग्रता के कारण निश्चल हो रही थी और निश्चल होने के कारण चित्रों के समान ही जान पड़ती थी।

अन्यार्थ—चित्र-सी बनी हुई एकाग्रता से चित्र बना रही थी।

२१२. द्वारिका के निवासी लौकिक सुखो के बहाने नये-नये प्रकार से सभी नये-नये (अलौकिक, स्वर्गीय) सुखो का सेवन करते थे। इस शरत्काल मे रुक्मिणी के कात श्रीकृष्ण की रात्रिया भोगो और रास-क्रीडा मे तथा दिन सज्जनो की आवभगत मे व्यतीत होते थे।

२१३. भगवान जनार्दन निद्रा से जागे तो सामने मार्गशीर्ष का महीना मिला (दिखायी पडा) जो सब महीनो मे श्रेष्ठ कहा गया। ऐसी ही बात तब हुई थी जब अर्जुन और दुर्योधन सहायता (मॉगने) के लिए आये थे और जब भगवान के जागने पर अर्जुन सामने दिखायी पडा था और भगवान ने उसे दुर्योधन पर प्रधानता दी थी।

अन्यार्थ—जब ऐसी बात हुई (जब भगवान इस प्रकार रह रहे थे) तभी अर्जुन और दुर्योधन सहायता मागने के लिए आये। तभी महीनो मे श्रेष्ठ मार्गशीर्ष आ पहुँचा और भगवान निद्रा से जागे।

(४) हेमंत

२१४ पश्चिम की हवा बदल गयी। उत्तर का पवन चलने लगा। इस *शीतकाल मे सौभाग्यवतियो के उरस्थल सब के लिए स्वर्ग के समान सुखदायी हो* गये। साप और धनी ये दोनो वर्ग पृथ्वी के पुट को भेद कर विवरो में प्रविष्ट हो गये—साप अपने बिलो मे और धनी अपने तहखानो मे।

२१५ हिमालय मे बर्फ जमने से नदियो मे जल घटने लगा और स्वच्छ शिखर बढने लगे, जैसे यौवन के आने पर कमर कृश हो जाती है और नितब और कुच स्थूल हो जाते है।

२१६ हेमत ऋतु मे लोग शीत के डर से घरो मे ही रहते थे। रात पडने पर कोई भी मार्ग मे नही चलता था। जगत मे सब लोग बोझ से लदे रहते थे—कोई कोमल वस्त्र के और कोई कंबल के।

२१७. दिन धीरे-धीरे सिकुडने लगे—छोटे होने लगे—जैसे महाजन के दिखायी पडने पर कर्जदार सकुचित हो जाता है। पौष की रात्रि आकाश को बडी कठिनता से छोड़ती थी जैसे प्रौढ़ा नायिका, नायक के खीचने पर,

वस्त्र को कठिनता से छोडती है (प्रौढा विशेष मानवती होती है, उसका मान देर से छूटता है)।

२१८. शीत से पीडित रुक्मिणी और उनके पति ने अपने-अपने तन और मन को परस्पर उलझा दिया और इस प्रकार शीत को दूर किया, जैसे वाणी और अर्थ, शक्ति और शक्तिमान, सुगध और पुष्प, तथा गुण और गुणी परस्पर उलझे रहते है।

विहत शीत—(१) शीत से पीड़ित, (२) शीत को नष्ट (दूर) किया।

(५) शिशिर ऋतु

२१९ सूर्य कामदेव के वाहन अर्थात् मकर की राशि मे पहुँच गया और उत्तरी पवन चलने लगा। उसने कमलो को जलाकर वियोगिनी के मुख के समान म्लान, और आमो को पालकर संयोगिनी के हृदय के समान उल्लसित, बना दिया।

२२०. मागने पर कंजूस के मुख से जो बात निकलती है उस दिशा के, अर्थात् उत्तर दिशा के, पवन ने चलकर आम को छोडकर बाकी सब वनो को जला दिया। माघ महीने के लगने पर लोगों को जल जलाने वाला—अग्नि की भाँति दुखदायक—और अग्नि शीतल—जल की भाँति सुखदायक—लगने लगा।

टिप्पणी—पारथिया इ०—मांगने पर कंजूस के मुख से उत्तर निकलता है—वह मागने वाले को उत्तर (जवाब) दे देता है।

२२१. अपना नाम शीत है पर हरे वनो को भी जला देता है और जल मे स्थित कमलिनी को भी जला देता है। इस पाप के कारण शिशिरकाल, मन के पाप को धोये बिना, द्वारका मे प्रवेश नही कर सकता था।

२२२ रुक्मिणी और कृष्ण का प्रताप प्रतीहार बनकर शीत को बरज देता था, भीतर नही आने देता था। अग्नि और सूर्य धूप और आरती के बहाने अपने शरीरो को दम्पति के ऊपर रात-दिन और चारो ओर निछावर करते थे, धूप नही जलता था, अग्नि का शरीर जलता था, आरती के दीपक नही जलते थे, सूर्य का शरीर जलता था।

शिशिर और वसंत का संधिकाल

२२३ सूर्य कुम्भ राशि मे प्रविष्ट हुआ। ऋतु का परिवर्त्तन आरम्भ हुआ। जो सरोवर हेमत ने जमा कर कठोर बना दिये थे वे ठडे (कोमल) होने लगे—उनका जमा हुआ जल नरम होने लगा। भौरे उडने को पाखे सजाने लगे और कोकिल गाने को कठ सजाने लगे।

२२४. वीणा, डफ, मधुकरी और बासुरी बजाकर और हाथ मे रोरी लेकर, तथा मुख से पंचम राग के आलाप लेकर युवक और युवतियाँ विरही लोगों के लिए दुस्तर (कठिनता से बिताने योग्य) फागुन मास मे घर-घर मे फाग खेलने लगे।

२२५. अभी तक पेडो मे न पुष्प आये थे, न पत्ते और न अकुर। केवल डालियाँ थोडी-थोडी गदरा गयी थी—उनमे हरियाली फूट चली थी। वसंत का आगमन जानकर पुष्प, पल्लव और अकुर विहीन, किन्तु गदरायी हुई, डालो से युक्त वृक्षावली ऐसी शोभा देती थी जैसी प्रिय का आगमन जानकर शृगार न की हुई, किन्तु अगो मे उल्लसित, प्रियतमा शोभा देती है।

वृक्षावली=प्रियतमा। **वसंत**=प्रियतम। **पुष्प, पल्लव, अंकुर**=विविध शृगार। **गदरायी डालियाँ**=उल्लसित अङ्ग।

(६) वसन्त : वसन्त-जन्म-रूपक

२२६. वनस्पति-रूपी माता ने वसत ऋतु को गर्भ मे धारण किया। इसको दस महीने पूरे हो गये। अब प्रसव का समय आ पहुँचा। भौंरे गुन-गुन शब्द कर रहे थे वही मानो आसन्न-प्रसवा की मन की व्याकुलता से जनित गुनगुनाहट थी। कोयल बोल रही थी वही मानो आसन्न-प्रसवा के कठिन वेदना के सूचक बोल थे। इस प्रकार वनस्पति-रूपी माता ने वसन्त-रूपी पुत्र को जन्म दिया।

वनस्पति=माता। **वसत**=पुत्र। **भ्रमरों का गुनगुनाना**=आसन्न-प्रसवा की गुनगुनाहट। **कोकिल का कूजन**=आसन्न-प्रसवा के वेदना-सूचक बोल।

२२७. होली मानो दाई थी। जिस प्रकार प्रसूता के सकट के दूर होने पर—सुख से प्रसव हो जाने पर—पक्वान्न, सुन्दर वस्त्र, द्रव्य आदि से दाई का सत्कार किया जाता है वैसे ही वनस्पति-रूपी प्रसूता के सुख से प्रसव हो जाने पर मिठाइयो, पानो-फलो, पुष्पो, सुन्दर वस्त्रो आदि नाना प्रकार के द्रव्यो से होली को पूजा गया।

होलिकोत्सव मे लोग नाना द्रव्यों से होली की पूजा करते है वही मानो वनस्पति-रूपी प्रसूता द्वारा होली-रूपी दाई की पूजा है।

होली=दाई (प्रसूतिका)।

२२८ नवजात शिशु के शरीर मे कलियुगी (सासारिक) हवा लगने पर सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणो का प्रसार होता है और शिशु को भूख-प्यास लग आती है, वैसे ही वसत के शरीर मे मलयपवन लगने पर शीतल, मद और सुगध इन तीन गुणो का प्रसार हुआ और बालक वसत को मानो भूख-प्यास लग आयी। भूख-प्यास लगने पर बालक रोता है तब माता उसे दूध पिलाती है। वसत के आने पर भ्रमर गुजार करने लगे मानो शिशु रो रहा था, और वृक्षराजि मधु बहाने लगी मानो माता शिशु को दूध पिला रही थी।

वसन्त—नवजात शिशु। **मलय पवन**=कलियुगी पवन। **भ्रमर का गुंजार करना**=शिशु का रोना। **वृक्षराजि**=माता। **मधु बहाना**=दूध पिलाना।

२२९. बालक के जन्म पर जैसे बधाईदार रथ पर चढ़कर नगर मे घर-घर

बधाई देता फिरता है वैसे ही वसन्त जनमा इसकी बधाई देने के लिए सुगंधि-रूपी बधाईदार पवन-रूपी रथ पर चढ़कर स्त्री-पुरुषो की नासिका-रूपी मार्ग पर चलता हुआ नगर मे, घर-घर मे, वन मे, पेड़-पेड़ पर तथा सरोवर-सरोवर मे विहरने लगा।

वसंत=बालक। **सुगंध**=बधाईदार। **पवन**=रथ। **स्त्री-पुरुषों के नाक**=मार्ग।

२३० पुत्र-जन्म के उत्सव पर तोरण बाधे जाते है, कलस स्थापित किये जाते है, और वदनवार बाधी जाती है। वसत का जन्म होने पर आमो मे जो प्रचुर मजरी आयी वही मानो तोरण बांधे गये, कमल की कलियाँ मानो मगल-कलस हुईं, और एक पेड से दूसरे पेड तक जो लताएँ फैल रही थी वही मानो वंदनवारे बाधी गयी।

आम्र-मंजरी=तोरण। **कमल-कली**=मागलिक कलस। **लता**=वदनवार।

२३१. उत्सव के समय मागलिक दही, कुकुम और अक्षत लाये जाते है, तथा गीतेरिने गीत गाती है।

वानरो ने नारियल के कच्चे फल फोडकर उनकी गरी बिखरा दी थी वही मानो मागलिक दही था, पुष्पो के पराग कुकुम थे, और उनके केशर अक्षत थे। कोयले बहुत प्रसन्न होकर बोल रही थी मानो गीतेरिने हर्ष मे भरकर गीत गा रही थीं।

कच्चे नारियलों की गरी=दही। **पराग**=कुकुम। **केशर**=अक्षत। **कोयलें**=गीतेरिने।

२३२ सरोवरो के चमकते हुए जल मे स्थित कमलिनी के पत्तो पर जल-कण शोभायमान थे। यह दृश्य ऐसा जान पड़ता था मानो, वसत पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ यह देखकर, कमलिनी-रूपी सुन्दरी नारी आनन्द के साथ श्रृङ्गार सजाकर, और मोतियों से थाल को भरकर, काच से जडे आगन मे उसको बधाने के लिए आयी थी।

पद्मिनी=सुन्दरी नारी। **कमल-पत्र**=थाल। **जलकण**=मोती। **सरोवर का जल**=काच-जटित आंगन। **वसंत**=बधाने योग्य व्यक्ति।

२३३. जैसे माता पुत्र को पाकर मन मे आनन्दित होती है और अनेक प्रकार के दान देती है वैसे ही वनस्पति-रूपी माता वसंत-रूपी पुत्र को पाकर मन मे हर्षित हुई और कामधेनु के समान सब को मुँह-माँगा दान देने लगी। पुत्र-जन्म पर माता 'पीळा' नामक वस्त्र पहनती है, वसन्त के जन्म पर वनस्पति ने कर्णिकार और टेसू के पीले फूल धारण किये।

वनस्पति=माता। **वसंत**=पुत्र। **'पीला'**=कर्णिकार और टेसू के फूल।

२३४ कनेर, करना, सेवती, कूजा, चमेली, सोनचंपा, गुल्लाला आदि विभिन्न

वृक्ष नाना रगो के फूलो से लद गये । ऐसा जान पडता था मानो वनस्पति ने वसत के जन्म पर अपने सारे परिवार (के लोगो) को रग-रग के विविध वस्त्र देकर पहरावनी दी थी ।

विभिन्न वृक्ष=परिवार के विभिन्न लोग । **फूल**=वस्त्र ।

२३५ इस प्रकार वसत-रूपी वालक को वधावो से वधाया गया । उसका सौदर्य प्रतिदिन पूर्णता को पहुँचने लगा । माता ने उसे फाग-रूपी लोरियो से दुलराया । फिर पेड हरे-भरे पुष्पादि की समृद्धि से पूर्ण और सघन हो गये मानो वसत-रूपी वालक युवा हो गया ।

वसंत=वालक । **फाग (होली के गीत)**=लोरिया । **वृक्षों का गहवरना**= वसत का युवा होना ।

वसंत-राजा-रूपक

२३६. वहाँ वन मे वसत राजा हुआ, कामदेव मन्त्री हुआ, दृढ शिला का सिहासन स्थापित किया गया, सिर पर आम के पेडो के राजछत्र बने, और पवन से जो मजरी हिलती थी वही मानो चवर डुलता था ।

२४० दाडिम पककर फट गये और उनके दाने विखर गये । विखरे हुए वे अनारदाने ऐसे जान पडते थे मानो राजा वसत की न्यौछावर मे उछाले हुए रत्न हो । पक्षियो के पजो से नुचे हुए और चोचो से मारे हुए फलो से रस टपक रहा था मानो मार्ग मे छिडकाव हो रहा था ।

२३७ वसन्त की चतुरगिणी सेना का वर्णन ।

हरिण पैदल सैनिको के समान अतीव शोभायभान थे । पेडो के कुज मानो रथ थे । हसो की पक्ति मानो घुड़साल मे वंधी घोडो की कतार थी । और वड़े-वड़े पहाड मानो सिगारे हुए हाथी थे और उन पर खडे हुए खजूर के पेड़ ऐसे जान पड़ते थे मानो हाथियो की पीठ पर ढाले ढलक रही हो ।

२३६ सीधे, लबे और स्वर्ग तक फैलते हुए ताड के पेड़ो के ऊचे और विजली के समान चचल पत्ते ऐसे जान पडते थे मानो राजा वसत ने राज-सिंहासन पर वैठकर जगत के ऊपर जगत को अभयदान देने वाले अपने हाथ वाँधे (एक साथ पसारे) थे ।

अन्यार्थ—विजय के घोपणा-पत्र वाँधे थे, सव को ललकारा था कि जो मुझे जीतना चाहे वह आगे आवे । (अन्यार्थ—मेरी वरावरी करने वाला कोई नही है ।)

राजा वसंत के अखाड़े का रूपक

२४० राजा वसन्त के आगे अखाड़ा जुडा—महफिल लगी—-नाट्यारभ हुआ । वन मडप वना, झरने मृदग बने, कामदेव नायक (सूत्रधार) बना, कोकिल गायक बने, पृथ्वी रगभूमि वनी और पक्षी खेल देखने वाले (दर्शक) बने ।

२४१. कलहंस कला के पारखी थे, मोर नृत्य करने वाले, पवन ताल देने वाला, पत्ते ताले, आड़ी पक्षी का शब्द वीणा का स्वर और भ्रमर नसतरंग बजाने वाले। चकोर वहा तीवट ताल का उद्घाटन करता था।

२४२. सुग्गे विधि बताने वाले थे, सारस रस के इच्छुक रसिक थे। चतुर खंजन नृत्य की विविध गतियाँ लेने वाले--नृत्य की विविध गतिया लेकर नाचने वाले थे। कपोत लाग और दाट नामक नृत्य के प्रकारो के पण्डित थे और चकवे की क्रीडा विदूपक का अभिनय था।

पाठान्तर--विदुरवेस--(१) वेश-परिवर्तन (२) देशी (लौकिक) नृत्य की गते।

२४३. पृथ्वी पर पड़े हुए जल को पीते हुए भौरे मानो उरप और तिरप नामक ताले ले रहे थे। वायु का बगूला मानो मूर्च्छना ले रहा था। रामसरी और खुमरी नामक चिडिया बोल रही थी, वे मानो धूआ, माठा और चन्द्रक नामक तालो और गीतो के विविध भेदो को प्रदर्शित कर रही थी।

२४४. प्रचुर पेड़ो की सघन छाया मानो रात्रि थी। अत्यन्त पुष्पित पलास के पेड मानो दीपकधारी थे। आम के पेड मुकुलित हो रहे थे मानो दर्शक रीझकर पुलकित हो रहे थे। कमलो ने विकास किया--कमल विकसित हो रहे थे, मानो दर्शक हर्षित होकर हँस रहे थे।

२४५. वसन्त के प्रकट होने पर चकवे बोलने लगे मानो नाटक मे राजा (प्रधान दर्शक) के रगशाला मे आते ही सगीत आरम्भ हो गया। शिशिर ऋतु चली गयी मानो नाटक का पर्दा दूर हट गया। वनराजि ने--वन के वृक्षो ने--पुष्प गिराये मानो अभिनेताओ (या प्रधान अभिनेता) ने अपने आशीर्वाद-मय मन्त्र को पढ़कर राजा पर पुष्पाजलि फेंकी।

टिप्पणी--नाटक आरम्भ करने के पूर्व सूत्रधार या प्रधान अभिनेता पर्दे को दूर करके बाहर आता है और आशीर्वाद के रूप मे मन्त्र पढ़कर दर्शको पर पुष्पांजलि बरसाता है।

राजा वसंत के सु-राज्य का वर्णन

२४६. राजा वसत ने आकर वृक्ष-रूपी प्रजाजनो को पीड़ा देने वाले शिशिर-रूपी दुष्ट राजा को और उसके उत्तरी-पवन-रूपी अन्यायकारी प्रधान को हटा दिया और वन-वन-रूपी प्रत्येक नगर मे अनुकूल (सुखदायी) पवन के रूप मे न्याय का (न्यायपूर्ण शासन का) प्रवर्तन हुआ।

२४७. चंपा के पेडो मे फूल निकल आये और केले के झाडो मे नये पत्ते निकल आये। यह दृश्य ऐसा जान पडता था मानो न्यायकारी राजा के राज्य मे लखपतियो और करोडपतियो ने अपने गाड़े हुए धन को खोदकर बाहर निकाल लिया और लखपतियो ने अपने घरो के बाहर लाख धन के सूचक दीपक जला

लिये और करोडपतियो ने अपने घरो के बाहर करोड धन की सूचक पताकाए फहरा दी। चम्पे के फूल जलते हुए दीपको के समान और केले के पत्ते पताकाओ के समान दिखायी पडते थे।

टिप्पणी—(१) प्राचीन काल मे लखपती अपने घरो मे बाहर की ओर एक-एक लाख धन पर एक-एक दीपक जलाये रखते थे (ये दीपक रातदिन जलते थे और जलाने वाले के पास उतने लाख धन होने की सूचना देते थे) और इसी प्रकार करोडपती अपने घरो के बाहर प्रत्येक करोड धन पर एक पताका फहराते थे।

(२) अन्यायी राजा के राज्य मे प्रजाजन धन को छिपा कर रखते थे पर न्यायी राजा के आने पर अपने छिपाये धन को प्रगट कर देते थे।

२४८ वसत राजा के राज्य मे मलय-पवन के रूप मे न्याय का प्रवर्तन होने से पृथ्वी पर सुराज्य (न्यायपूर्ण राज्य) की स्थापना हुई। इस वसत काल मे लताओ ने निर्भय होकर अपने ऊपर पुष्पो का भार धारण किया और पेड़ो से लिपट गयी जैसे सुराज्य मे प्रजाजनो की स्त्रिया निर्भय होकर आभूषण धारण करती है और अपने प्रियतमो के गले लगती है।

२४९. हेमत और शिशिर ऋतुओ ने पहले पेडो और लताओ को बहुत सताया था जैसे दुष्ट राजा प्रजा के नर-नारियो को सताते है। वसत रूपी राजा ने आकर उन प्रजाजनो के प्रति प्रेम दिखाया और उनके दुख को दूर कर दिया। वसत ऋतु के इस वैशाख के मास मे लताओ ने पुष्प-पल्लव आदि को जन्म देकर पेडो की शाखाओ पर अपना विस्तार किया जैसे न्यायी राजा के राज्य मे प्रजाजनो की स्त्रिया सन्तान को जन्म देकर अपने कुल की वृद्धि करती है।

२५०. वसतकाल मे पेड प्रफुल्लित हुए जैसे न्यायी राजा के राज्य मे प्रजाजन समृद्धिशाली होते है। गान करते हुए भ्रमर फिरने लगे और उन पेड़ो के पास फूलो का सुगन्ध और रस लेने के लिए पहुँच गये, जैसे राजा के कर वसूल करने वाले अधिकारी प्रजाजनो के पास राज-कर लेने के लिए जाते है। वे भ्रमर फूलो के डक नही मारते थे, धीरे से रस और सुगन्ध ले लेते थे; जैसे न्यायी राजा के अधिकारी प्रजा को दड नही देते, प्रेम से कर वसूल करते है।

२५१. पेड पुष्पो से भर गये थे। पवन के चलने से वे इस भार से मुक्त हो गये—मानो कामदेव ने अपने बाणो को अपने हाथ मे ले लिया।

फिर ऋतुराज वसत की कृपा से जगत मे जन-समूह अग्नि द्वारा जलाया जाता हुआ बद हो गया—लोगो ने अग्नि तापना बद कर दिया।

अन्यार्थ—अग्नि लोगो को जला नही पाता था—लोगो को तेज गर्मी का अनुभव नही होता था।

२५२. जैसे किसी राजा के अनुग्रहो की वर्षा करते समय कोई सेवक

उनसे वचित रह जाय वैसे ही वर्पा के वरसते समय चातक वचित रह गया—वर्पा मे सव को जल मिला पर चातक प्यासा ही रहा । पर वसंत-रूपी राजा के राज्य मे कोई इस प्रकार वचित नही रहा । पखो को फुलाये हुए पक्षी शोर कर रहे थे मानो की हुई सेवा का पुरस्कार प्राप्त कर वदीजन कोलाहल कर रहे हो ।

२५३. दो नारियो ने पुष्पित पलास के वन को एक ही साथ देखा । उनमें से एक संयोगिनी थी और दूसरी वियोगिनी । उसे देखकर दोनो पर भिन्न-भिन्न प्रकार का प्रभाव हुआ जिससे दोनों ने उसे भिन्न-भिन्न नामो से पुकारा । पति से सयुक्त नारी के मन मे उसे देखकर काम का उदय हुआ, कामक्रीडा के लिए आतुर हो उठी और उसका शरीर प्रफुल्लित हो उठा । उसने उसे देखकर 'किंसुक' कहा । उधर वियोगिनी के मन मे उसे देखकर विरह जाग उठा और उसका शरीर क्षीण हो गया । उसने उसे 'पलाश का वन' कहा ।

यहाँ किंसुक और पलास शब्द श्लिष्ट है, उनके दो-दो अर्थ है । **किंसुक**=(१) ढाक (२) **किं सुख**=कैसा सुख है ! संयोगिनी ढाक को देखकर उल्लसित होकर बोल उठी—किंसुख ! कैसा सुख है ! **पलास**=(१) ढाक (२) मांस को खाने वाला राक्षस । वियोगिनी ढाक को देखकर तन मे क्षीण होकर वोली—पलाश ! यह मास को खाने वाला राक्षस है ।

२५४. कोई-एक मालिन वन-वन मे केशर के पौधो से केशर बीनती फिरती थी । उसके शरीर का रग और सुवास उस केशर के रंग और सुवास के समान थे । उसके कोमल कर-पल्लव कोमल फूलो के समान थे । हाथो के नख (अगुलियां) विल्कुल केशर के समान थे—वही रग और वही गध । वन-वन मे केशर वीनती हुई वह मालिन केशर को नखो का प्रतिबिंब समझकर भ्राति मे पड जाती थी और उसे छोड देती थी—नही बीनती थी ।

अन्यार्थ—वन-वन मे केशर को बीनती हुई वह मालिन अपने नखो मे केशर के प्रतिविंव को देखकर भ्रान्ति मे पड जाती थी—नखो मे केशर के प्रतिविंव को वास्तविक केशर समझकर बीनने लगती थी ।

मलय-पवन का वर्णन

२५५. काम-दूत के रूप मे मलय-पवन का वर्णन ।

शीतल, मंद और सुगन्धित मलय-पवन मलय-पर्वत से हिमालय की ओर, दक्षिण से उत्तर की ओर, चला । वह मार्ग मे पड़ने वाली नदियो और निर्झरो के जल के ऊपर चलने से खूव भीग गया था अतः शीतल था; पेडो, पौधो और लताओ के पुष्पो की सुगन्ध लिये हुए होने से सुगन्धित था, और मद-मंद चल रहा था । ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेव ने महादेव को प्रसन्न करने के लिए मलयपवन-रूपी अपना दूत भेजा था जो सुगन्ध-रूपी भेट लेकर हिमालय मे महादेव

रहा था, पर महादेव के डर से जिसके पैर डगमगा रहे थे और ...दी नही उठते थे ।

...लय-पवन=काम-दूत । सुगन्ध=भेट ।

टिप्पणी—मलय-पवन की विशेपता उसका शीतल, सुगन्धित, और मंद-गति होता है । वह जल के सम्पर्क से शीतल, पुष्पो की सुगंध लिये रहने से सुगधित, और महादेव के भय के कारण मन्द-गति था ।

२५६. मलय-पवन दक्षिण दिशा से उत्तर दिशा को चल रहा था । उसकी गति बड़ी धीमी थी । वह एक-के-बाद-दूसरी नदी को पार करता, एक-के-बाद-दूसरे वृक्ष पर ठहरता और एक-के-बाद दूसरी लता के गले लगता चल रहा था । इन रुकावटो के कारण वह शीघ्रता से आगे नही बढ पाता था और उसकी मति मद थी ।

यहाँ मलय-पवन को व्यग द्वारा ऐसे दक्षिण नायक के रूप मे चित्रित किया गया है जो अपनी एक नायिका के पास से दूसरी नायिका के पास जा रहा हो, पर जो मार्ग मे स्थान-स्थान पर ठहरकर नयी-नयी नायिकाओं का आलिगन करता हो, और इस प्रकार जिसे मार्ग मे विलम्ब होता हो ।

मलय-पवन=दक्षिण नायक । **दक्षिण दिशा**=नायिका । **उत्तर दिशा**=दूसरी नायिका । **लताएं**=नायिकाए ।

मलय-पवन नदियों के जल के सम्पर्क के कारण शीतल, वृक्षो और लताओ के पुष्पो के सम्पर्क के कारण सुगन्धित, और मार्ग मे ठहरने के कारण मन्द-गति था ।

२५७ मलय-पवन ऐसे चल रहा था जैसे कोई भारवाहक हो । जैसे भार-वाहक अपने कधे पर कोई भारी बोझा उठाये हुए हो वैसे ही मलयपवन केवडा, कुसुम, कुंद, केतकी आदि वृक्षो के पुष्पो की सुगन्ध के समूह को अपने साथ लिये हुए था । उस मलय-पवन मे निर्झरो के जलकण मिले हुए थे जैसे भार-वाहक के माथे पर पसीने की बूदे हो । भारी बोझ के कारण जसे भारवाहक धीमे-धीमे चलता है वैसे ही मलय-पवन भी सुगन्ध के भारी बोझ के कारण मन्द-मन्द चल रहा था ।

मलय-पवन=भारवाहक । **सुगन्ध-समूह**=बोझा । **जल-कण**=प्रस्वेद बिंदु ।

मलय-पवन जल-कणो से युक्त होने के कारण शीतल, पुष्पों की सुगन्ध लिये हुए होने के कारण सुगन्धित, तथा भार-वहन के कारण मन्द-गति था ।

२५८ फूलो के रस का लोभी वह मलय-पवन दक्षिण दिशा को छोड़कर उत्तर दिशा की ओर आ रहा था । वह नाना वनस्पतियो की सुगन्ध को अपने शरीर मे लिये हुए था अत सुगन्धित था । जब वह नर्मदा नदी पर पहुँचा तो उसने उसके जल का स्पर्श किया अतः शीतल था । साथ ही वह मन्द-मन्द चल

रहा था, क्योकि वह एक अपराधी नायक था जो एक नायिका से रमण करके दूसरी नायिका के पास जा रहा था, जिसने अपने शरीर मे लगे प्रथम नायिका के सुगन्ध आदि लक्षणो को नदी मे स्नान करके धो डाला था और स्वच्छ हो गया था, पर फिर भी जो अपने अपराध के कारण मन मे डर रहा था और डर के मारे धीमे-धीमे चलता था।

मलय-पवन=अपराधी नायक। **दक्षिण दिशा**=एक नायिका। **फूलों की सुगन्ध**=सुगन्धादि सभोग-चिह्न। **उत्तर दिशा**=दूसरी नायिका।

मलयपवन फूलो की सुगन्ध लिये हुए था अत. सुगन्धित, नर्मदा के जल का स्पर्श करने से शीतल, और मानो अपराधी होने के कारण मन्द-गति था।

२५९ मलय-पवन मद्य पिये हुए मतवाले की भाँति चल रहा था। मद्य पिया हुआ मतवाला पुष्पवती (=रजस्वला) नायिका के स्पर्श को भी नही छोड़ता और उसे भी गले लगा लेता है, पैर ठिकाने से नही रखता, लडखडाता है, तथा चलते समय पिये हुए मद्य को वमन भी करता जाता है। वैसे ही मलय-पवन पुष्प-वर्ती (फूलो वाली) लताओ के स्पर्श को नही छोड़ता था। उन्हे गले लगाता चलता था, उसके पैर ठिकाने से नही पडते थे, और ग्रहण किये हुए फूलो के मधु को सुगन्ध के झकोरो के रूप मे उगलता जाता था।

मलय-पवन=मतवाला नायक। **मधु-रस**=मद्य। **पुष्पवती लता**=रजस्वला नायिका। **मन्द-मन्द चाल**=लड़खडाना। **सुगन्ध के झकोरे**=वमन किया हुआ मद्य।

मलय-पवन पुष्पवती लताओं के स्पर्श से सुगन्धित, जल-स्पर्श से शीतल, तथा मतवाला होने के कारण मन्दगति था।

२६०. मलय-पवन मद से उन्मत्त मतवाले हाथी की भाति चल रहा था। जैसे हाथी झरने के जल से अपने को छीट कर, अपने पर सूड से झरने का जल डालकर, पेड़ो से अपने अंगो को रगडता है वैसे ही मलय-पवन झरनो के जल-कणों से युक्त होकर मलयाचल पर स्थित चन्दन के पेडों से टकराता था। जैसे हाथी का शरीर धूल से मलिन हो वैसे ही मलय-पवन पुष्पो के पराग से अतीव धूसरित था, उसमे पराग-कण मिले हुए थे। जैसे हाथी मद को वहाता हो वैसे ही मलय-पवन मकरन्द को वहा रहा था। जैसे हाथी मस्त चाल से चले वैसे ही पवन धीमे-धीमे मस्ती से चल रहा था।

मलय-पवन=मतवाला हाथी। **पराग**=धूल। **मधु**=मद। **चन्दन-वृक्षों से टकराना**=पेड़ो से अपने को रगडना।

मलयपवन झरनो के जल से छीटा जाने के कारण शीतल, पुष्पो का रस और पराग लेने के कारण सुगन्धित, और मस्ती से चल रहा था अतः मन्दगति था।

२६१. मलय-पवन के विपय मे संयोगिनी और वियोगिनी इन दो पक्षो मे यह विवाद उठ खडा हुआ—सयोगिनी कहती थी कि यह मलय पर्वत मे स्थित चन्दन-वृक्षो का सयोगी है इसने उनके सम्पर्क से सुगन्व का गुण ग्रहण किया है अत सुगन्धित और सुखदायी है, उधर वियोगिनी कहती थी कि यह सर्प का भोजन है जिसे सर्प ने भक्षण कर फिर विप के रूप मे उगल दिया है—इसने सर्पो के सम्पर्क से विप का गुण ग्रहण किया है अत. विपेला और दुखदायी है।

टिप्पणी—(१) मलय-पवन चन्दन और सर्प दोनो के सम्पर्क मे आता है क्योकि मलय-पर्वत पर चन्दन और सर्प दोनो रहते है।

(२) सर्प पवन को खाता है, पवन सर्प का भोजन है, ऐसी साहित्य मे प्रसिद्धि है।

वसंत-विहार-वर्णन

२६२. किसी ऋतु मे दिन मे आनन्द होता है, किसी मे रात मे आनन्द होता है और किसी मे सध्या समय आनन्द होता है, ऐसा श्रेप्ठ विद्वान् कहते है। पर दोनो पक्षो मे शुद्ध वसन्त अपने दोनो महीनो मे उन दोनो को (दिन और रात को) एक समान निभाता है जैसे मातृकुल और पितृकुल इन दोनो पक्षो मे शुद्ध पुरुप सव लोगो के साथ समान व्यवहार करता है। वसन्त ऋतु के दोनो महीनो और दोनो पक्षो मे दिन और रात दोनो वरावर आनन्द-दायक होते है।

२६३. वसन्त ऋतु मे रात और दिन, प्रत्येक निमिप और प्रत्येक पल मे, एक समान आनन्ददायी है। आनन्द देने मे उन दोनो मे से कोई एक-दूसरे से पीछे नही रहता। ऐसी इस ऋतु मे प्रिया प्रियतम के गुणो के वश मे होती है और प्रियतम प्रिया के गुणो के वश मे होता है। कोई किसी को अपने प्रेम का अन्त नही दिखाता, दोनो समानरूप से प्रेम का निर्वाह करते है।

२६४ ऐसी वसन्त ऋतु मे श्रीकृष्ण और रुक्मिणी पुष्पो के घरो मे निवास करते थे, पुष्पो को ही ओढते और विछाते थे, और पुष्पो के ही गहने पहनते है। वे आनन्दित होकर पुष्पो के झूलो मे झूलते थे। सारी सखिया भी पुष्पो की शरण मे थी—पुष्पो से छायी रहती थी।

२६५ श्रीकृष्ण और रुक्मिणी को रात्रि के समय सगीत का नाद सुलाता था और प्रभातकाल मे वेद-पाठ की ध्वनि जगाती थी। नित्य रात और दिन मे वाटिकाओ और उद्यानो के विहार होते थे। सुखो को भोगने वाले रुक्मिणी के पति श्रीकृष्ण वसन्त ऋतु मे काम के सुखो को इस प्रकार भोगते थे।

टिप्पणी—नाद मे यहा योगियो के अनाहत नाद का सकेत भी है। नाद और वेद ये योगियो के पारिभापिक शव्द है। मिलाओ—

नाद वेद मग पैड़ जु चारी।
काया महँ ते लेहु विचारी।। जायसी

श्रीकृष्ण का परिवार

२६६. उस समय दपति के मन के भीतर प्रेम व्याप्त हुआ। रुक्मिणी के हाव-भावों ने उनको मोह लिया। कामदेव के अपने अग, जो महादेव के तृतीय नेत्र की अग्नि से जलकर नष्ट हो गये थे, रुक्मिणी के उदर में आकर बसे और इस प्रकार फिर जुड गये।

२६७. वसुदेव पिता के वासुदेव (कृष्ण) पुत्र हुए, उसी प्रकार जगत के पति कृष्ण पिता के प्रद्युम्न पुत्र हुआ। देवकी सास की रुक्मिणी पुत्रवधू हुई और रुक्मिणी सास की रति पुत्रवधू हुई।

२६८ सारे जगत मे वसने वाले लीला-पति भगवान मनुष्य-लीला ग्रहण करके द्वारका मे वसे—रहने लगे। जगत के स्वामी कृष्ण पितामह हुए, प्रद्युम्न पिता हुआ और अनिरुद्ध पौत्र हुआ जिसकी वधू उषा हुई।

२६९. जो नारायण निर्गुण और निर्लेप है उनके यश का वर्णन मै क्या करूगा ? शेपनाग भी वर्णन करते-करते थक गया—पार नही पा सका। इसलिए अव अधिक न कहकर सखियो के सहित रुक्मिणी के, प्रद्युम्न के और अनिरुद्ध के नामो का सक्षेप में कथन करता हूँ।

२७०. रुक्मिणी के नाम—१. लोक-माता, २ सिंधु-सुता, ३. श्री, ४. लक्ष्मी, ५. पद्मा, ६. पद्मालया, ७. प्रमा, ८. दूसरों के घर स्थिर न रहने वाली (चचला), ९. इंदिरा, १० राभा, ११. हरि-वल्लभा और १२. रमा।

२७१. प्रद्युम्न के नाम—१. दर्पक, २. कदर्प, ३. काम, ४. कुसुमायुध, ५. शवरारि, ६. रति-पति, ७. तन-सार, ८. स्मर, ९. मनोज, १०. अनंग, ११. पच-वाण, १२. मन्मथ, १३. मदन, १४. मकरध्वज, और १५. मार।

२७२. अनिरुद्ध के नाम—१. चतुर्मुख, २. चतुवर्ण, ३. चतुरात्मा, ४. विज्ञ, ५ चतुर्युग-विधाता, ६. सर्व-जीव, ७. विश्वकृत्, ८. ब्रह्म-सू ९. नर-वर, १०. हंस और ११. देह-नायक।

२७३. रुक्मिणी की सखियो के नाम—१. सुन्दरता, २. लज्जा, ३. प्रीति, ४ सरस्वती, ५. माया, ६ कान्ति, ७. कृपा, ८. मति, ९. ऋद्धि, १७. वृद्धि, ११. शुचिता, १२. रुचि, १३. श्रद्धा, १४. मर्यादा, १५. कीर्त्ति, और १६. महत्ता।

२७४. ससार के श्रेष्ठ स्वामी श्रीकृष्ण ने गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए मदिरा, रीस, निदा और हिसा-बुद्धि इन चारो को, तथा उसी प्रकार पाचवी गाली को, चाडालिया वना कर दूर कर दिया—चांडालियो के समान अस्पृश्य वना डाला—वे नगर के निकट नही आती थी और नगर के लोग उनको अस्पृश्य समझकर उनसे दूर रहते थे।

वेलि का माहात्म्य

२७५ हे प्राणी ! यदि भगवान का भजन करना, सुन्दर रमणी के रस को समझना, युद्धभूमि मे चढकर शत्रुओ को तलवार से काटना, और दूसरे लोगो की सभा मे बैठकर बोलना चाहता है तो वेलि का पाठ कर।

२७६. जहाँ वेलि का पाठ होता है वहाँ ये बाते होती है—कठ मे सरस्वती, घर मे लक्ष्मी, मुख मे शोभा, भविष्य मे मुक्ति और भुक्ति, हृदय मे ज्ञान और आत्मा मे भगवान की भक्ति।

२७७. छै मास तक पृथ्वी पर सोवे, प्रात.काल उठकर जल से स्नान करे, और अपवित्र वस्तुओ का स्पर्श त्यागकर तथा जितेन्द्रिय होकर नित्य वेलि का पाठ करे तो पति मनचाही स्त्री और स्त्री मनचाहा पति पावे।

२७८ वेलि का पाठ करने से कुमारी कन्या वर को पाती है और विवाहिता स्त्री पुत्र तथा पति के सौभाग्य को प्राप्त करती है और दपति मे आपस मे रुक्मिणी और कृष्ण के समान प्रीति उत्पन्न होती है।

२७९ रुक्मिणी और कृष्ण की वेलि का पाठ करने से मनुष्य इस भूतल पर परिवार, पुत्र-पौत्र और प्रपौत्र, हाथी-घोडे आदि सामग्री तथा द्रव्य-भण्डार आदि से इस प्रकार बढता जाता है जैसे लता बढती जाती है।

२८० किसी घर मे एक साथ अनेक शुभ मगलोत्सव होते देखकर कोई व्यक्ति एक-दूसरे से कहते है—इस व्यक्ति ने कौन-से शुभ कर्म किये हैं जिससे यह वैभव पाया है ? जान पडता है कि वह लोक मे वेलि का पाठ करता है।

२८१ शस्त्र-चिकित्सा, औषधि-चिकित्सा, मत्र-चिकित्सा, तत्र-चिकित्सा—वेदो द्वारा उपदिष्ट की हुई इन चार प्रकार की चिकित्साओ द्वारा उपचार करने से शरीर को जो फल प्राप्त होता है वही वेलि का पाठ करने से होता है।

२८२ आधिभौतिक, आधिदैविक, और आध्यात्मिक ये तीन प्रकार के ताप तथा कफ, वात, पित्त जनित तीन प्रकार के जो रोग शरीर मे होते है वे वेलि का नित्यप्रति पाठ करने से नही होते।

२८३. रुक्मिणी के इस विवाह-मगल का शुद्ध मन के साथ पाठ करने से नित्य कुशल-मगल, सपत्ति और निधियाँ प्राप्त होती है और बुरे दिन, बुरे ग्रह, कठिन दुर्दशा, बुरे स्वप्न और बुरे शकुन नष्ट हो जाते है।

२८४. वेलि का पाठ करने से मणि, मंत्र, तत्र, यत्र आदि के बल से उत्पन्न अनिष्ट तथा डाकिनी, शाकिनी और भूत-प्रेत आदि के डर तथा विविध प्रकार के उत्पात भाग जाते है तथा पृथ्वी, जल या आकाश मे कोई नही छल सकता।

२८५ सन्यासियो ने, योगियो ने, तप करने वालो ने और तपस्वियो ने ऐसे हठयोग और सयम की साधना किस लिए की ? वेलि का पाठ करके ही प्राणी ससार-रूपी समुद्र को तैर कर पार हो गये, निश्चय-ही पार हो गये।

टिप्पणी—पार थिया=कथन पर बल देने के लिए पुनरावृत्ति की गयी है।

२८६ योग क्या है ? यज्ञ क्या है ? जप क्या है ? तप क्या है ? तीर्थ क्या है ? व्रत क्या है ? दान क्या है ? आश्रम-धर्म क्या है ? इनसे क्या लाभ ? ये सब अनावश्यक है। हे दीन मन ! क्यो कलपता है ? मुख से कृष्ण और रुक्मिणी के इस विवाह-मंगल का पाठ कर। फिर कुछ भी करने की आवश्यकता नही होगी।

२८७. कवि गगा को संबोधन करके कहता है—हे गगा ! तू हरि और हर दोनो को भजती है, जो तैरना नही जानते उनको तू डुबा देती है, और फिर तू एक ही स्थान में वहती है—एक ही स्थान मे सुलभ है। इसलिए तू गर्व मत कर। हम तुझे वेलि की वरावरी मे नही रख सकते, जो हरि को ही एकनिष्ठ होकर भजती है, जो सव को तारती है (चाहे तैरने वाला हो चाहे न हो) और जो सब स्थानो मे सुलभ है।

'वेलि' का रूपक

२८८. यह 'वेलि' वेलि (=लता) के समान है। इसका बीज भागवत-पुराण है। पृथ्वी पर दास पृथ्वीराज का मुख वह स्थान है जिसमे यह बीज बोया गया। मूल-पाठ इसकी डालियां हैं। अर्थ इसकी जड़े है। श्रोताओ के स्थिर (एकाग्रता से सुनने वाले) कान मडप है जिनके ऊपर यह चढ़ी रहती है। सुख इसकी छाया है।

२८९. अक्षर इसके पत्ते (अकुर)है। दोहले (पद्य) इसके दल(बड़े पत्ते) है। भगवान का यश इसकी सुगध है। नव रस इसके तन्तु है जो रात-दिन वढते है। साहित्य-रसिक इसके भ्रमर है। भक्ति इसकी मंजरी है। मुक्ति इसका फूल है। और परमानन्द का भोग (अनुभव) इसका फल है।

२९०. कल्प-लता, कामधेनु, चितामणि और सोम-लता ये चारो पृथ्वीराज के मुख-कमल मे वेलि के अक्षर-समूह के रूप मे एकत्र होकर, इस कलियुग में, पृथ्वी के ऊपर प्रकट हुई है।

२९१. यह पृथ्वीराज कृत वेलि है, अथवा समस्त निगमागमो तक पहुंचाने वाली सुप्रसिद्ध पाच प्रकार की पगडंडी है, अथवा पृथ्वी पर मुक्ति तक ले जाने वाली नसेनी लगायी गयी है, या स्वर्गलोक को ले जाने वाली सोपान-श्रेणी है ?

काव्य की प्रशंसा

२९२. मेरे मुख से निकले हुए वचन-रूपी कणों को छांटने के लिए न तो सु-कवि रूपी चालनी समर्थ है और न कु-कवि रूपी छाज, क्योकि वे सव-के-सव पहले से ही छंटे हुए है। उनको रसिक जन पूर्ण-रूप से, विना किसी को छोडे, अपना लेगे। जिस प्रकार मोतियों का कोई प्रेमी जव मोती खरीदने जाता है और

हाथ मे लेने पर सबको एक-एक से बढकर अनुपम देखता है तो सभी को खरीद लेता है, किसी को पीछे नही छोडता ।

टिप्पणी— सुकवि-कुकवि इ० =सुकवि को चालनी इसलिए कहा है कि चालनी टूटे-फूटे कणो को फेककर बडे-बडे दानो को रख लेती है; उधर सूप बडे-बड़े दानो को फेक कर असार कणो को रख लेता है।

२९३. मेरी यह कविता इस पृथ्वी पर रमणी के समान नख से चोटी पर्यन्त अलकारो से सजी है—जैसे रमणी शरीर मे नख से शिखा तक गहने पहन ले वैसे ही मेरी यह कविता आदि से अन्त तक काव्य के अलकारों से भरी है। यह कुलटा नारी की भाँति जगत-भर के गले लगी रहती है—कुलटा नारी सभी से आलिंगन करती है, मेरी कविता सब लोगो के गले का हार बनी है—सब लोग इसे प्रेम से पढते है। कुलटा के समान होकर भी यह सती की भाति दोषो को सहन नही करती—जैसे सती दोष को अपने पास नही फटकने देती वैसे ही यह किसी काव्य-दोष को पास नही आने देती।

२९४ मेरी कविता का यह रहस्य है कि वह चाहे सस्कृत मे रची जाय चाहे प्राकृत मे, एक-सा आनन्द देती है, जिस प्रकार रस देने वाली रमणी रमण करते समय, चाहे ऊँची शय्या हो चाहे नीची भूमि, समान रूप से आनन्द-दायिनी होती है।

कवि की रसीली कविता =रसदायिनी सुन्दरी। **संस्कृत-प्राकृत भाषाएँ =** ऊँची शय्या और भूमि।

टिप्पणी—भाषा इ०—अन्यार्थ—चाहे भाषा में रची जाय, चाहे सस्कृत मे और चाहे प्राकृत मे। **सेज इ०—अन्यार्थ—**चाहे शय्या हो, चाहे झूलता हुआ छपर-पलग हो और चाहे भूमि हो।

२९५ हे रसिक ! यदि वेलि के त्रिविध प्रकार के रस की इच्छा करते हो तो मेरा कथन सुनो। इतनी बाते पूरी होने पर पूरा रस मिलेगा, इनके कम होने पर रस भी कम प्राप्त होगा।

२९६ पौराणिक, ज्योतिषी, वैद्य, सगीतज्ञ, तार्किक, योगी, चारण, भाट, कवि और भाषा-विद्वान—इन सबको इकट्ठे करो तो 'वेलि' का पूरा अर्थ कहा जा सके।

कवि का विनय

२९७. ऊपर कवि ने अपनी कविता की बडाई की है। इस पद्य मे वह कहता है कि मेरी कविता गुणमयी है पर इसमे मेरा कोई श्रेय नही है।

मैने अनेक महापुरुषो के मुख से वर्णन किये जाते हुए हरिगुणो को सुना और सुनकर उनको हृदय मे रख लिया। दूसरो से इस प्रकार ग्रहण किये हुए गुणो का इस कविता मे फिर वर्णन कर दिया। यही मेरी कविता की श्रेष्ठता

का रहस्य है। इसमे मेरा अपना कुछ भी नही, सब-कुछ दूसरो का प्रसाद है। संसार के लोग मेरी इस कविता को बडों का प्रसाद और आदरणीय कहेगे पर दुष्ट लोग दूसरो की जूठन और आतमा का व्यर्थ का श्रम बतावेगे।

पाठान्तर—आतम सम इ०—अधम लोग इसे जूठन और अपने समान अर्थात् अधम (=निकृष्ट) बतावेंगे।

२९८. मेरे ये वचन (=कविता) अनेक दोपो से भरे है। परन्तु हरि-यश के संपर्क से साहस प्राप्त करके चले है और आपके कर्ण-रूपी तीर्थ मे, अपने दोपो को दूर करने के उद्देश्य से, आये है। हे पंडितो! मेरी विनय पर ध्यान देकर आप इनको दोप-मुक्त कर दे। आप तीर्थ के समान दोप-हारी है; आपके कानों मे पड़कर मेरी कविता निर्दोप हो जायगी। जैसा कहा है—

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

सदोष कविता=पापो से युक्त यात्री। **पंडितों के कर्ण**=तीर्थ।

२९९. रुक्मिणी से रमण करते समय जगत के स्वामी कृष्ण के रहस्य-रस (एकान्त-विहार) का जो वर्णन मैने किया है उसमे कोई मिथ्या कथन नहीं है। मैंने अपनी ओर से कल्पित कुछ नही कहा है। सरस्वती रुक्मिणी की साथ रहने वाली सखी है। उसने मुझे बताया और वैसा ही मैने वर्णन कर दिया।

टिप्पणी—सरसइ इ०—ऊपर पद्य नं० २७३ देखिये।

३००. हे केशव! तुम्हारे और तुम्हारी प्रिया के चरित्रो का वर्णन कौन कर सकता है? मेरे इस वर्णन मे जो कुछ अच्छा है वह सरस्वती की कृपा है और जो कुछ बुरा है वह मेरा अज्ञान है।

(ख) टिप्पणियाँ

१. चार सु अेही इ०—प्रथम अर्थ—यही चारो मंगलाचरण है—(१) परमेश्वर, (२) सरस्वती, (३) सद्गुरु, (४) माधव। द्वितीय अर्थ—यही चार सुन्दर मगलाचरण (मगल चारु) है—(१) परमेश्वर को प्रणाम करना, (२) सरस्वती को प्रणाम करना, (३) सद्गुरु को प्रणाम करना, (४) माधव का सकीर्त्तन करना।

मंगलाचरण—दडी के अनुसार काव्य के आरम्भ मे आशीर्वाद, नमस्कार या वस्तु-निर्देश होना चाहिए।

आशीर् नमस्क्रिया वस्तु-निर्देशो वापि तन्मुखम्।

तदनुसार यहाँ प्रथम दो चरणो मे नमस्कार और तीसरे चरण मे वस्तु-निर्देश है।

यह भी कहा गया है कि शास्त्र के आरभ मे मगल, अभिधेय, प्रयोजन और सवध का कथन होना चाहिए—

मंगलं चाभिधेयं च सवधश् च प्रयोजनम्।
चत्वारि कथनीयानि शास्त्रस्य धुरि धीमता॥

तदनुसार प्रथम पद्य के प्रथम दो चरणो मे मगलाचरण किया गया है, तीसरे चरण मे तथा आगे के पद्यो मे अभिधेय (वर्ण्य विपय) का निर्देश किया गया है, और सातवे पद्य मे प्रयोजन तथा अभिधेय और प्रयोजन का सवध वताये गये है।

२. **कठ चीत्र-पूतळी**=(१) काष्ठ-फलक मे चित्रित मूर्ति, अथवा (२) काष्ठ की वनी मूर्ति।

४. **वाउआ**—(१) वात-ग्रस्त (वातुक) अत. वकवादी (सवोधन का रूप)। **अन्यार्थ**—(२) हे जीव। **पाठान्तर**—वाउअउ; इस अवस्था मे दूसरे चरण का अर्थ होगा—तू वाचाल हो गया है या वावला?

वाउआ का प्रथम आ ह्रस्व-पढा जायगा। राजस्थानी मे आ की ह्रस्व ध्वनि भी होती है।

मन सरिसउ—मन की गति वहुत तेज है, वह क्षण भर मे कही-का-कही पहुँच जाता है।

५. **बि-बि जिह**—सर्प के मुख मे दो जिह्वाए होती हे। इसी कारण उसको द्विजिह्व भी कहा जाता है।

त्रीकम—त्रि+क्रम, विष्णु ने तीन पैरो से समस्त विश्व को नाप लिया था।

अन्यार्थ=त्रिविक्रम (के यश) का।

८. एक सँथ—अन्यार्थ—(२) एक ही रीति वाले (३) एक ही बात कहने वाले (एक-संस्तव)।

ते एकसँथ—अन्यार्थ—(२) उन सबने पहले एक ही कृष्ण का स्तवन किया है पर मै पहले रुक्मिणी का वर्णन करता हूँ, क्योकि शृगार रस का ग्रंथ बनाने वाले को पहले नायिका का वर्णन करना चाहिए। साहित्यदर्पण मे कहा है—आदौ वाच्यः स्त्रिया राग' (परिच्छेद ३)।

९. जिवड़ी—टीकाकारो ने इस शब्द का अर्थ जिस प्रकार (=इस प्रकार) भी किया है।

पूत हेत इ०—अन्यार्थ—फिर देखने पर (विचार करने पर) पुत्र के लिए पिता की अपेक्षा माता विशेष रूप से बडी जान पडती है (हेत=लिए)। मिलाओ—पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते।

१०. सिरहर—सिरधर=शिरोधार्य, मान्य। **अन्यार्थ**—शिरोमणि, श्रेष्ठ।

लक्ष्मीवल्लभ और तैसीतोरी ने इस शब्द का मूल शिखर बताया है—शिखर—सिहर—सिरहर (र का आगम)।

सिरहर इ०—प्राचीन राजस्थानी काव्य मे उर्दू की भाँति उलटा (षष्ठी तत्पुरुष) समास भी होता है अर्थात् समास मे भेद्य भेदक से पहले भी आ जाता है। जैसे—सुत-वसुदेव=वसुदेव-सुत (पद्य ३३)।

११. प्रथम चरण में—१८ के स्थान पर १६ मात्राएँ ही है। **ताइ**—में ता का आ ह्रस्व पढा जायगा।

१२ बाळक-गति—(१) बाल्यावस्था मे। (२) बालक्रीडा करती हुई

चउ—संबध कारक का यह प्रत्यय मराठी मे अब भी प्रयुक्त होता है। **बिहुँ पान**—अवस्था मे छोटी होने के कारण दो पत्तों वाली छोटी लता की उपमा दी गयी है। **कनक-वेलि**—रुक्मिणी के शरीर का रंग सुवर्ण जैसा है। मिलाओ—

ऊपर मेरु मनो मनरोचन। स्वर्णलता जनु रोचति लोचन॥ (केशव)

१३. बत्तीस लक्षण

श्रेष्ठ और सर्वांग-सुदर पुरुष के बत्तीस लक्षण बताये गये है। साहित्य में बत्तीस लक्षणो से युक्त पुरुष के उल्लेख मिलते है और लोक मे भी सुनने मे आते है। बत्तीस लक्षणो की कल्पना दो प्रकार की मिलती है—(१) सद्-गुणो के रूप मे और (२) शारीरिक विशेषताओ के रूप मे। इनमें दूसरा प्रकार ही विशेष प्रसिद्ध है। सामुद्रिक-शास्त्र और बृहत्संहिता आदि ग्रंथों में बत्तीस लक्षणों को गिनाया गया है और उनकी सूचियाँ दी गयी है। सूचियो के नामों मे सर्वत्र मतैक्य नहीं है। आगे चार-पाँच सूचियाँ दी जाती है जो निम्नलिखित आधारो से संकलित की गयी है—

(१) राधाकान्त देव बहादुर के शब्द-कल्पद्रुम कोप के 'सामुद्रिक' शीर्पक से (सकेत Ks)।

(२) वराहमिहिर कृत वृहत्सहिता से (सकेत Bs)।

(३) उक्त शब्द-कल्पद्रुम कोप के 'द्वात्रिंशत् लक्षण' शीर्पक के नीचे उद्धृत हरिभक्तिरसामृतसिंधु की टीका से (सकेत Kd)

(४) राजस्थानी के अेक हस्तलिखित ग्रंथ से (सकेत Ra)

(५) सामुद्रिक की एक हस्तलिखित प्रति से (सकेत Ss)।

इन सूचियो मे गिनाये गये वत्तीस लक्षण पुरुपो के है। स्त्रियो के वत्तीस लक्षण न तो सामुद्रिक मे मिले और न वृहत्सहिता आदि मे। संभवतः श्रेष्ठ पुरुप के वत्तीस लक्षणो के साम्य पर ही स्त्री के वत्तीस लक्षणो की कल्पना कर ली गयी और सर्वांगसुदर स्त्री को भी वत्तीस लक्षणो से युक्त कहा गया। सूचियो मे दिये गये अधिकाश लक्षण स्त्री और पुरुप दोनो पर लागू हो सकते है पर कई-एक ऐसे भी है जो केवल पुरुपो पर ही लागू होते है। ऐसे स्थानो मे स्त्री के वत्तीस लक्षण गिनाते समय उचित परिवर्तन कर लेना होगा।

वत्तीस लक्षणो मे वताया गया है कि पुरुप के अगो मे क्या-क्या विशेपताए होनी चाहिए। इनको ७ विभागो मे वॉटा गया है—

(१) तीन अग गभीर या गहरे होने चाहिए, (२) छै अग उन्नत या ऊँचे या उठे हुए होने चाहिए, (३) तीन अग (अन्यमतानुसार ४ अग) ह्रस्व या खर्व या लघु या छोटे होने चाहिए, (४) पाँच अग दीर्घ या लंबे होने चाहिए, (५) तीन अग विस्तीर्ण या चौडे या मोटे होने चाहिए, (६) पाँच अग (या अन्यमतानुसार ४ अग) सूक्ष्म या पतले होने चाहिए और (७) सात अग रक्त-वर्ण या लाल रग के होने चाहिए।[1]

[1]
१. राता सात, र ऊँच छन्न, गुहिर जाणियै तीन।
पाँच दीह, पँच पातळा, तीन-तीन लघु-पीन॥

२. पञ्च-दीर्घं चतुर्-ह्रस्व चतुः-सूक्ष्म पडुन्नतम्।
सप्त-रक्त त्रि-गम्भीर त्रि-विशाल प्रगस्यते॥
—सामुद्रिक (हस्तलिखित)

३. पञ्च दीर्घ, चतुर् ह्रस्व, पञ्च सूक्ष्म, पडुन्नतम्।
सप्त रक्त, त्रि-विस्तीर्णं, त्रि-गम्भीर प्रशस्यते॥
—शब्द-कल्पद्रुम कोष (सामुद्रिक)।

४. त्रिपु विपुलो, गम्भीरस् त्रिष्वेव, पडुन्नतश्, चतुर्-ह्रस्वः।
सप्तसु रक्तो राजा, पञ्चसु दीर्घश् च सूक्ष्मश् च॥
बृहत्संहिता।

१. **गंभीर (३)**
(१) नाभि (२) स्वर (३) सत्त्व Bs Ra Ss (बुद्धि Ks)।

२. **विस्तीर्ण (३)**
(१) वक्ष (२) ललाट (३) शिर Ks Ra Ss (कटि Kd वदन Bs)।

३. **ह्रस्व (३ या ४)**
(१) ग्रीवा (२) टाँगे (३) इंद्रिय (कर्ण Ks) (४) पीठ Ks Bs

४. **(सूक्ष्म ४ या ५)**
(१) त्वचा (अस्थि Ss) (२) केश (३) दंत (४) अंगुली (५) **रोम** Kd (? Ra) (नख Ks ?)।

५. **दीर्घ (५)**
(१) बाहु (२) नासिका (३) नेत्र (४) स्तनान्तर Ra Bs Ks (हनु Kd Bs) (५) जानु Ra Kd Ss (कुक्षि Ks हनु Bs)।

६. **उन्नत (६)**
(१) वक्ष (२) नासिका (३) ललाट Ra Ks Ss (नखKd Bs) (४) स्कध Ra Kd Ss(मुख Bs Kd शिर Ks) (५) कक्षा Ra Bs Ss(दंत Ks मुख Kd) (६) कुक्षि Ra Ss(कृकाटिका Bs नेत्र Ks कटि Kd)।

७. **रक्त (७)**
(१) पद-तल (२) कर-तल (३) नख (४) अधर (५) तालु (६) जिह्वा (७) नेत्रान्त (नेत्र-कोण)।

नाभिः स्वरश् च सत्त्वं च **गभीरं** त्रयमुच्यते।
विस्तीर्णं त्रितयं प्रोक्तं ललाटं हृदय शिरः ॥१॥
त्रयं ह्रस्वं समाख्यातं ग्रीवा जङ्घे च मेहनम्।
पञ्च दीर्घं भुजे नासा नेत्रे जानू स्तनान्तरम् ॥२॥
केशाङ्गुलि - त्वचा - दन्ता करजा. **सूक्ष्म-पञ्चकम्**।
नासा भालमुरः स्कन्धः कक्षा कुक्षिः **षडुन्नतम्** ॥३॥
तालुकाधर - नेत्रान्ता नखा जिह्वा तथैव च।
पाणितले पादतले **सप्त रक्तं** समीरितम् ॥४॥
इत्येतानि प्रशस्तानि **द्वात्रिंशत्** - सख्यकानि वै।
लक्षणानि समुक्तानि नराणा शास्त्र-कारिभिः ॥५॥

लक्षण	लक्षण-संख्या	शब्दकल्पद्रुम सामुद्रिक Ks	बृहत्संहिता Bs	हरिभक्ति-रसामृत-सिंधु टीका Kd	राजस्थानी Ra
७ रक्त या लाल	१	पद-तल	=	=	=
	२	कर-तल	=	=	=
	३	नख		=	=
	४	अधर	=	=	=
	५	जिह्वा	=	=	=
	६	तालु	=	=	=
	७	नेत्रान्त	=	=	=
३ गंभीर या गहरे	८	नाभि	=	=	=
	९	स्वर	=	=	=
	१०	बुद्धि	सत्त्व	सत्त्व	सत्त्व
३ विस्तीर्ण या चौड़े या मोटे	११	वक्ष	=	=	=
	१२	ललाट	=	=	=
	१३	शिर	वदन	कटि	शिर
५ दीर्घ या लंबे	१४	बाहु	=	=	=
	१५	नासिका	=	=	=
	१६	नेत्र	=	=	=
	१७	स्तनान्तर	स्तनान्तर	हनु	स्तनान्तर
	१८	कुक्षि	हनु	जानु	जानु
६ उन्नत या ऊंचे या उठे हुए	१९	वक्ष	=	=	=
	२०	नासिका	=	=	=
	२१	ललाट	नख	नख	ललाट
	२२	नेत्र	कक्षा	कटि	कक्षा
	२३	सिर	मुख	मुख	कुक्षि
	२४	दन्त	कृकाटिका	स्कंध	स्कंध

लक्षण	लक्षण-संख्या	शब्दकल्पद्रुम सामुद्रिक Ks	बृहत्संहिता Bs	हरिभक्त-रसामृत-सिंधु टीका Kd	राजस्थानी Rs
५ सूक्ष्म	२५	त्वचा	=	=	=
या	२६	केश	=	=	=
पतले	२७	दंत	=	=	=
	२८	अंगुली	=	=	=
	२९	नख	=	रोम	(?)
३ (या ४)	३०	ग्रीवा	=	=	=
ह्रस्व,	३१	जंघा (टाँगे)	=	=	=
खर्व,					
लघु					
या	३२	कर्ण	इन्द्रिय	इन्द्रिय	इन्द्रिय
छोटे	[1]३३	पीठ	पीठ	×	×

(१) ब्रजवल्लभ मिश्र कृत 'पदार्थ-संख्या-कोप' मे ३२ लक्षण इस प्रकार दिये गये है—

अकाम, अभ्यास, अल्पनिद्रा, गुणपूर्ण, गुरुभक्ति, जितेन्द्रिय, दातृत्व, दास-विभाग, देवपूजन, धर्मात्मा, धीरज, परम ज्ञान, परस्त्री-त्याग, पराक्रम, पितृ-भक्ति, पुष्टता, पुष्टिविद्या, पूर्णता, प्रियवाद, मातृभक्ति, लोकेश, वर विद्या, शास्त्र-ज्ञान, शील, शुच्यात्मा, सत्य, सत्संग, स्वच्छता, स्व-मान, स्वरूप, स्वल्पाहार।

(२) राजस्थानी भाषा के 'वात-वणाव' नामक ग्रंथ मे बत्तीस लक्षण इस प्रकार गिनाये गये है—सत, शील, गुण, रूप, विद्या, तप, तेज, यश, उद्यम, लज्जा, धैर्य, चित्तौदार्य, अल्पाहार, राज-सम्मान, शूर, साहसी, बलवान, चतुर, ज्ञानी, देव-भक्त, परोपकारी, दयावंत, विचक्षण, दाता, बुद्धिमान, प्रामाणिक, दौलतवंत, सफल-नायक, भोगी, जोगी, भुजायण, भाग्यवंत।

[1] Ks और Bs के अनुसार लक्षणों की संख्या ३३ होती है।

Sc (सामुद्रिक की हस्तलिखित प्रति) के अनुसार सूक्ष्म चार होते है (केश, दंत, अंगुलि-पर्व और अस्थि) और खर्व या लघु भी चार (ग्रीवा, टाँगे, इंद्रिय और पीठ)।

(३) श्री माताप्रसाद गुप्त ने सर्वांगी के आधार पर वत्तीस लक्षण इस प्रकार दिये है—

प्रमाणं सुकृत रूपं शीलं कुल च पराक्रम। सत्य शौच (च) विनय वदितं बुद्धिवन्तो विचक्षणं। क्रियावैशनत्र विद्यावन्तो स्वजनो शास्त्रज्ञान खित्रियो गुण सपुण्यौ निर्लोभी च दयाल विश्वासी परोपकारी जितेंद्री दातारो धर्मिष्ठो स्वल्पकामश्च अल्पाहार स्वल्पनिद्रा गुरुभक्ता (तो) मातापिताभक्ता (तो) बुद्धिप्रकासवतो।

(४) एक और मत के अनुसार वत्तीस लक्षण इस प्रकार हे—१ लक्षण सिंह का, ६ लक्षण श्वान के, ३ लक्षण खर के, ३ लक्षण सर्प के, १ लक्षण वक का, ६ लक्षण मयूर के, ५ लक्षण काग के, ४ लक्षण कुक्कुट के, गुरुभक्ति, पितृ-भक्ति, मातृभक्ति।

१४. राजति इ०—अन्यार्थ—(२) वे राजकुमारियाँ राजा के आगन मे इस प्रकार शोभा देती थी जिस प्रकार निर्मल आकाश मे तारे शोभा देते है।

वीरज=वीरज=रज से रहित, निर्मल।

पदमणी कळी—छोटी अवस्था की होने के कारण पद्मिनी न कह कर पद्मिनी की कलियो से उपमा दी गयी है। उडुगण की (और द्वितीया के चन्द्र की) उपमा भी ऐसी ही है।

परि—स० परि=समान। मिलाओ—तिल-तिल वरख-वरख परि जाई (जायसी, नागमती खंड)। वरि इसका दूसरा रूप हे।

१५. सुषुप्ति इ०—जीव की चार अवस्थाए कही गयी हे--(१) जागर्ति (२) स्वप्न (३) सुषुप्ति, गहरी निद्रा (४) तुरीया (चौथी), ब्रह्मज्ञान की अवस्था।

१७. बहु विळखी इ०—बचपन के साथी के विछुडते हुए बहुत दुख होता है, बाल्यकाल का प्रेम जैसा पवित्र, मनोहर और दृढ होता है वैसा पीछे का नही।

आवंतउ जाणे—पुराने साथियो से विछुड़ कर नये साथियो मे जाने की भावना से अशान्ति का होना स्वाभाविक है।

१९. गुण इ०—रुक्मिणी के गुण बढ़ गये, चाल सुन्दर हो गयी, मन भी बढ गया।

२१ ऊरध सांस—यौवनागम के साथ सास की गति मे तीव्रता आ जाती है।

२२. मेन—यह शब्द संभवत· मदन से बना है। मदन या काम का रग श्याम माना गया है। **पाठान्तर**—मीन।

२३. **सरवरि**—इस शब्द का अर्थ सरोवर भी है और रात्रि (शर्वरी) भी।

२४. **दिखाळिया**—दूसरा रूप दिखाड़िया।

स्यामता—हाथी के मद का रंग श्याम माना गया है।

२६. **करभ**—छोटी अवस्था की समानता बताने के लिए हाथी के स्थान पर 'कलभ' कहा गया है।

आठ व्याकरण—

प्रथम मत—(१) ब्राह्म (२) ऐंद्र (३) याम्य (४) रौद्र (५) वायव्य (६) वारुण (७) सावित्र (८) वैष्णव। (भविष्य-पुराण, ब्राह्मपर्व)

द्वितीय मत--(१) ऐंद्र (२) चाद्र (३) कौमार (४) शाकटायन (५) सारस्वत (६) काशकृत्स्न (७) आपिशल (८) शाकल। (लघु-त्रिमुनि-कल्पतरु)

तृतीय मत—(१) ऐंद्र, (२) चाद्र, (३) पाणिनीय, (४) जैनेन्द्र, (५) शाकटायन, (६) अमर, (७) आपिशल, (८) काशकृत्स्न।

चतुर्थ मत—(१) ऐंद्र (२) चाद्र (३) माहेश्वर (पाणिनीय) (४) सारस्वत (५) कौमार (६) जैनेंद्र (७) शाकटायन (८) सौपद्म या कालाप या मुग्धबोध। (आठवाँ नाम संदिग्ध है)

पुराण—इनकी सख्या अठारह है; छै विष्णु से सबंधित है, छै ब्रह्मा से और छै शिव से। नाम इस प्रकार है—

विष्णु, भागवत, वामन, मत्स्य, कूर्म, वराह,
ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, पद्म, ब्रह्मवैवर्त, नारद, गरुड,
स्कंद, वायु, लिंग, अग्नि, मार्कण्डेय, भविष्य।

स्मृति—इनकी सख्या भी १८ कही गयी है। इनमे मनु, याज्ञवल्क्य और पराशर स्मृतियाँ प्रमुख हैं। अन्य स्मृतियों के नाम—अगिरा, अत्रि, उशना, गौतम, दक्ष, वृहस्पति, यम, वसिष्ठ, विष्णु, व्यास, शंख, सवर्त, हारीत, आपस्तंब, कात्यायन कश्यप, च्यवन, देवल, नारद, भरद्वाज, लिखित, शातातप इ०।

शास्त्र—इनकी सख्या छै है—(१) न्याय (२) वैशेपिक (३) सांख्य (४) योग (५) मीमासा (६) वेदान्त। इन्हे दर्शन भी कहते है।

वेद—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद।

अंग—(१) शिक्षा (२) व्याकरण (३) छद (४) निरुक्त (५) ज्योतिप (६) कल्प (गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्र और धर्मसूत्र)।

चतुर्दश विद्याएं—चार वेद, छै अंग, पुराण, स्मृति, न्याय, मीमासा। चार उपवेदो को जोड़ देने से १८ विद्याएं बनती है।

चौंसठ कलाएं—इनके नाम भिन्न-भिन्न ग्रंथो मे भिन्न-भिन्न मिलते है।

संख्या भी कही चौसठ, कही वहत्तर, कही चौरासी और कही छयासी वतलायी गयी है ।

२९. श्रेष्ठ वर की प्राप्ति की इच्छा से कुमारी कन्याए गौरी की या हरगौरी की पूजा करती है । राजस्थान मे होली के दूसरे दिन से चैत्र शुक्ल चतुर्थी तक कन्याए गौरी-पूजन करती है ।

३४ **मावीत्र**—मातृ+पितृ । राजस्थानी माईत शब्द अग्रेजी parent का पर्याय है, उसका अर्थ माता भी होता है और पिता भी । अनेक-वचन मे वह parents की भाति माता-पिता दोनो का अर्थ देता हे ।

म्रजाद—डिगल मे अगले वर्ण पर का रेफ वहा से हटकर पूर्व वर्ण के साथ प्राय· सयुक्त हो जाता हे । जैसे—कर्म—क्रम, धर्म—ध्रम, दर्प—द्रप ।

वरि—परि का दूसरा रूप ।

वरसाळू वाहळा—वरसाती नाला थोडी वर्पा से ही उमड़कर चलने लगता हे । मिलाओ—क्षुद्र नदी भरि चलि इतराई (तुलसी, मानस, किष्किधाकाड) ।

३५. **दमघोख**—**पाठान्तर नन्द-घोख**=दमघोप का नंद न या पुत्र शिशुपाल; **अन्यार्थ**—नदघोप पुरोहित का नाम था ।

४० **मोर**—तोरण मे मोर आदि पक्षी वनाये जाते है ।

४१. **जान**—इसकी व्युत्पत्ति स० यान, अप० जाण, से भी की जाती है ।

दीध निलाटि कर—दूर की वस्तु को देखते समय आखो के ऊपर की ओर ललाट पर हाथ रखकर देखना स्वाभाविक चेष्टा हे ।

४४. **वीर वटाऊ ब्राह्मण**—एक साथ तीन सवोधन रुक्मिणी की आतुरता को व्यक्त करते है । राम द्वारा समुद्र का वाधा जाना सुनकर रावण आतुर होकर समुद्र के दस नाम एक साथ वोल उठा था—

वाधेउ वन-निधि नीर-निधि जलधि सिंधु वारीस !
सत्य तोय-निधि कंपती उदधि पयोधि नदीस !

५८. **करि कमळ**—**पाठान्तर कर-कमळ**=कमलो के समान हाथो से सिर पर कलसो को थामे हुए ।

जंगम-तीरथ—(१) चलते फिरते तीर्थ—ब्राह्मण (२) जगम और तीर्थ सन्यासियो के दो भेद भी होते है ।

तीरथ-तीरथ—**अन्यार्थ**—घाट-घाट पर तपस्वियो के रूप मे चलते-फिरते तीर्थ वैठे थे और निर्मल जल पर पवित्र ब्राह्मण वैठे थे ।

५१. **संप्रति-सांप्रत**—वर्तमान काल का, वर्तमान, प्रत्यक्ष ।

५५ भगवान के मुख से देववाणी सस्कृत भाषा का प्रयोग करवाया गया है । कार्य और पत्र शब्द व्याकरणानुसार शुद्ध नही है । कार्यं और पत्रं होना

चाहिए। इस सम्बन्ध मे एक प्राचीन टीकाकार का नीचे लिखा आक्षेप तथा दूसरे का निम्नलिखित उत्तर उल्लेखनीय है—

इहा चारणे एकइं दूखण दिखाड़चउ—

चूकउ एकणि ठामि पृथीमल, वदतउ रुकमणि-वेलि-रस।
सँसकृत मांहि बोलिया माहव, विप्र मूढ किम कियउ वस ?॥

तत्र धीर कवि प्रतिवचन—

चूकउ नहु पृथ्वीदास चतुर कवि वदतउ रुकमणि-वेलि रस।
सँसकृत वाणि वदइ माहव सँगि विप्र मूढ तउ थियइ वस॥

५७. **आनन्द के लक्षण**—मिलाओ—

मन प्रसादो लाभादेर् हर्षोऽश्रु-स्वेद-**गद्गदाः**।
हर्षस् त्विष्टावाप्तेर् मनःप्रसादोऽश्रु-**गद्गदादि**-कर.। (साहित्यदर्पण)
प्रियागमनादेर् हर्षो **रोमांचादि**-कृत्। (हेमचन्द्र)
तम् (हर्षम्) अभिनयेन् नयन-वदन-प्रसाद-प्रिय-भापणालिगन-कण्टकित-पुलकितास्र-स्वेदादिभिरनुभावै। (भरत-नाट्यशास्त्र)

५९. **वळि**—प्रहलाद का पुत्र प्रसिद्ध दैत्यराज जिसको भगवान ने वामन रूप धारण कर छला था।

कपिळा धेनु—भूरे रंग की गाय जो सीधी-सादी हो। यह विशेष पवित्र मानी जाती है।

६०. **साळिगराम**—गंडकी नदी मे पाये जाने वाली काले रंग की वटिकाएं जो विष्णु की मूर्त्ति मानी जाकर पूजी जाती है।

६१ **हिरणाकस**—हिरण्याक्ष; यह हिरण्यकश्यप का छोटा भाई तथा प्रह्लाद का चाचा था। यह पृथ्वी को लेकर रसातल मे चला गया था। विष्णु ने वराह अवतार लेकर इसे मारा और पृथ्वी का उद्धार किया। आधुनिक राजस्थानी में हिरणाकुस हिरण्यकश्यप के लिए प्रयुक्त होता है।

६२ **महण मथे इ०**—अमृत की प्राप्ति के लिए देवताओं और असुरो ने समुद्र को मथा। उस समय मंदराचल को मथानी और वासुकी को नेती वनाया था। समुद्र को मथते समय उसमे से १४ रत्न निकले जिनमे लक्ष्मी भी एक थी। लक्ष्मी ने विष्णु का वरण किया।

६३. **त्रिकुट गढ़**—लंका त्रिकूट पहाड के तीन शिखरो पर वसी हुई मानी गयी है।

६४. **वाहर करना**—किसी को वचाने के लिए चढकर आना या किसी को छुडाने के लिए चढकर पीछे जाना।

६८. **सुग्रीव सेन इ०**—भागवत मे घोडो के नाम इस प्रकार दिये है—सुग्रीव, शैव्य, मेघपुष्प, वलाहक। कुछ टीकाकारों ने सुग्रीव और सेन को दो

गिनकर समवेग को छोड दिया है और उसका अर्थ समान वेग से (चलते हे) किया है। *वलाहक* का अर्थ बादल भी किया गया हे (बादल-जैसे)।

७० **छीक**—वैसे छीक का होना अशुभ माना जाता है पर चिन्ता मे छीक होना शुभ समझा जाता है क्योकि यह चिंता का नाश सूचित करता हे।

७१ **चळपत्र-पत्र**—पीपल का पत्ता बरावर हिलता रहता हे।

सकइ न रहइ न इ०—विरोधी भावो की समकालिक स्थिति।

८५ **कुमार-मग**—इसे शिशुमार-चक्र भी कहते हे।

८७ **टीकाकारो के अर्थ** (१) कमनीय कहता मनोहर सोभतउ, कुकुम-कउ, आपणइ हाथ-सू मुख-कइ विषइ तिलक कीधउ छइ। ति वारइ रुक्मिणीजी-रइ मुख मइ महादेवजी-रा मुख-का-सा लक्षण दीखण लागा।' "कुकुम-का तिलक-कू महादेवजी-कइ तीजइ नेत्र अग्नि तिण-की ओपमा। अनइ रुक्मिणी-का निलाट-कू महारुद्र-कइ निलाट चद्रमा छइ तिण-की ओपमा जाणवी।

(२) प्रतखि महादेव-का मुख-का आरख आपणै मुखि आपि वणाया छै। रुक्मिणी-को निलाट सू योही चद्रमा हुवो। महादेव कै तीसरै नेत्र अग्नि वसै छै, तिहि-की जू ज्वाला उठै छै, इहै तिलक हुवो।" '

उवा चद्रमा माहे कलक छै, अग्नि माहे धूम छै। सू इहाँ कलंक अर धूम दून्यू काट था सू दूरि कीया छै।

९०. **कवच संभु इ०**—कुचो को महादेव की उपमा भी दी जाती है। मिलाओ—

> **ढरि ढरि बूंद परति कचुकि पर, मिलि अंजन सो कारे।**
> **मानो सिव की पर्नकुटी विच धारा स्याम निनारे॥** (सूर)

९३. **नव ग्रही**—ग्रहो के प्रतीक रत्न इस प्रकार हैं—सूर्य—माणिक्य लाल)। चद्र—मोती। मगल—प्रवाल (मूंगा)। बुध—पन्ना। गुरु—पुष्प-राग। शुक्र—हीरा। शनि—नीलम। राहु—गोमेद। केतु—वैडूर्य।

९४. **रज इ०**—हाथी के सिर पर रज डालने के सबध मे एक और कवि की कल्पना देखिये—

> **धूरि धरत नित सीस पर, कहु रहीम, केहि काज ?**
> **जेहि रज मुनि-पतनी तरी, सो ढूंढ़त गजराज॥**

९७. **पीळा**—अन्यार्थ—(१) नूपुर-रूपी पीले रग के भ्रमरो को मकरंद की रक्षा के लिए पहरेदार रखा है। (२) भ्रमरो से मकरद की रक्षा करने के लिए नूपुर-रूपी पीली वर्दी वाले पहरेदारो को नियुक्त किया हे।

९९. **जाती**—इसका अर्थ हाथ भी होता है।

१०१ **अन्यार्थ**—नख-रूपी मोतियो के लालच से पगरखी के वहाने उसके पैरो जा लगे।

१०४. प्रथम दो पक्तियो का अर्थ टीकाकारो ने भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है।

१०६. राम के वैकुठ जाते समय अयोध्यावासी भी सरयू मे स्नानकर, दिव्य रूप धारणकर और विमानो मे बैठकर वैकुठ गये थे।

१०९. **काम के पांच वाण**—

अरविंदमशोकं च चूतं च नवमल्लिका ।
नीलोत्पलं च पंचैते पंच-बाणस्य सायकाः ।।

दूसरा मत—**सम्मोहनोन्मादनौ च शोषणस् तापनस् तथा ।**
स्तंभनश् चेति कामस्य पंच बाणा प्रकीर्तिताः ।।

तृतीय मत—**आकर्षण, वशीकरण, उच्चाटन, मोहन, मारण ।**

संच—प्रपंचः कृत· (संस्कृत टीका)।

११३ **आलूदा** और **अलल** शब्दों के अर्थ विभिन्न प्रकार से किये गये है। **आलूदा**—सजे, सजे हुए; युवा। **अलल**—अलवेले, मौजी, भले-भले; अनेक; उतावले, तत्परता से।

११४ **माखण-चोरी इ०**—मिलाओ—

धीरो रह रे ग्वालिया ! (थारी) आव पहूंती आय ।
मही नही गोकळ तणो चोर-चोर दधि खाय ।।

(पदमभक्त कृत हरिजीरो व्यावलो)

११७. **कठठी**—कठठणो क्रिया राजस्थानी मे कठिन, कड़ी या ठोस होने के अर्थ मे आती है। कवीर मे भी इसका प्रयोग मिलता है—साखित काली कावलो भीगा तै कठठाइ।

टीकाकारों ने इसका अर्थ 'सज्ज होना' लिखा है पर अगले चरण मे 'समुहे' क्रिया भी इसी अर्थ को सूचित करती है।

काळाहणि—**कळायण**=काले रग के वादलों की घटा।

जोगणि इ०—वर्षा के पक्ष मे योगिनियो का अर्थ स्पष्ट नही है, प्राचीन टीकाकारो ने कोई अर्थ नही दिया है। श्री रामसिह और पारीक लिखते है कि ज्योतिष के अनुसार आषाढ कृष्ण एकादशी को, जब वर्षा-योग का आरंभ माना जाता है, योगिनी-चक्र होता है।

वरसइ इ०—(१) सेनाए दुहरी चल रही है अत· रक्त बरसेगा। (२) वादलों की बरसने को उद्यत घटाएं दुहरी (वेपुड़ी=वेवडी) चल रही है।

इस पद्य पर लक्ष्मीवल्लभ की टीका—

वेऊं सेना कठठे=चढीनइ काळाहणि कीधी। जिम वादळ वेऊं दिसा-थी

मिळी-नइ काळाहणि करइ तिमि दोऊं फौज अणी बाँधि चाली। काळाहणि गाहे काळा वादळ हूवइ, फौज-मइं पिण बकतरियां-री कोर वणी छइ, तिकाई-ज काळाहणि कीधी छइ। आम्होसाम्ही समूझी कहतां मिळी। काळी घटा मेघाँ-की हुई। मेघ-कउ आड़ंग जाणे-नइ जोगिणी आयी छइ। जाणेवा लागी—वेपुड़ी वहइ छइ, सू रत वरसइ, आज सही लोही वरसइ। जिवारइ वादळा री वेपुड़ी आम्होसाम्हइ वहइ, तिवारइ पाणी वरसइ॥

११८. **गयगहण**—अर्थ स्पष्ट नहीं। कुछ सभावित अर्थ—(१) हाथियो की भीड हो रही है। (२) आकाश (गय) को गुंजा देने वाला (गहण) वीरो का हल्ला हो रहा है। (३) तोपो, वदूको और बाणो का तथा वीरो का हल्ला हो रहा है मानो आकाश को गुजा देने वाली वादलो की गर्जना हो रही हे।

११९. नाद-सौदर्य द्रष्टव्य है।

१२०. **असुभकारियउ**—टीकाकारो ने अर्थ इस प्रकार किया है—

(१) कायर छै त्याका हाथ (उर के स्थान पर 'कर' पाठ हे) कापिवा लागा, जू असुभकारियौ वरसण लागौ।

(२) कायरा कहता कायर पुरुखारा, उर कहता हीया. कपिया कहता कपिवा लागा, भइ करी। चकित थता कायर इम कहिवा लागा, जे असुभकारियउ कहता अकाळइ असुभकारी उतपात, ऊपनउ।

(३) तिण अवसरइ कायरा नरारा उर हीया कापिया, भयइ करि चक्या, तिया जाण्यउ जे ए समय प्रळयकाळिक मेघागमनरी परि असुभकारी उतपात हुवउ।

(४) अठै कायर छै त्याहका उर कापण लागा, धडधडाहट करण लागा। उठै वर्षा विषै असुभकारिया कहता वाणिया, जिके दुकाळ हुवौ चाहे, धान संचौ करै, यो जाणे दुकाळ पडै तो अन्नरो घणो द्रव्य उपजै। त्याहरा मेह वरसताँ उर कापण लागा।

१२३ **वेली तदि इ०**—**अन्यार्थ**—(१) तव कृष्ण अपने साथी वलराम को प्रोत्साहित करते है।

वेली सखाई, आप हूँती वीजउ, धुराधारक भाई वळिभद्र। श्रीकृष्ण वापूकार्‌यउ, सज्ज कीधउ—हे हळधर! साप्रत ताहरउ समय छइ।

१२४. **विसरियां विसरि इ०**—टीकाकारो के अर्थ—

(१) हिवइ वार वि खडी आपणइ क्षेत्रि जस-कीरति-रा वीज विसतर्‌या। वीजिस्यइ वाइस्यइ, बीजा-रउ वाइव्वउ हुस्यइ।

(२) एक वार क्षेत्र खेडी वीजी वार वीज वावियइ। तिम विसरी वार कहता वीजी वार, जस कहता जस-रूपियउ वीज, रणागण-नइ विखड वाउ, अेतळइ किरी वीजी वार सग्राम करउ।

खारी—क्षारिन्=खारा; यह शब्द ईकारात और नर-जातीय है। कई टीकाकार इसका अन्वय वेळा अथवा धरती के साथ कहते है।

१२५. यहां वीभत्स रस के वर्णन मे रस-विरोध दोप वताया गया है। पर शृंगार रस के प्रसग मे वीभत्स का वर्णन शास्त्रानुसार किया जा सकता है यदि वीच मे ऐसा रस दे दिया जाय जो दोनो का मित्र हो। यहा दोनो के वीच मे वीर रस का उपन्यास किया गया है जो दोनों का मित्र है। अतः रस-दोप नही है।

१२५ (क) १२५ (ख)--ये पद्य प्राचीन प्रतियो मे नही पाये जाते।

१२६. **कण एक इ०**—इन दो चरणो का अर्थ भी भिन्न-भिन्न प्रकार से किया गया है।

१२७. **पाठान्तर भागा**—जरासध और शिशुपाल युद्ध मे पराजित होकर भाग गये।

१२८ **बेळखि अणी इ०**—द्रिठ के स्थान पर द्रिढ पाठ लेने से यह अर्थ होगा—वाण के पिछले और अगले भागो को मुट्ठी मे दृढता से पकड लिया। **टीकाकारों के अर्थ**—

(१) रुकमइया का वाण कारण ताई सिस्ति वाधी, अणी मूठि द्रिठि अेक सिस्ति की। (२) ति वारइ श्रीकृष्णजी आपणी दृष्टि वेळखरी अणी ऊपरा अनइ मूठि ऊपरा वाधी, अणी-मूठि अेक सिस्त कीधा छइ। (३) **बेलकं** पुख-स्थानं, **अणी** शराग्रभागं, मुष्टि च, दृढं वधयित्वा पाणि पटिकामुखी कृत्वा, इ०।

१३१ अखियात—सदा स्थायी या स्मरणीय रहने वाला कार्य।

१३२ **केस उतारि विरूप कियउ**—मिलाओ—

मूँछ मूँडि वा-को मसतक मूँड्यो रथ-की पीठ वँधायो।

(पदमभगत-कृत हरिजी-रो व्यावलो)

१३३. **दुसट-सामना इ०**—वलराम का व्यग्योक्तिपूर्ण कथन।

१३४. **हालिया जाइ लगाया हूँता**—चरण का अर्थ स्पष्ट नही। हूँता का अन्वय ठीक नही वैठता—जाइ लिया हा (ताइ) लगाया हूँता=जो लिये थे वे लगाये—इसमे **हूँता** शब्द अनावश्यक है। कुछ टीकाकारो ने **हालिया जा इलगाया हूँता** पाठ लेकर अर्थ किया है—जा इलगाया हूँता (ताइ) हालिया=जो अलग किये थे वे लगाये—इसमे **हालिया** का अर्थ **लगाये** किया गया है जिसके लिए कोई प्रमाण नही।

प्राचीन टीकाकारो ने नीचे लिखा अर्थ दिया है जिसे लेने पर कोई कठिनाई नही रहती—

जो हाथ साले रुक्मकुमार के लगाये थे उन्ही को उसके सिर पर स्थापित करके (उसको अपना करके) वहा से चले।

कार्य करिवा भणी, न करिवा भणी, अन्यथा-करण कीधउ पिण कार्य मेटिवा भणी, इम सगळी ही वाते समर्थ छइ। तिण मेळि श्रीकृष्णजी जिके हाथ साळा-नइ मुहकम करि लगाया हुता सोई ज हाथ ऊपरि थापी-नइ चाल्या।

१३८. उठी झळ—दूतो को तेजी से आता हुआ देखकर अनिष्ट की आशका हुई।

नीळ डाळ—वधाई ले जाते समय वधाईदार हाथ मे हरी टहनी लेकर जाते हे।

१४३. मिलाओ—

मिलि चारि वरात चहूँ दिसि आयी। नृप चारि चमू अगवानि पठायी॥
जनु सागर को सरिता पगु धारी। तिनके मिलिबे कहं वाह पसारी॥
(रामचन्द्रिका)

१४७ पाठान्तर—वार-वार पीवइ पय वारि।

१५०. पाणिग्रहण—हथलेवा=हाथ का पकडना पाणिग्रहण हरण के समय हो गया था। मिलाओ—

वळि बँधि समरथि रथि लइ वइसारी स्यामा-कर साहे सु करि। (पद्य ११२)

१५४. मधुपर्क—दुग्ध, दधि, घृत, मधु और शर्करा का मिश्रित पेय।

१५३. ओटइ—अटाळयाँ (ढूँढाडी टीका)।

१५६ फेरा=भावर। राजस्थान मे चार भावरो की प्रथा हे। तीन मे वधू आगे रहती है, चौथे मे वर।

१५७. वाच—वर-वधू की प्रतिज्ञाए—

वधू कहती है—

तीर्थ-व्रतोद्यापन-दान-यज्ञान् मया सह त्वं यदि कान्त! कुर्याः।
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं जगाद वाक्यं प्रथमं कुमारी॥१॥
हव्य-प्रदानैरमरान्, पितॄंश्च कव्य-प्रदानैर् यदि पूजयेथाः।
वामांगमायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं द्वितीयम्॥२॥
कुटुम्ब-रक्षा-भरणे यदि त्वं कुर्याः पशूनां परिपालनं च।
वामांगमायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं तृतीयम्॥३॥
आय-व्यय धान्य-धनादिकानां पृष्ट्वा हि मां त्वं स्वगृहे निदध्याः।
वामांगमायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं चतुर्थम्॥४॥
देवालयाराम-तडाग-कूप- वापीर् विदध्याः परमार्थ-सिद्ध्यै।
वामांगमायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं च पंचमम्॥५॥
देशान्तरे वा स्व-पुरान्तरे वा पृष्ट्वा विदध्याः क्रय-विक्रयं त्वम्।
वामांगमायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं च षष्ठम्॥६॥
न सेवनीया पर-कामिनी या न राग-दृष्ट्या च विलोकनीया।
वामांगमायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं तु सप्तमम्॥७॥

वर कहता है—**मदीय - चित्तानुगतं स्व - चित्तं**
सदा मदाज्ञा - परिपालनं च।
पति - व्रता - धर्म - परायणा चेत्
कुर्यास् तदा सर्वमिदं प्रदत्तम् ॥

१७२. मिलाओ—**उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन।**
सिय-रघुबर के भये उनींदे नैन ॥
(वरवैरामायण)

१७३ क. यह पद्य प्राचीन प्रतियो मे नही पाया जाता।

१७९. नासफरिम—टीकाकारो ने इसका अर्थ प्रायः अ-दातृत्व=दान शीलता का अभाव, कृपणता, किया है। वीरता के साथ उदारता आवश्यक मानी गयी है। मिलाओ—

तूठा दाळिद-जडां न तोड़ै, रूठा किम तोडिसी रिम (=रिपु)।
(लालस रूपसी)

लक्ष्मीवल्लभ ने **नासफरिम** का अर्थ **उत्साह का अभाव** किया है।

१८० साध्र—अपभ्रश की भाति राजस्थानी मे कभी-कभी र का आगम हो जाता है। अप०—व्रासु महरिसि इउ भणइ (व्रासु=व्यास)।

१८१. अनाहत ध्वनि—(१) 'जव कुडलिनी ब्रह्मरध्र तक पहुँच जाती है तव मन पूर्णतः शान्त हो जाता है तथा विषयो से विनिवृत्त होकर अन्तर्मुख हो जाता है। इसी स्थिति को उन्मन दशा वा अतिचेतनावस्था कहते है। इसी दशा के प्राप्त हो जाने पर अनाहत नाद वा ईश्वरीय शब्द सुन पड़ता है जिससे अमृत-रस का स्वाद मिलने लगता है और परमात्मा के प्रकाश का दृष्टिगोचर होना भी सभव बन जाता है।' (हिन्दी-काव्य मे निर्गुण-सप्रदाय)

मिलाओ—प्रकट प्रकास ग्यान गुरु गमि थै ब्रह्म अगिनि परजारी।
गगन गरजि मन सुन्न समाना वाजे अनहद तूरा ॥—(कबीर)

(२) जव प्राणवायु सुषुम्णा नाडी द्वारा ब्रह्मरंध्र मे पहुँच जाता है तव अनहद नाद सुनायी देता है। यह नाद भ्रमर, शख, मृदग, ताल, घटा, वीण, भेरी, दुदुभी, समुद्रगर्जन, मेघगर्जन आदि क्रमशः दस प्रकार का होता है। (कबीर-बीजक, परिशिष्ट)

१८४. हेमगिरि—हेम शब्द हिम के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। राजस्थानी मे हिम और हेम दोनो रूप चलते है। हेम की व्युत्पत्ति सं० हेमन् (=वर्फ) से या सं० हैम (वर्फ का) से भी की जा सकती है।

१८७. माहुटि=माघ+वृट् (वृष्)=माघ महीने मे होने वाली वर्षा। राजस्थान मे मावटा-पोवटा (माघवृट्, पौषवृट्) बोलचाल मे प्रसिद्ध है।

१८९ नैरंति—कुछ टीकाकारो ने इस शब्द का अर्थ सुख किया है (स० निर्वृति, गुज० नीरात)।

२०० पीळा इ०—कुछ टीकाकार पीला और राता शब्दो को महलो के साथ जोडते है और कुछ बादलो के साथ।

पहल—स० पर शब्द के आगे स्वार्थिक लो प्रत्यय=परलो। परलो शब्द आगे चलकर पइलो और फिर पैलो हो गया (गुजराती मे पेलुं)। पहल इस पैलो का ही दूसरा रूप है। पीळा इ०—एक पीले और दूसरे लाल (एके पीता परे रक्ता)।

२०१. पंचरत्न—

(१) नीलकं वज्रक चेति पद्मरागश् च मौक्तिकम्।
प्रवाल चेति विज्ञेय पंच-रत्नं मनीषिभिः॥

(२) कनकं हीरकं नीलं पद्मरागश् च मौक्तिकम्।
पंचरत्नमिदं प्रोक्तम् ऋषिभि पूर्वदर्शिभिः॥

(३) सुवर्णं रजतं मुक्ता राजावर्त्तं प्रवालकम्।
रत्न-पचकमाख्यातम् ... .॥

सिखर इ०—इस चरण का 'महलो पर मोर रमते है' यह अर्थ भी किया गया है पर वह उचित नही जान पडता। ऊपर के तीनो चरणो मे विविध रत्नो और उनसे निर्मित मदिरागो का वर्णन है, इस चरण मे भी वैसा ही अर्थ लेना उचित है।

२०५ वितअे इ०—अन्यार्थ—आश्विन के वीतने पर बादल आकाश मे मिल गये—विलीन हो गये, कीचड पृथ्वी मे मिल गया, गदलापन जल मे मिल गया। यह अर्थ उपयुक्त नही जान पडता क्योकि वर्णन शरत्काल के आरम्भ का है—आश्विन मास का, नकि कार्तिक का। दूसरे, बादल आश्विन के वीतने पर नही, पर आश्विन के आने पर ही, विलीन हो जाते है।

२०९ तुलादान— राजा-महाराजा आदि अपने को चादी, सोने या रत्नो के वरावर तोलते हे और उस चादी आदि का दान कर देते है। तुलादान एक वडा पुण्य-कार्य माना गया है।

२११ थिर इ०—(१) ऐसी एकाग्रता से चित्र वना रही है कि स्वय चित्र वन गयी है (थिर चित्रति चित्राम थयी)।

(२) चित्र वनी हुई-सी—अत्यन्त एकाग्रता के साथ—चित्र वना रही है (चित्राम थयी थिर चित्राम चित्रति)।

२१२ मासइ इ०—जव जनार्दन निद्रा से जागे तो सामने मार्गशीर्ष मास आया (और सब मासो मे श्रेष्ठ समझा गया)। यही वात, जव अर्जुन और दुर्योधन सहायता के लिए आये, तव हुई थी। भगवान ने जागने पर सामने

अर्जुन को देखा इसलिए उसे ही प्रधानता दी। इसी प्रकार जागने पर मार्गशीर्ष का महीना सामने आया अत उसे ही श्रेष्ठता दी। मिलाओ—मासानां मार्गशीर्षोऽहम् (गीता)।

जागिया—देवता कार्तिक शुक्ला एकादशी को जागते हैं जिसे इसी कारण प्रबोधिनी एकादशी कहते है। प्रबोधिनी एकादशी के बाद पूर्णिमा को मार्गशीर्ष का आरम्भ होता है।

भीर कजि आया—महाभारत की प्रसिद्ध कथा। महाभारत के युद्ध में दुर्योधन और अर्जुन दोनो कृष्ण को अपना सहायक बनाने के लिए द्वारका गये। दुर्योधन पहले पहुँचा, वह कृष्ण के सिरहाने की ओर बैठ गया। अर्जुन पीछे आया, वह पैताने की ओर बैठ गया। कृष्ण जागे तब उनकी दृष्टि पहले पैताने की ओर बैठे अर्जुन पर गयी और वे उससे बाते करने लगे। इतने मे दुर्योधन ने कहा कि मै पहले से आया बैठा हूँ, मेरा हक पहले है। तब कृष्ण ने दोनो को सहायता देने की बात कही। उनने कहा—एक ओर मेरी सारी सेना रहेगी, दूसरी ओर मै अकेला और वह भी निश्शस्त्र रहूँगा, जो चाहो सो चुन लो। छोटा होने के कारण अर्जुन को पहले अवसर दिया गया। उसने कृष्ण को चुना। दुर्योधन भी सेना को पाकर प्रसन्न हुआ। दोनो प्रसन्न होकर घर गये।

२१४. **सूहव**—स० सुभगा, अप० सुहव। राजस्थानी मे यह शब्द नायिका या स्त्री के अर्थ मे प्रयुक्त होता है।

२१६. **भजंति इ०**—इस चरण के आरंभ मे एक मात्रा कम है। भजंति को भज्जति या भजयति पढना पडेगा।

२१७. **रिणि** इ०—बडी स्वाभाविक और उपयुक्त उपमा है।

आकास—आकाश को वस्त्र की उपमा दी गयी है, आकाश का पर्यायवाची अंबर शब्द वस्त्र का वाचक भी है। **प्रउढा**—प्रौढा नायिका विशेष मानवती होती है, उसका मान देर से छूटता है अत वस्त्र भी।

२१८. विहत इ०—**अन्यार्थ**—शीत से सताये हुए।

२२०. **मकरध्वज-वाहण**—काम का वाहन मकर। मकर का अर्थ मकर राशि भी होता है।

२२०. **पारथिया इ०**—मागने पर कृपण के मुह से उत्तर निकलता है—वह साफ जवाब दे देता है—नाही कर देता है। उत्तर का अर्थ उत्तर दिशा भी होता है।

२२१. **द्वारिका न पइसइ**—समुद्र-तट पर होने से द्वारका मे अधिक शीत नही होता।

२२२. इस पद्य का अर्थ टीकाकारो ने भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है।

अरक इ०—अन्यार्थ—अर्क (सूर्य) अग्नि, धूप और आरती के वहाने अपने को न्यौछावर करता है।

२२३ ठरे जु इ०—अन्यार्थ—जिनको शीत ने जलाकर ठठ कर दिया था वे अव ठडे होने लगे।

२२४. महुअरि—वशी की भाति का एक वाजा।

२२५ रोरी करि—पाठान्तर, रीरी करि=री-री-ता-ना-ना इस प्रकार आलाप लेकर।

२३० अजु—(और) जो। अ उच्चारण की सुविधा के लिए और मात्रा पूरी करने के लिए जोडा गया हे।

२३६ जगहथ—जगत को अभयदान देने वाले हाथ फैलाये हें। टीकाकारो ने इस प्रकार अर्थ किया है—(१)अे जगहथ ऊभिया छै, ससार ऊपरि हाथ उठायो छै, जू मेरी बरावरी किही वात कोई करि सकै नही। (२) जगत ऊपर हाथ ऊभा कीया छै जू किण ही वात जगत मे म्हागी वरावरि कोई न छै।

२४२. लाग—लाग-शब्देन कर्णाट-भापया उत्प्लुतिरिति (जानकीप्रसाद कृत रामचद्रिका की टीका)।

२४३ मिलाओ—वहु उडुप तिर्यग पति पति अड़ाल।
अरु लाग धाट रायउ रंगाल।
(रामचद्रिका, प्रकाश ३०)।

२५५ टीकाकारो के अर्थ—(१) रत्या क्रीडा-सुख-रूपया पात्रेण नर्तक्या इव, शिशिरर्तु-सवधिनी जवनिका ता पश्चात्-कृत्वा, रहस्यालोचनम् एव निज-मन्त्र पठित्वा, वन-राज्या देव्याः इव उपरि, पुष्पाजलि. उच्छालिता इव, नृत्यावसरे देव-देवी-प्रसत्त्यै पुष्पाजलि. क्षिप्यते। (२) रति कामदेव की भार्या सुई पात्र हुई, तिणइ रितु-पात्रइ मत्र भणि-नै वनसपती ऊपरि पुष्पाजळि नाखी (लक्ष्मीवल्लभ)। (३) पात्रो ने वनके राजा वसत ऋतु पर पुष्पाजलि डाली।

२५३ उदय—पाठान्तर ओटि=(ओट)—पलाशवन की ओट मे काम-क्रीडा करने की इच्छा करके प्रफुल्लित हुई।

२५६ मिलाइये—
चुवत स्वेद मकरद-कन तरु-तरु तर विरमाइ।
आवत दक्खिन देस ते थक्यो वटोही लाइ॥ [विहारी]

२६३. भ्रख—भख (स० भक्ष्य) का दूसरा रूप। र का आगम।

२६६. स्त्रियो के वीस अलकारो (मुख-गात्रज विकारो) मे तीन अंगज अलकारो को भाव, हाव और हेला कहा गया है। इनके लक्षण इस प्रकार है—
वागंगमुखरागैश्च सत्त्वेनाभिनयेन च।
कवेरन्तर्गतं भावं भावयन् भाव उच्यते॥ [नाट्यशास्त्र]

अन्तर्गतवासनात्मतया वर्तमानं रत्याख्यं भावं भावयन् सूचयन् अगस्य अल्पो विकारो भाव, बहुविकारात्मा हावः, बहुतरविकारात्मा हेला ।

[हेमचंद्र-काव्यानुशासन]

अल्पसलक्ष्यविकारो हाव, अत्यंतसमालक्ष्यविकार· हेला । [साहित्यदर्पण]

२७०. मिलाओ—

लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला श्रीर् हरिप्रिया ।
इंदिरा लोकमाता मा क्षीरोद-तनया रमा ।। [अमर-कोष]

२७१. मिलाओ—

मदनो मन्मथो मारः प्रद्युम्नो मीनकेतनः ।
कंदर्पो दर्पकोऽनङ्गः कामः पंचशरः स्मरः ।।
शंबरारिर् मनसिजः कुसुमेषुरनन्यजः ।
पुष्पधन्वा रतिपतिर् मकरध्वज आत्मभूः ।।
ब्रह्मसूर् विश्वकेतुः स्यात्……… … …।। [अमर-कोष]

कंदर्प—कं दर्पयामीति मदाज् जात-मात्रो जगाद च ।
तेन कन्दर्प-नामानं तं चकार चतुर्मुखः ।'

२७२. अनिरुद्ध और ब्रह्मा के कुछ नाम एक-से है (जैसे ब्रह्मसू), इसलिए ब्रह्मा के नामो को कवि ने अनिरुद्ध के नाम मान लिया है ।

२७५ मिलाओ—

जलम अकारथ ही गयउ, भड़-सिर खग्ग न भग्ग ।
तीखा तुरी न माणिया, गोरी गळै न लग्ग ।।

२७७ इस पद्य के दूसरे चरण के अनेक पाठान्तर मिलते है और अर्थ भी कई प्रकार से किये गये है ।

२७८. **आधिभौतिक**—जीव-जन्तुओ आदि से होने वाले कष्ट ।

आधिदैविक—दैवी कारणो से और देवताओं से होने वाले कष्ट ।

आध्यात्मिक—शरीर और मन मे होने वाले कष्ट ।

२८६ **आश्रम**—(१) ब्रह्मचर्य, (२) गार्हस्थ्य, (३) वानप्रस्थ, (४) संन्यास ।

वर्ण—(१) ब्राह्मण, (२) क्षत्रिय, (३) वैश्य, (४) शूद्र ।

२८७. **वे हरि हर भजइ**—गगा विष्णु के चरणो से निकली है और महादेव के सिर पर रहती है । मिलाओ—

अच्युत-चरन-तरंगिनी सिव-सिर-मालति-माल । —(रहीम)

वेलि के सबसे प्राचीन टीकाकार लाखा चारण ने इस पद्य मे गगा की निंदा समझकर इसकी, और आगे के पद्यो की भी, टीका नही लिखी ।

२८६ **द्वाळा**=दोहला, गीत के कई पद्यो मे से एक ।

नव रस— **शृंगार - हास्य-करुण - वीर - रौद्र - भयानकाः ।**
वीभत्साऽद्भुत-शान्ताश् काव्ये नव रसाः स्मृताः ॥

२९०. **कल्पवेलि, कामधेनु, चिंतामणि**—तीनो अभीप्सित फलो को देने वाली बतायी गयी है । सोमवेलि दिव्यौपधि कही गयी है ।

२९१. **निगम**—वेद, **आगम**—तत्र । आगमो के तीन भेद होते हे—(१) वैष्णव या पाचरात्र (२) शेव (३) शाक्त । आधुनिक हिन्दू धर्म निगमो की अपेक्षा आगमो पर विशेप आधारित है ।

२९४ मिलाओ—भाव अनूठो चाहिए भापा कोऊ होइ ।
प्रथम पक्ति मे दो मात्राएं कम हे ।

चारण—डिगल भापा के कवि, वारठ ईसरदास आदि ।

भाट—पिगल भापा के कवि, चद वरदायी पिंगल-कवियो मे सर्वाधिक प्रसिद्ध हुआ है ।

३००. तूं तणी तणा त्री=तूं-तणी त्री-तणा (तुम्हारी प्रिया के) ।

३०० (क) यह पद्य पृथ्वीराज का नहीं है, स० १६६९ की प्रति मे, जो पृर्थ्वीराज के एक भतीजे के लिए लिखी गयी थी, यह पद्य नहीं है ।

३०० (ख) यह पद्य या इसके पाठान्तर भी पृथ्वीराज की रचना नही है ।

परिशिष्ट

युद्ध-वर्षा-रूपक प्रकरण का हिन्दी पद्यानुवाद

११७. धारण कर कालाग्नि-रूप को सुदृढ कठोर बनी विकराल
सज्ज हुईं आमने-सामने सेनाएँ दोनो तत्काल
काले-काले बादल करके, गहरी होकर अँधियारी
सज्ज हुई आमने-सामने मेघ-घटाएँ ज्यो कारी
चलती दुहरी मेघ-पक्तिया, निश्चय बरसेगा जल आज
वर्षा के आसार देख ज्यो योगिनियो का जुड़े समाज
चलती दुहरी सुभट-पंक्तिया बरसेगा नि.शक रुधिर
रण के त्यो आसार देख दल योगिनियो का आया घिर

११८ कुहक-बाण, हथनाल, हवाई छूटे, वीरो का दारुण
हल्ला हुआ, मेघ ज्यो गरजे, घहरा उठा अनन्त गगन
लोहे के कवचो के ऊपर गिरते यो लोहे के शर
मेघो से जल-धारे गिरती जैसे सागर के जल पर

११९. वर्षा के होने के पहले प्रखर सूर्य-किरणे जलती
हो जाता है बद पवन, औ' धरती सारी जल उठती
त्यों ही चलते बाण अभी तक, बद हुआ उनका चलना
भाले लगे चमकने चमचम, युद्ध-भूमि का वह जलना !
और झबकती शिखर-शिखर पर झब-झबकर बिजली जैसे
लगे खड़कने खड्ग धडाधड धड़-धड़ पर रण मे वैसे

१२० रण-भेरी का शब्द भयंकर सुनकर काप उठे कायर
उठते काप अशुभ-चितक ज्यो उर मे नभ-गर्जन सुनकर
उजली धारो से उमड़ा जल गिरता यथा पनालो से
असि-धारो से निकला लोहू गिरता नाडी-जालो से

१२१. मोद मनाकर नाच-कूदती योगिनियां नृत्यस्थल मे
ध्रुव अदृश्य होता, उठता है और केतु नभ-मंडल मे
त्यो रण मे कच खोल कूदती योगनिया चौसठो मुदित
माथे गिरते है, लड़ने को उठते वीर-कवध अमित
बरस-बरस जल मेघ लगाते गहरी प्रलयकरी झड़ी
हरि-शिशुपाल-शरो की त्योंही झड़ी भयंकर लगी बड़ी

१२२ चला रुचिर वह रण-प्रागण मे, मार रहे, मर रहे अनेक
योगिनियो के खप्पर औधे तैर रहे उसमे एकेक
भिन्न-भिन्न स्रोतो से सचित जल की सरिता वह निकली
बीच-बीच मे बुद्बुद-माला मानो है तैरती चली!

१२३. तब पुकार कर साथी बल को कही कृष्ण ने मुख से बात
खडा हुआ है अभी अखडित बन्धु ! शत्रुओ का यह साथ
वर्षा हुई, चलाने की हल बेला है उपयुक्त यही
झटपट हाथ चलावेगा जो, जीतेगा इस समय वही

१२४ दो-दो बार चलाकर हल को बो देता है बीज किसान
बो दो यश का बीज समर मे शत्रु-जनो को जहर समान
जडें टूटती है धरती मे हलधर का हल चलता जब
हलधर का हल चला, टूटने लगे मृत कधो के तब

१२५ घट-घट मे है घाव घने, औ' घाव-घाव मे रक्त घना
उछल रहा वह उनसे मानो फव्वारो का झुड बना
लाल-लाल पौधे उग आये, मूगो के क्या खेत फले
प्राण निकलते उनसे, मानो पौधो से सिरटे निकले

१२५ क लेकर हँसुआ काट-काटकर जैसे कोई सुघड किसान
सिरटो का है ढेर लगाता और सजाता है खलिहान
बली राम ने निज भुज-बल से नयी भाति से किये प्रहार
ढेर लगाया शत्रु-सिरो का रण मे चला-चला तलवार

१२५ ख खभ खडाकर अन्न-राशि को कृपक खेत मे गाहटता
बैल फिरा उनके पैरो से खूब गाहटन है करता
त्यो-ही कुचला शत्रुजनो को चरणो को दृढ स्थापित कर
किया गाहटन भीपण रण मे घोडो के पैरो से फिर

१२६ अन्न-राशि पर खलिहानो मे खगी बैठ चारा लेती
कुछ खाती, कुछ खँड-खँड करती, खीच-खीच बिखरा देती
त्यो-ही शत्रु-शवो पर बैठी गीधनिया आमिप खाती
खाती, खड-खड कर देती, खीच-खीचकर बिखराती

१२७ ढाल उठाकर, शस्त्र चलाकर समर-भूमि मे हलधर ने
बराबरी वाले अरियो को किया पराजित क्षण-भर मे
'भलाभली धरती है', उसमे पुरुप एक-से-एक भले
जरासध-शिशुपाल सरीखे वीर तभी तो भाग चले !